इकाई 1 हिन्दी नाट्य साहित्य का विकास एवं स्वरूप विवेचन

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 नाटक का स्वरूप
1.3.1 नाटक के तत्व
1.4 हिन्दी नाट्य साहित्य का विकास एवं परिचय
1.4.1 भारतेन्दु युग
1.4.2 प्रसाद युग
1.4.3 प्रसादोत्तर युग
1.4.4 स्वातन्त्र्योत्तर युग
1.5 सारांश
1.6 शब्दावली
1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
1.9 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

सूर और तुलसी का भक्ति काल में जो स्थान है वही स्थान आधुनिक साहित्य में जयशंकर प्रसाद का है, प्रसाद जी ने हिन्दी साहित्य को व्यापक दृष्टिकोण और नवीन विषय प्रदान किया। प्रसाद जी ने द्विवेदी युगीन काव्यादर्श के विरूद्ध विद्रोह कर नवीन काव्य-धारा और गद्य विधाओं का लेखन प्रारम्भ किया, समकालीन समस्याओं के निराकरण के लिए प्रसाद ने प्राचीन भारतीय इतिहास का आश्रय लिया है।जयशंकर प्रसाद कि गणना आधुनिक काल के सर्वश्रेष्ठ कवियों में की जाती है, प्रसाद मूलतः कवि हैं परन्तु उन्होंने साहित्य की प्रत्येक विधा की रचना की है।कवि के पश्चात उनका नाटककार स्वरूप सर्वाधिक चर्चित रहा है।भारतीय साहित्य के इतिहास में 'नाटक' को पूर्ण साहित्य की गरिमा दी गयी है कहानी, कविता, नाटक में स्वतः ही समाहित हो जाते हैं। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में 'नाटक' की विस्तृत व्याख्या की गयी है, इस इकाई में आपको नाटक के स्वरूप, हिन्दी नाटक के इतिहास की विस्तृत जानकारी दी जा रही है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप :

- नाटक के स्वरुप को पहचान सकेंगे
- नाटक के सर्वमान्य तत्त्वों को जान सकेंगे
- हिन्दी नाटक के उद्भव को जान सकेंगे
- हिन्दी नाट्य साहित्य के विभिन्न चरणों का क्रमबद्ध ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे

1.3 नाटक का स्वरूप

संस्कृत के आचार्यों ने नाटक के स्वरूप पर विस्तार से विचार किया है। भरत मुनि के 'नाट्यशास्त्र' में कहा गया है- जिसमें स्वभाव से ही लोक का सुख-दुःख समन्वित होता है तथा अंगों आदि के द्वारा अभिनय किया जाता है, उसी को नाटक कहते हैं। अभिनव गुप्त ने लिखा है- नाटक वह दृश्य काव्य है जो प्रत्यक्ष कल्पना एवं अध्यवसाय का विषय बन सत्य एवं असत्य से समन्वित विलक्षण रूप धारण करके सर्वसाधारण को आनन्दोपलब्धि प्रदान करता है। महिम भट्ट के अनुसार- अनुभाव- विभावादि के वर्णन से जब रसानुभूति होती है तो उसे काव्य कहते हैं और जब काव्य को गीतादि से रंजित एवं अभिनेताओं द्वारा प्रदर्शित किया जाता है तो वह नाटक का स्वरूप धारण कर लेता है। रामचन्द्र, गुणचन्द्र के अनुसार- जो प्रसिद्व आद्य (पौराणिक एवं ऐतिहासिक) रामचरित पर आधारित हो, जो धर्म, काम एवं अर्थ का फलदाता हो और जो अंक , आय (पाँच अर्थ-प्रकृति) दशा (पंचावस्था) से समन्वित हो, उसे नाटक कहा जाता है। भारतीय आचार्य रस- निष्पत्ति को उद्देश्य मानते हुए ही नाटक का स्वरूप निर्धारित करते हैं, जबकि पाश्चात्य आचार्यों ने 'कार्य' को महत्व देते हुए, संघर्ष, संकलन त्रय, दुःखान्त, सुखान्त आदि लक्षणो को प्रमुखता दी है।

1.3.1 नाटक के तत्व

संस्कृत नाट्यशास्त्र में नाटक के तीन मूलभूत तत्व माने हैं- वस्तु, नेता और रस। और इन्हीं तीनों का विस्तृत निरूपण किया है। पाश्चात्य काव्य शास्त्र में नाटक के छः तत्व माने गए है। आज यही छः तत्व हिन्दी नाट्यकला के प्रमुख तत्वों के रूप में ग्रहण किए गए हैं- 1. कथावस्तु 2. पात्र या चरित्र-चित्रण 3. कथोपकथन या संवाद 4. देशकाल या वातावरण 5. भाषा- शैली 6. उद्देश्य।

वस्तु अथवा कथावस्तु- नाटक की मूल कथा को ही वस्तु, कथानक या कथावस्तु आदि नामों से पुकारा जाता है। कथावस्तु दो प्रकार की होती है- 1. आधिकारिक अर्थात् मुख्य 2. प्रासंगिक अथवा प्रसंगवश आई हुई गौण कथाएं। यह मुख्य कथा के विकास और सौन्दर्यवर्द्धन में सहायक होती है। आधार के भेद से कथावस्तु तीन प्रकार की होती है- 1. प्रख्यात, जिसका आधार इतिहास, पुराण या जनश्रुति होता है। 2. उत्पाद्य, जो नाटककार की अपनी कल्पना होती है। 3. मिश्रित, जिसमें इतिहास और कल्पना का मिश्रण होता है। नाटक को कथावस्तु में कार्य-व्यापार की दृष्टि से पाँच अवस्थाएँ मानी गयी हैं- 1. आरम्भ, 2. विकास, 3. चरमसीमा, 4. उतार, 5. अंत या समाप्ति। भारतीय प्राचीन आचार्यों का वर्गीकरण भी इसी प्रकार का है, केवल नाम का भेद है, जो इसी क्रम में इसी प्रकार है, 1. आरम्भ, 2. प्रयत्न, 3. प्रत्याशा, 4. नियताप्ति, 5. फल।

कथानक की पाँचों अवस्थाएंमहत्त्वपूर्ण हैं। पाश्चात्य नाटक में संघर्ष को महत्व प्राप्त है, जबकि भारतीय नाटक में नेता और उसके आदर्श को। भारतीय नाटको में भी संघर्ष देखा जा सकता है किन्तु उसकी स्थिति सीधी और स्पष्ट होती है।

पात्र और चरित्र चित्रण- सम्पूर्ण नाटक पात्र और उनकी गतिविधियों पर ही आधारित होता है। पात्र ही कथानक को आगे बढ़ाता हुआ अन्त की ओर ले जाता है। वही कथा का संवाहक भी होता है। पाश्चात्य नाट्य कला में भारतीय नाट्य कला की भांति नायक का कोई सुनिश्चित स्वरूप नहीं है, वह साधारण और असाधारण, किसी भी स्थिति का हो सकता है। आधुनिक नाटको में पात्रों का चरित्र-चित्रण आर्दश से हटकर यथार्थवादी पद्धति पर किया जा रहा है। पात्रों को व्यक्ति पात्र, प्रतिनिधि पात्र इन दो भेदो में विभक्त किया जा सकता है। नाटक के नायकों के चार प्रकार मानें हैं- धीरोदात्त, धीर-ललित, धीर-प्रशांत, और धीरोद्धत। नाटकों में भी चरित्र- चित्रण उपन्यास की ही भांति होता है। परन्तु उपन्यासकार की भांति नाटक का विश्लेषणात्मक या प्रत्यक्ष रूप से चरित्र- चित्रण नहीं कर सकता, उसे परोक्ष या अभिनयात्मक ढंग से काम लेना पड़ता है। कथावस्तु, घटनाओं और कथोपकथनों के द्वारा नाटकीय पात्रों के चरित्र का उद्घाटन होता है।

कथोपकथन- नाटक संवादों के माध्यम से ही लिखा जाता है, पात्र का चरित्र- चित्रण , कथा का विकास, रोचकता और वातावरण सृजन सभी संवादों से ही होता है। संवाद अन्य विधाओं की अपेक्षा नाटक का अधिक प्राण तत्व होता है। संवाद की प्रसंग- परिस्थिति, पात्रानुरूपता उसका मूल तत्व है। संवाद जिसके सार्थक, संक्षिप्त, वक्र और अन्तः शक्ति सम्पन्न होते हैं, नाटक उतना ही सफल होता है। नाटक में संवादों की भाषा सरल, सरस और प्रभावपूर्ण होनी चाहिए।

देश काल वातावरण:संकलनत्रय- नाटक में देशकाल का निर्वाह आवश्यक है। युगीन सन्दर्भों को रूपायित करने के लिए नाटक में देशकाल के अनुरूप ही पात्र की वेषभूषा, परिस्थितियों, आचार-विचार आदि होने चाहिए। इसके सफल निर्वाह से पात्र सजीव प्रतीत होते हैं। कथा-युग के अनुरूप ही समाज राजनीति और परिस्थितियों का अंकन भी होना चाहिए। सफल नाटककार दृश्य विधान, मंच व्यवस्था, वेशभूषा और अभिनय आदि के द्वारा सजीव वातावरण की सृष्टि कर लेता है। प्राचीन ग्रीक आचार्यों ने देश तथा काल की समस्या पर विचार कर, 'संकलन त्रय' का विधान किया है। इसके अनुसार स्थल, कार्य तथा काल की एकता पर विशेष ध्यान देना पड़ता है। उनका मत है कि किसी नाटक में घटी घटना किसी एक ही कृत्य से, एक ही स्थान से सम्बन्धित हो और एक ही दिन में घटी हो। ऐसा करने से देश- काल और वातावरण का सुसंगत चित्रण करने में कोई बाधा नहीं आ पाती।

भाषा-शैली- नाटक एक दृश्य काव्य है। दर्शक संवादों के द्वारा ही कथ्य को ग्रहण करता है, अभिनय उसे हृदय में उतार देता है, अतः भाषा सरल, स्पष्ट और सजीव होने पर ही दर्शक और श्रोता को रसानुभूति कराने में समर्थ होती है। इसलिए नाटक में शब्दों, वाक्यों और भाषा का ऐसा प्रयोग होना चाहिए, जो सहज ग्राहय हो। नाटक के लिए भाषा-शैली की सरसता अनिवार्य

है। भाषा-शैली विषयानुकूल, प्रसाद, ओज और माधुर्य गुण युक्त होनी चाहिए, साथ ही प्रभावपूर्ण भी होनी चाहिए।

उद्देश्य- नाट्यशास्त्र में पुरूषार्थ-चतुष्ट्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को नाटक का उद्देश्य माना गया है। इसी के साथ रसानुभूति को भी नाटक का प्रयोजन माना गया है। आज के नाटक जीवन का चित्रण करते हैं, अतः जीवन की समस्याओं की प्रस्तुति और उनकी व्याख्या तथा समाधान नाटकों का उद्देश्य है। नाटककार इस उद्देश्य की सिद्धि पात्रों के संवाद, उनके कार्य- कलाप और नाना घटनाओं द्वारा करता है। नाटक में नाटककार जीवन की व्याख्या परोक्ष रूप में व्यंजित करता है। जितना ही उद्देश्य महान होगा, उतनी ही रचना श्रेष्ठ होगी। जो लेखक जितनी अधिक उदात्त मानवीय संवेदना के रूप में अपना जीवनोद्देश्य प्रकट करता है, वह उतना ही महान कलाकार बनता है।

अभिनेयता एवं रंगमंच- भारतीय आचार्यों के अनुसार 'अभिनय' नाटक का प्रमुख अंग है। यह नाटक की अभिव्यक्ति का प्रधान साधन है। भरत मुनि ने नाटक के चार प्रकार माने हैं- 1. आंगिक, 2. वाचिक, 3. आहार्य, 4. सात्विक। नाटक की सार्थकता उसके अभिनीत होने में ही है। यद्यपि कुछ नाटक केवल पढ़ने के लिए ही होते हैं, जैसे अधिकांश प्रसाद जी के नाटक। प्राचीन काल में संस्कृत-नाटकों का अभिनय होता था,इसलिए रंगमंच की सुचारू व्यवस्था थी। रंगमंच की लम्बाई , चौड़ाई, ऊँचाई आदि की सीमाएँ निश्चित थी, परन्तु प्राचीन हिन्दी नाटकों का अभाव होने से रंगमंच का कोई विकास नहीं हो पाया। आधुनिक काल में आकर जब नाटकों की रचना आरम्भ हुई तो रंगमंच अत्यन्त निम्नकोटि का और अव्यवस्थित हो गया था। भारतेन्दु जी ने उसमें कुछ सुधार किए, उसी समय से हिन्दी के रंगमंच का अस्तित्व आरम्भ होता है।

अतः अभिनय या रंगमंच नाटक का अनिवार्य तत्व है। नाटक की सफलता की महत्वपूर्ण कसौटी है। रंगमंच पर अभिनय के द्वारा प्रस्तुत होने पर ही नाटक की सार्थकता सिद्ध होती है, अतः नाटक अभिनय के योग्य होना चाहिए।

1.4 हिन्दी नाट्य साहित्य का विकास एवं स्वरूप

हिन्दी में नाटक के स्वरूप का समुचित विकास आधुनिक युग से आरम्भ होता है। सन्1850 से अब तक के युग को हम नाट्य-रचना की दृष्टि से तीन खण्डों में विभक्त कर सकते हैं- (1) भारतेन्दु युग (1857-1900ई.), (2) प्रसाद युग (1900-1930), और (3) प्रसादोत्तर युग (1930 से अब तक)। इनमें से प्रत्येक युग का परिचय यहाँ कमशः प्रस्तुत किया जाता है।

1.4.1 भारतेन्दु युग

स्वयं बाबू हरिश्चन्द्र ने हिन्दी का प्रथम नाटक अपने पिता बाबू गोपालचन्द्र द्वारा रचित 'नहुष नाटक' (सन् 1841ई.) को बताया है। किन्तु तात्विक दृष्टि से यह पूर्ववर्ती ब्रजभाषा पद्य नाटकों की ही परम्परा है। सन् 1861ई. में राजा लक्ष्मणसिंह ने 'अभिज्ञान शाकुन्तल' का अनुवाद प्रकाशित करवाया। भारतेन्दु जी की प्रथम नाटक 'विद्या-सुन्दर' (सन्1868ई.) भी किसी बंगला के नाटक का छायानुवाद था। इसके अनन्तर उनके अनेक मौलिक व अनुवादित नाटक प्रकाशित

हुए जिनमें पाखण्ड-बिडम्बन (1872), वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति (1872), धनंजय-विजय, मुद्राराक्षस (1875), सत्य- हरीश्चन्द्र (1875), प्रेम योगिनी (875), विषस्य विषमौषधम् (1876), कर्पूर- मंजरी (1876), चन्द्रावली (1877), भारत दुर्दशा (1876), नील देवी (1877), अंधेर नगरी(1881) और सती- प्रताप (1884) आदि उल्लेखनीय है। भारतेन्दु के नाटक मुख्यतः पौराणिक, सामाजिक एवं राजनैतिक विषयों पर आधारित है। सत्य हरीश्चन्द्र, धनंजय-विजय, मुद्राराक्षस, कर्पूर-मंजरी ये चारों अनुवादित है। अपने मौलिक नाटकों में उन्होंने सामाजिक कुरीतियों एवं धर्म के नाम पर होने वाले कुकृत्यों आदि पर तीखा व्यंग्य किया है। 'पाखण्ड-बिडम्बन', वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, इसी प्रकार के नाटक हैं। 'विषस्य- विषमौषधम्' में देशी नरेशों की दुर्दशा, राष्ट्रभक्ति का स्वर उदघोषित हुआ है। इसमें 'अंग्रेज' को भारत-दुर्देव के रूप में चित्रित करते हुए भारतवासियों के दुर्भाग्य की कहानी को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसमें स्थान- स्थान पर विदेशी शासकों की स्वेच्छाचारिता, पुलिस वालों के दुर्व्यवहार, भारतीय जनता की मोहान्धता पर गहरे आघात किए गए हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को संस्कृत, प्राकृत, बंगला व अंग्रेजी के नाटक-साहित्य का अच्छा ज्ञान था। उन्होंने इन सभी भाषाओं में अनुवाद किए थे। नाट्यकला के सिद्वान्तों का भी उन्होंने अध्ययन किया था, उन्होंने अपने नाटकों में अभिनय की भी व्यवस्था की थी तथा उन्होंने अभिनय में भाग भी लिया था। इस प्रकार नाट्यकला के सभी अंगों का उन्हें पूरा ज्ञान और अनुभव था। यदि हम एक ऐसा नाटककार ढूंढे जिसने नाट्य- शास्त्र के गंभीर अध्ययन के आधार पर नाट्य-कला पर सैद्धान्तिक आलोचना लिखी हो, जिसने प्राचीन और नवीन, स्वदेशी और विदेशी नाटकों का अध्ययन व अनुवाद प्रस्तुत किया हो, जिसने वैयक्तिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं को लेकर अनेक पौराणिक, ऐतिहासिक एवं मौलिक नाटकों की रचना की हो ओर जिसने नाटकों की रचना की नहीं, अपितु उन्हें रंगमंच पर खेल कर दिखाया हो इन सब विशेषताओं से सम्पन्न नाटककार, हिन्दी में ही नहीं- अपितु समस्त विश्व-साहित्य में केवल दो चार ही मिलेंगें और उन सब में भारतेन्दु का स्थान सबसे ऊँचा होगा। उनकी शैली सरलता, रोचकता एवं स्वाभाविकता गुणों से परिपूर्ण है

भारतेन्दु युग के अन्य नाटककारों में लाला श्रीनिवास दास, राधाकृष्णदास, बालकृष्ण दास भट्ट, बद्रीनारायण चौधरी प्रेमधन', राधाचरण गोस्वामी, प्रताप नारायण मिश्र आदि का नाम उल्लेखनीय है। लाला श्रीनिवास दास ने -'प्रहलाद चरित्र', रणधीर-प्रेम मोहिनी (1877), और संयोगिता- स्वयंवर (1855), की रचना की। इनमें सर्वश्रेष्ठ रचना 'रणवीर सिंह और प्रेम-मोहनी है। इसका सुसंगठित, चरित्र- चित्रण स्वाभाविक तथा कथोपकथन वाताकुलित एवं परिस्थितियों के अनुसार हैं। लाला जी ने कहीं-कहीं प्रादेशिक भाषाओं का भी प्रयोग वातावरण को यथार्थ रूप देने के लिए किया है। इसे हिन्दी का पहला दुःखान्त नाटक भी माना गया है।

राधाकृष्ण के द्वारा रचित नाटकों में 'महारानी पदमावती (1883), धर्मालाभ (1885), महाराणाप्रताप सिंह तथा राजस्थानकेसरी (1897) उल्लेखनीय हैं। जिसमें महारानी पदमावती का कथानक ऐतिहासिक है। जिसमें सतीत्व के गौरव की व्यंजना की गई है। धर्मालाभ में विभिन्न

धर्मो के प्रतिनिधियों का वार्तालाप दिखाते हुए अंत में सभी धर्मों की एकता का प्रतिपादन किया गया है। 'दुखिनी बाला' अनमेल विवाह के परिणामों को व्यक्त करता है। इनका सर्वश्रेष्ठ नाटक 'महाराणाप्रताप सिंह' है जिसमें महाराणा के साहस, शौर्य, त्याग की व्यंजना अन्त्यन्त ओजपूर्ण शैली में की गई है। महाराणा का चरित्र स्वयं उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है-

जब लौं तन प्राण न तब लौं मुख की मोड़ौं।
जब लौं कर में शक्ति न तब लौं शस्त्रहिं छोड़ौं
जब लौं जिह्वा सरस दीन वच नाहिं उचारौं।
जब लौं धड़ पर सीस झुकावन नाहिं विचारौं।

महाराणा के साथ- साथ अकबर के चरित्र को भी सहानुभूति के साथ उजागर किया है।

बालकृष्ण भट्ट ने लगभग एक दर्जन मौलिक एवं अनुदित नाटक प्रस्तुत किए हैं। उनके मौलिक नाटकों में 'दमयंती स्वयंवर', 'वृहन्नला', 'वेणुसंहार', 'कलिराज', की सभा, 'रेल का विकट खेल', 'बाल विवाह', ' जैसा काम वैसा परिणाम', आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें अन्तिम चार प्रहसन हैं जिनमें अपने युग ओर समाज के विभिन्न वर्गों एंव परिस्थितियों पर व्यंग्य किया गया है। वस्तुतः प्रहसनों की परम्परा को आगे गढ़ाने में भट्ट जी का अद्भुत येागदान है। बद्रीनारायण 'प्रेमघन' ने समाज एवं राष्ट्र की विभिन्न परिस्थियों से प्रेरित होकर 'भरत सौभाग्य' (1888), 'प्रयागरामागमन' (1904), वारांगन-रहस्य' (अपूर्ण), वृद्ध- विलाप' आदि नाटकों की रचना की जो राष्ट्र-सुधार की भावनाओं सं अनुप्राणित है। इसी प्रकार राधाचरण गोस्वामी ने भी अनेक नाटकों की रचना की जैसे-'सती चन्द्रावली' (1890), 'अमर-राठौर' (1894), 'श्रीदामा' (1904), 'बूढ़े मुंह मुंहासे' (1887), 'भंग-तरंग' (1892)। इनमें प्रथम तीन को छोडकर शेष प्रहसन हैं । जिनमें अपने युग की सामाजिक एवं धार्मिक बुराईयों की आलोचना व्यंग्यात्मक शैली में की गई है। प्रताप नारायण मिश्र के 'भारत-दुर्दशा' (1902), 'गो-संकट' (1886), ' हठी हमीर', 'कलिकौतुक रूपक', आदि भी राष्ट्र जागरण एवं समाज सुधार की प्रेरणा से रचित हैं, किन्तु नाट्य कला की दृष्टि से साधारण कोटि के हैं। भारतेन्दु युग के अन्य मौलिक नाटक-रचियताओं में देवकीनन्दन त्रिपाठी शालिग्राम, अम्बिकादत्त व्यास, जंगबहादुर मल्ल, बलदेव प्रसाद, तोताराम, ज्वालाप्रसाद मिश्र, दामोदर शास्त्री आदि का नाम उल्लेखनीय हैं। देवकी नन्दन त्रिपाठी ने अनेक पौराणिक नाटकों एवं प्रहसनों की रचना की थी। उनके पौराणिक नाटक 'सीता-हरण' (1876),'रूक्मणी-हरण' (1876), कंस वध' (1904), आदि हैं तथा प्रहसनों की नामावली इस प्रकार है- 'रक्षा बन्धन' (1878), 'एक-एक के तीन-तीन' (1879), 'स्त्री चरित्र' (1879), 'वैश्य-विलास', 'बैल छः टके को', आदि। त्रिपाठी जी के पौराणिक नाटक उच्च कोटि के नहीं हैं, किन्तु प्रहसनों में व्यंग्यात्मक शैली का विकास यथेष्ठ रूप में हुआ है। शालिग्राम ने भी 'अभिमन्यु वध' (1896), 'पुरू-विक्रम' (1906), 'मोरध्वज (1890), आदि पौराणिक तथा 'लावण्यवती-सुदर्शन' (1892), ' माध्वानन्द-कामकंदला' (1904), आदि रोमांटिक नाटकों की रचना की थी, जो कलात्मक दृष्टि से सामान्य कोटि के हैं। अम्बिकादत्त व्यास के दो नाटक-'भारत-सौभाग्य' (1887), 'गो संकट नाटक' (1886), युगीन परिस्थियों पर आधारित

है। इनके अतिरिक्त उनके द्वारा रचित 'ललिता नाटिका', 'मन की उमंग', आदि भी उपलब्ध है। इनमें प्रेम और हास्य का सम्मिश्रण हैं। खड्ग बहादुर मल्ल ने भी 'महारास' (1885), 'हर-तालिका' (1887), 'कल्प-वृक्ष' (1887), आदि पौराणिक नाटकों की रचना की हैं, किन्तु इनके अतिरिक्त उनका एक प्रहसन 'भारते-भारत' (1888) भी उपलब्ध है। बलदेव प्रसाद मिश्र का 'मीराबाई' (1897), भक्ति-भाव से परिपूर्ण है। इसमें बीच-बीच में मीरा के पदों का भी उपयोग किया गया है। इनके अतिरिक्त तोताराम रचित 'विवाह विडम्बन' (1900), कृष्णदेव शरण सिंह' गोप' का 'माधुरी रूपक' (1888), दामोदर शास्त्री का ' रामलीला नाटक' (1869), ज्वाला प्रसाद मिश्र का 'सीता-बनवास' (1875), काशीनाथ खत्री के 'तीन ऐतिहासिक रूपक' (1884), आदि भी इस युग की उल्लेखनीय कृतियां हैं।प्रहसनों की परम्परा को आगे बढ़ाने की दृष्टि से किशोरी लाल गोस्वामी का 'चौपट-चपेट' (1891), गोपालराम गहमरी का 'जैसे का तैसा', नवल सिंह का 'वेश्य नाटक', विजया नंद त्रिपाठी का 'महा अंधेर नगरी' (1895), बलदेव प्रसाद मिश्र का ' लल्ला बाबू' आदि उल्लेखनीय है। इनमें समाज के विभिन्न वर्गों की कलुषित प्रवृत्तियों पर व्यंग्य किया गया है।

अनुवाद- इस युग में संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी के नाटकों के अनुवाद भी बहुत बडी संख्या में प्रस्तुत हुए। संस्कृत के कालिदास, भवभूति, शूद्रक, हर्ष आदि के नाटकों के हिन्दी अनुवाद लाला सीताराम, देवदत्त तिवारी, नन्दलाल, ज्वालाप्रसाद मिश्र ने तथा बंगला के 'पदमावती', 'कृष्णकुमारी', 'वीरनारी' आदि का बाबू रामकृष्ण वर्मा, उदित नारायण लाल, ब्रजनाथ आदि ने प्रस्तुत किए। अंग्रेजी के शेक्सपियर के नाटकों के अनुवाद भी तोताराम, रत्नचन्द्र, मथुराप्रसाद उपाध्याय आदि के द्वारा किए गए। वस्तुतः 19वीं सदी के अन्त तक विभिन्न भाषाओं के अनेक उत्कृष्ट नाटकों के अनुवाद हिन्दी में प्रस्तुत हो गए थे, जिनकी परवर्ती नाटककारों को बडी प्रेरणा मिली।

1.4.2 प्रसाद युग

इस युग के नाटक- साहित्य को भी विषय गत प्रवृत्तियों की दृष्टि से चार वर्गों में विभक्त किए जा सकता है- 1. ऐतिहासिक, 2. पौराणिक, 3. काल्पनिक, 4. अनुदित नाटक। इनमें से प्रत्येक वर्ग का संक्षिप्त परिचय यहां क्रमशः दिया जाता है।

(1) ऐतिहासिक नाटक - इस युग के सर्व-प्रमुख नाटककार जयशंकर प्रसाद ने मुख्यतः ऐतिहासिक नाटकों की ही रचना की थी। उनके नाटकों का रचना-क्रम इस प्रकार है- 'सज्जन' (1910), 'कल्याणी- परिणय' (19112), 'करूणालय' (1913), 'प्रायश्चित' (1914), 'राजश्री' (1915), 'विशाख' (1921), 'अजातशत्रु ' (1922), 'जनमेजय का नाग-यज्ञ' (1926), 'स्कन्दगुप्त' (1928), ' एक घूँट' (1929), 'चन्द्रगुप्त' (1929), और 'ध्रुवस्वामिनी' (1933)। प्रसाद जी अपने देश वासियों में आत्म-गौरव, स्वाभिमान उत्साह एवं प्रेरणा का संचार करने के लिए अतीत के गौरव पूर्ण दृश्यों को अपनी रचनाओं में चित्रित किया। यही कारण है कि उनके अधिकांश नाटकों का कथानक उस बौद्ध-युग से सम्बन्धित है। जबकि भारत की सांस्कृतिक-पताका विश्व के विभिन्न भागों में फहरा रही थीं। प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति को

प्रसाद ने बड़ी सूक्ष्मता से प्रस्तुत किया है, उसमें केवल उस युग की स्थूल रेखाएं ही नहीं मिलती हैं। धर्म की बाहय-परिस्थितियों की अपेक्षा उन्होंने दर्शन की अन्तरंग गुत्थियों को स्पष्ट करना अधिक उचित समझा है। पात्रों के चरित्र-चित्रण में भी उन्होंने मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण करते हुए उनमें परिस्थिति के अनुसार परिर्वतन व विकास दिखाया हैं। मानव-चरित्र के सत् और असत् दोनो पक्षों को पूर्ण प्रतिनिधित्व उन्होंने प्रदान किया है। नारी-रूप को जैसी महानता, सूक्ष्मता, शालीनता एवं गम्भीरता कवि प्रसाद के हाथों प्राप्त हुई है उससे भी अधिक सक्रिय एवं तेजस्वी रूप उसे नाटककार प्रसाद ने प्रदान दिया है। प्रसाद के प्रायः सभी नाटकों में किसी न किसी ऐसी नारी- पात्र की अवधारणा हुई है जो धरती के दुःखपूर्ण अन्धकार के बीच प्रसन्नता की ज्योति की भांति उद्दीप्त है,जो पाशविकता, दनुजता और क्रूरता के बीच क्षमा, करूणा एवं प्रेम के दिव्य संदेश की प्रतिष्ठा करती है जो अपने प्रभाव से दर्जनों को सज्जन, दुराचारियों को सदाचारी, और नृशंस अत्याचारियों को उदार लोक -सेवी बना देती है। 'नारी तुम केवल श्रद्वा हो' की उक्ति को इन दिव्य नायिकाओं पर पूर्णतः लागू होती है।

इस युग के अन्य ऐतिहासिक नाटकों में बद्रीनाथ भट्ट द्वारा रचित' चन्द्रगुप्त' (1915), 'दुर्गावती' (1926), 'तुलसीदास' (1925), सुदर्शन द्वारा रचित ' दयानन्द' (1917), मुंशी प्रेमचन्द का 'कर्बला' (1924), पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का 'महात्मा ईसा' (1922), जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द' के 'प्रताप-प्रतिज्ञा' (1928), गोविन्द बल्लभ पंत का 'वरमाला' (1925), चन्द्रराज भण्डारी का 'सम्राट-अशोक' (1923), आदि उल्लेखनीय है। बद्रीनाथ भट्ट के नाटकों में 'दुर्गावती' सर्वश्रेष्ठ है। इसकी घटनाएँ ऐतिहासिक है, तथा चरित्र-चित्रण में स्वाभाविकता है। संवाद एवं भाषा-शैली की दृष्टि से यह उत्कृष्ट रचना है। सुदर्शन का 'दयानन्द' चरित्र प्रधान नाटक है। चरित्र- चित्रण एंव घटना क्रम के विकास की दृष्टि से यह भी एक सफल नाटक है। 'प्रेमचन्द का 'काबा कर्बला' पाठ्य रचना की दृष्टि से तो ठीक है किन्तु अभिनय की दृष्टि से दोष-पूर्ण है। नाटक की असाधारण लम्बाई, पात्रों की अत्यधिक संख्या, युद्व, मार-काट, सेना के प्रयोग आदि के दृश्यों के कारण यह अनभिनेय बन जाता है। इस वर्ग के अन्य नाटक, महात्मा ईसा, 'प्रताप-प्रतिज्ञा', 'वरमाला' आदि अवश्य उच्च कोटि के नाटक हैं। इनमें ऐतिहासिकता, स्वाभाविकता, एवं कल्पना का सुन्दर संयोग हुआ है।

(2) पौराणिक नाटक- पौराणिक नाटकों की एक सशक्त परम्परा का प्रर्वतन इस युग से बहुत पूर्व ही भारतेन्दु- मण्डल के विभिन्न लेखकों द्वारा हो चुका था, जिसकी चर्चा पीछे की जा चुकी है। इस युग के पौराणिक नाटकों की एक सूची यहां प्रस्तुत है- 1. गंगाप्रसाद कृत 'रामाभिषेक नाटक' (1910), 2. ब्रजनंद कृत 'रामलीला नाटक' (1908), 3. गिरिधर लाल का 'रामवन यात्रा' (1910), 4. नारायण सहाय का 'रामलीला नाटक' (1911), 5. राम गुलाम का 'धनुष-यज्ञ लीला' (1912), 6. महावीर सिंह का 'नल-दमयन्ती' (1905), 7. गोचरण गोस्वामी का 'अभिमन्यु-वध' (1906), 8. लक्ष्मी प्रसाद का 'उर्वशी' (1910), 9. शिवनन्दन सहाय का 'सुदामा नाटक' (1907), 10. ब्रजनन्दन सहाय का 'उद्धव' (1909), 11. रामनारायण मिश्र का 'कंस-वध' (1910), 12. परमेश्वर मिश्र का 'रूपवती' (1907), 13. हरिनारायण का 'कामिनी-

कुसुम' (1907), 14. रामदेवी प्रसाद का 'चन्द्रकला-भानु कुमार' (1904)। ये नाटक सामान्यतः साधारण कोटि के हैं। इनमें से अनेक पर पारसी रंगमचं की छाप है।

(3) कल्पनाश्रित नाटक- जिन नाटकों की कथा वस्तु में इतिहास पुराण और कल्पनामिश्रित होती है उन्हें कल्पनाश्रित नाटक कहा जाता है। इस वर्ग के नाटकों के दो भेद किए जा सकते है- 1. प्रहसन एवं 2. सामाजिक नाटक। प्रहसनों के अंतर्गत मुख्यतः जे.पी श्रीवास्तव द्वारा रचित 'दुमदार आदमी' (1919), उलट फेर (1919), 'मर्दानी औरत' (1920), बद्रीनारायण भट्ट द्वारा रचित 'चुगीं की उम्मीदवारी' (1919), 'विवाह विज्ञापन' (1927), बेचेन शर्मा के दो नाटक चार बेचारे सम्मिलित किए जा सकते है।सामाजिक नाटकों के अंतर्गत मिश्र बन्धुओं के नाटक मुंशी प्रेम चन्द्र का संग्राम, लक्ष्मण सिंह का गुलामी का नशा प्रमुख नाटक है।

(4) अनुदित नाटक- इस युग में संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी से अनेक नाटकों के अनुवाद किए गए सत्य नारायण भवभूती के नाटकों का, रूपनारायण पाण्डेय ने बंगला के द्विजेन्द्र लाल राय के ऐतिहासिक नाटकों का तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर के नाटकों का अनुवाद किया । अंग्रेजी के नाटकों का अनुवाद भी मुंशी प्रेमचन्द्र और ललित प्रसाद शुक्ल द्वारा किया गया।

1.4.3 प्रसादोत्तर युग

(1) ऐतिहासिक नाटक - इस युग में ऐतिहासिक नाटकों की परम्परा का विकास हुआ। हरिकृष्ण प्रेमी, वृन्दावन लाल वर्मा, गोविन्द बल्लभ पंत, उदय शंकर भटट, इस युग के प्रमुख नाटककार है।हरिकृष्ण प्रेमी के ऐतिहासिक नाटकों में रक्षाबंधन (1934), शिव साधना (1937), स्वपन भंग (1940), आहुति (1940), उद्धार (1949), शपथ (1951), भग्न प्राचीर (1954) आदि को सम्मिलित है। प्रेमी जी ने अपने नाटकों में प्राचीन इतिहास को न लेकर मुगल कालीन इतिहास का संदर्भ लिया है और उसके परिपेक्ष में वर्तमान राजनैतिक, साम्प्रदायिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने का प्रयास किया है। वृदांवनलाल वर्मा इतिहास के विशेषज्ञ हैं उनके ऐतिहासिक नाटकों में झासीं की रानी (1948), बीरबल (1950), ललित विक्रम (1953) आदि उल्लेखनीय हैं।

(2) सामाजिक नाटक - गोविन्द बल्लभ पंत ने अनेक सामाजिक व ऐतिहासिक नाटकों की रचना की है। उनके 'राज-मुकुट' (1935), 'अन्तःपुर का छिद्र' (1940), आदि ऐतिहासिक नाटक हैं। पहले नाटक में मेवाड़ की पन्ना धाय का पुत्र के बलिदान तथा दूसरे में वत्सराज उदयन के अन्तःपुर की कलह का चित्रण प्रभावोत्पादक रूप में किया गया है। पंत जी के नाटकों पर संस्कृत, अंग्रेजी, पारसी आदि विभिन्न परम्पराओं का प्रभाव परिलक्षित होता है। अभिनेयता का उन्होंने अत्यधिक ध्यान रखा है। उनकी कला का उत्कृष्टतम रूप उनके सामाजिक नाटकों में मिलता है।

(3) पौराणिक नाटक - इस युग में पौराणिक नाटकों की परम्परा का भी विकास हुआ। विभिन्न लेखकों ने पौराणिक आधार को ग्रहण करते हुए अनेक उत्कृष्ट नाटक प्रस्तुत किए, सेठ गोविन्द दास का 'कर्तव्य' (1935), चतुरसेन शास्त्री का 'मेघनाद' (1936), पृथ्वीनाथ शर्मा का 'उर्मिला' (1950), सद्गुरूशरण अवस्थी का 'मझली रानी', रामवृक्ष बेनीपुरी का 'सीता की मां',

गोकुल चन्द्र शर्मा का 'अभिनय रामायण', किशोरीदास वाजपेयी का 'सुदामा' (1939), चतुरसेन शास्त्री का 'राधा-कृष्ण', वीरेन्द्र कुमार गुप्त का 'सुभद्रा-परिणय', कैलाशनाथ भटनागर के 'भीम-प्रतिज्ञा' (1934), और 'श्रीवत्स' (1941), उदय शंकर भटट के 'विद्रोहिणी अम्बा' (1935), और 'सगर- विजय' (1937), पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का 'गंगा का बेटा' (1940), डॉ.लक्ष्मण स्वरूप का 'नल-दमयन्ती' (1941), प्रभुदत्त ब्रह्मचारी का 'श्री शुक' (1944), तारा मिश्रा का 'देवयानी' (1944), गोविन्द दास का 'कर्ण' (1946), प्रेमनिधि शास्त्री का 'प्रणपूर्ति' (1950), उमाशंकर बहादुर का 'वचन का मोल' (1951), गोविन्द बल्लभ पंत का 'ययाति' (1951), डॉ.कृष्ण दत्त भारद्वाज का 'अज्ञातवास' (1952), मोहन लाल 'जिज्ञासु' का 'पर्वदान' (1952), हरिशंकर सिन्हा 'श्रीवास' का 'मां दुर्गे' (1953), लक्ष्मी नारायण मिश्र के 'नारद की वीणा' (1946), और 'चक्रव्यूह' (1954), रांगेय राघव का 'स्वर्ण भूमि का यात्री' (1951), मुखर्जी गुंजन का 'शक्ति-पूजा' (1952), जगदीश का 'प्रादुर्भाव' (1955), सूर्यनारायण मूर्ति का 'महा विनाश की ओर' (1960) आदि। प्राचीन संस्कृति के आधार पर पौराणिक गाथाओं के असम्बद्ध एवं असंगत सूत्रों में सबंधं एवं संगति स्थापित करने का प्रयास पौराणिक नाटक हमें आज के जीवन की व्यापकता एवं विशालता का संदेश देते हैं। रंग-मंच एवं नाटकीय शिल्प की दृष्टि से अवश्य इनमें अनेक नाटक दोषपूर्ण सिद्व होंगे किन्तु गोविन्द बल्लभ पंत, सेठ गोविन्द दास, लक्ष्मीनारायण मिश्र, जैसे मंजे हुए नाटककारों ने इसका कोई संदेह नहीं किया की ये नाटक विषय- वस्तु की दृष्टि से पौराणिक होते हुए प्रतिपादन- शैली एवं कला के विकास की दृष्टि से पौराणिक होते हुए प्रतिपादन- शैली एवं कला के विकास की दृष्टि से आधुनिक है तथा वे समाज की रूचि एंव समस्याओं के प्रतिकूल नहीं हैं।

(4)कल्पनाश्रित नाटक - इस युग के कल्पनाश्रित नाटकों को भी उनकी मूल प्रवृत्ति की दृष्टि से तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है- 1. समस्या-प्रधान नाटक, 2. भाव- प्रधान, 3. प्रतीकात्मक नाटक। समस्या- प्रधान नाटकों का प्रचलन मुख्यतः इब्सन, बर्नाड शा आदि पाश्चात्य नाटककारों के प्रभाव से ही हुआ है। पाश्चात्य नाटक के क्षेत्र में रोमांटिक नाटकों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप यर्थाथवादी नाटकों का प्रादुर्भाव हुआ, जिनमें सामान्य जीवन की समस्याओं का समाधान विशुद्ध बौद्धिक दृष्टिकोण से खोजा जाता है। लक्ष्मीनारायण मिश्र के समस्या प्रधान नाटकों में 'सन्यासी' (1931), 'राक्षस का मन्दिर' (1931), 'मुक्ति का रहस्य' (1932), 'राजयोग' (1934), 'सिन्दूर की होली' (1934), 'आधीरात' (1937), आदि उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त इन्होने कुछ ऐतिहासिक नाटक भी लिखे थे। मिश्र जी के इन नाटकों में बौद्धिकतावाद, यर्थाथवाद, एवं फ्रायडवाद की प्रमुखता है। सामाजिक नाटकों के क्षेत्र में सेठ गोविन्द दास, उपेन्द्र नाथ अश्क, वृंदावनलाल वर्मा, हरिकृष्ण प्रेमी आदि का महत्वपूर्ण येागदान है। सेठ गोविन्ददास ने ऐतिहासिक, पौराणिक विषयों के अतिरिक्त सामाजिक समस्याओं का चित्रण भी अपने अनेक नाटकों में किया है, जिनमें से 'कुलीनता' (1940), 'सेवा-पथ' (1940), 'दुःख क्यों?' (1946), सिद्धांत- स्वातंत्र्य' (1938), 'त्याग या ग्रहण' (1943), 'संतोष कहाँ' (1945), 'पाकिस्तान' (1946), 'महत्व किसे' (1947), गरीबी-

अमीरी' (1947), 'बड़ा पापी कौन' (1948) आदि उल्लेखनीय हैं। सेठ जी ने आधुनिक युग की विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं का चित्रण सफलतापूर्वक किया है। ऊँच-नीच का भेद, 'भ्रष्टाचार एवं राजनीति के आधार पर नाटक लिखे। उपेन्द्र नाथ अश्क ने राष्ट्र की विभिन्न समस्याओं का चित्रण अपने नाटकों में किया उनके उल्लेखनीय नाटकों में - कैद (1945), उड़ान (1949), छठा बेटा (1955), अलग- अलग रास्ते प्रमुख हैं।

वृंदावनलाल वर्मा ने ऐतिहासिक और सामाजिक नाटक लिखे उनके नाटकों में राखी की लाज (1943), बांस की फांस (1947), नीलकंठ (1951), प्रमुख हैं। वर्मा जी इन नाटकों में विवाह जाति - पाति और सामाजिक बुराइयों का अंकन किया है। इस युग के अन्य सामाजिक नाटकों में उदय शंकर भटट का कमला (1950), हरिकृष्ण प्रेमी का 'छाया', प्रेमचन्द का प्रेम की बेदी (1933), चतुरसेन शास्त्री का पद घ्वनि 1952, शम्भू नाथ सिंह का धरती और आकाश (1954), उल्लेखनीय हैं। प्रतीकवादी नाटकों की परम्परा जयशंकर प्रसाद के कामना से मानी जा सकती है। सुमित्रानन्दन का 'ज्योत्सना' (1934), भगवती प्रसाद वाजपेयी का 'छलना', सेठ गोविन्द दास का नवरस एवं डॉ. लक्ष्मी नारायण दास का 'मादा कैक्टस' उल्लेखनीय है।

1.4.4 स्वातन्त्र्योत्तर युग

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात हिन्दी नाटक का विकास तेजी से हुआ कुछ लेखकों ने पुरानी परम्परा का ही निर्वाह किया किन्तु कुछ लेखकों ने नए शिल्प का प्रयोग किया । इसे हम तीन वर्गों में विभक्त कर सकता है-

1. **सामाजिक एवं सांस्कृतिक नाटक -** इस वर्ग में मुख्यतया जगदीश चन्द्र माथुर, नरेश मेहता , विनोद रस्तोगी, डॉ. लक्ष्मी नारायण दासएवं डॉ. शंकर शेष की रचनाएं आती है। जगदीश चन्द्र माथुर ने 'कोर्णाक' 1952, पहला राजा 1969, 'दशरथनन्दन' 1974 में सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों के विषय में लिखा है। विष्णु प्रभाकर ने 'युगे-युगे क्रान्ति', 'टूटते परिवेश' आदि नाटकों में पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याओं को चित्रित किया है। नरेश मेहता ने सुबह के घण्टे (1956), और खण्डित यात्राएं (1962) में आधुनिक राजनिति और विसंगतियों पर प्रकाश डाला है। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने 50 से अधिक नाटकों की रचना की है- 'अंधा कुआं', 'रात रानी', 'दर्पण', 'कर्फ्यू' , 'अब्दुला दीवाना', 'मि. अभिमन्यू' उनके महत्वपूर्ण नाटक है। डॉ. शंकर शेष ने अपने नाटकों में व्यक्ति समाज और संस्कृति के अन्तर द्वंद्व को उदघाटित किया है। 'बिन बाति के दीप', 'फंदी', 'खजुराहो के शिल्पी', 'एक और द्रोणाचार्य' उनके उल्लेखनीय नाटक है।

2. **व्यक्तिवादी नाटक -** इस वर्ग में मोहन राकेश, सुरेन्द्र वर्मा, रमेश बक्षी, मुद्रा राक्षस की रचनाएं आती है। मोहन राकेश ने अपने तीन नाटकों 'आषाढ़ एक दिन' (1958), 'लहरों के राजहंस' (1963), 'आधे-अधूरे' (1969), में व्यक्ति एवं समाज के द्वंद्व को प्रदर्शित किया है। सुरेन्द्र वर्मा ने 'द्रोपदी' (1972), 'सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' 1975, और 'आठवां सर्ग' नाटक में परम्परागत मान्यताओं को चुनौती दी है। रमेश बक्षी ने अपने 'देवयानी का कहना है' नाटक में वैवाहिक संस्था की उपयोगिता पर प्रश्नवाचक चिन्ह लगाया है,

इसी प्रकार मुद्राराक्षस ने 'तिल चटटा' 1975, में विवाह के संबंध में परम्परागत मूल्यों के प्रति विद्रोह किया है। इस वर्ग के लेखकों की दृष्टि मुख्यतः व्यक्ति स्वातन्त्रय, अहम, और प्रेम संबंधों पर केन्द्रित रही है।

3.राजनैतिक नाटक - राजनीति सदा से ही नाटकों का विषय बनती रहीं हैं। स्वतन्त्रता के पश्चात राजनीति को आधार बनाकर अनेकानेक नाटक लिखे गए, जिनमें दया प्रकाश सिंन्हा का इतिहास चक्र एवं कथा एक कंश की, विपिन अग्रवाल का 'ऊँची-नीची टांग का जांघिया' , हमीदुल्ला का 'समय संदर्भ' , गिरीराज किशोर का 'प्रजा ही रहने दो', सुशील कुमार सिंह का 'सिंहासन खाली है', मणि मधुकर का 'रस-गन्धर्व ' सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का 'बकरी' विशेष उल्लेखनीय हैं इनमें एक ओर जनता का शोषण करने वाले राजनीतिज्ञों का भण्डाफोड़ किया गया है तो इसमें दूसरी ओर सत्ताधारी वर्ग द्वारा किए जाने वाले अनाचार, दुराचार और भ्रष्टाचार का चित्रण किया गया है। इसके अतिरिक्त शरद जोशी का अन्धों का हाथी, मन्नू भण्डारी का बिना दिवार का घर, शम्भू नाथ सिंह का 'धरती और आकाश' आदि भी उल्लेखनीय रचनाएं है। हिन्दी नाटक के क्षेत्र में डॉ. कुसुम कुमार का नाम भी महत्वपूर्ण है 'संस्कार को नमस्कार', 'रावण लीला', इनके महत्वपूर्ण नाटक है।

इस प्रकार हम देखते हैंकि हिन्दी नाटक का विकास अनेक रूपों और अनेक दिशाओं में हुआ है। यद्यपि प्रारम्भ में हिन्दी रंगमंच के अभाव तथा एकांकी रेडियो रूपों एवं चलचित्रों की प्रतियोगिता के कारण इसकी विकास की गति मंद रही परन्तु कुछ स्वतन्त्र संस्थाओं द्वारा नाटकों का अभिनय किया जाता रहा है , टेलिविजन में दिखाए जाने वाले उबाउ विषयों से दर्शक धीरे-धीरे नाटक देखने की और पुन: उत्सुक हो रहें हैं .आशा है नाटकों का विकास पूर्व की भांति निरन्तर होता रहेगा

1.5 सारांश

नाट्य साहित्य के स्वरूप तथा हिन्दी नाटक के विस्तृत इतिहास का अध्ययन करने के पश्चात आप जान गए होंगे की नाट्य विधा साहित्य की सबसे सशक्त विधा है।

नाटक जीवन का ही प्रतिरूप है जीवन के थके हुए क्षणों से बोझिल मनुष्य ने मनोरंजन हेतु नाटक की उत्पत्ति की होगी जो आज तकनीकी विकास के रूप में फिल्म और टेलीविजन के नाटकों के रूप में हमारे समक्ष है।

हिन्दी नाट्य साहित्य के विकास से भी आप परिचित हो गए है। भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने सामाजिक विसंगतियों शिक्षा नवजागरण के लिए नाटकों का माध्यम अपनाया, जयशंकर प्रसाद ने भारत के प्राचिन इतिहास को पुनः हमारे समक्ष प्रस्तुत करने के लिए नाटकों की रचना की जिसका की हम आगे आने वाले पृष्ठों पर विस्तृत अध्ययन करेगें।

1.6 शब्दावली-

नाटय शास्त्र - भरत मुनि द्वारा रचित ग्रथं

नाटक - साहित्य की एक ऐसी विधा जिसे रंगमचं पर अभिनय के माध्यम से

पात्र कथोपकथन द्वारा जीवन्तता प्रदान करते हैं।

कथा वस्तु - नाटक के संदर्भ में कथावस्तु का तात्पर्य उस कथा से है जिसको अभिनय व संवाद के माध्यम से व्यक्त करते हैं।

रंगमच - नाटक की कथा जिस भूमि, स्थान अथवा मंच पर अभिनय व संवादों के माध्यम से मंचित होती है उसे रंगमंच कहा जाता है। नाट्य शास्त्र में रंगमंच के आकार प्रकार वास्तु रंग संयोजन, की विस्तृत व्याख्या की गयी है।

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न 1. नाटय शास्त्र किसके द्वारा लिखा गया है ?

उत्तर - भरत मुनि।

प्रश्न 2. साहित्य के कितने स्वरूप होते है ?

उत्तर - साहित्य के दो स्वरूप होते हैं - 1 गद्य, 2 पद्य।

प्रश्न 3. नाटक, साहित्य के किस स्वरूप से सम्बन्धित है ?

उत्तर - नाटक, साहित्य के गद्य रूप से सम्बन्धित है।

प्रश्न 4. हिन्दी नाट्य साहित्य के इतिहास का वर्गीकरण कीजिए ?

उत्तर - हिन्दी नाट्य साहित्य के इतिहास का वर्गीकरण इस प्रकार किया जाता है - भारतेन्दु युग, प्रसाद युग, प्रसादोत्तर युग, स्वातन्त्रोतर युग।

प्रश्न 5 राधा कृष्ण दास द्वारा रचित नाटकों के नाम बताइये ?

उत्तर - रानी पदमावती, धर्मालाभ, महाराणा प्रताप सिंह , राजस्थान केसरी।

प्रश्न 6. धर्मवीर भारती द्वारा लिखित काव्य नाट्य का नाम बताइये ?

उत्तर - अंधा युग।

प्रश्न 7. लक्ष्मीनारायण लाल ने किस प्रकार के नाटक लिखे हैं ?

उत्तर - लक्ष्मीनारायण लाल ने मनोवैज्ञानिक समस्याओं पर आधारित नाटक लिखे हैं।

प्रश्न 8. हिन्दी का प्रथम नाटक किसे माना जाता है ?

उत्तर - बाबू गोपालचन्द्र द्वारा लिखित 'नहुष नाटक' (1841) को प्रथम नाटक माना जाता है।

प्रश्न 9. 'लहरों का राजहंस', 'आषाढ़ का एक दिन' नाटकों के रचयिता का नाम बताइये?

उत्तर - मोहन राकेश।

प्रश्न 10. वृदांवन लाल वर्मा के सामाजिक नाटकों का नाम बताइयें?

उत्तर - राखी की लाज, बांस की फांस, खिलौने की खोज, केवट, नीलकंठ, सगुन, वृदांवन लाल वर्मा जी केप्रमुख सामाजिक नाटक है।

1.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हिन्दी भाषा एवं साहित्य विश्व कोश, डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त
2. प्रसाद के नाटक, डॉ. परमेश्वरी लाल
3. प्रसाद के नाटक स्वरूप और संरचना, डॉ. गोविन्द चातक
4. हिन्दी नाटक उदभव और विकास, डॉ. दशरथ ओझा
5. हिन्दी नाट्य साहित्य का विकास, डॉ. सोमनाथ गुप्त

1.9 निबंधात्मक प्रश्न-

1. नाटक का स्वरूप निर्धारित करते हुए उसके विभिन्न तत्वों पर प्रकाश डालिए?
2. हिन्दी नाटक के उद्भव और विकास पर प्रकाश डालिए?

इकाई 2 अंधेर नगरी : पाठ एवं मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 पाठ का उद्देश्य
2.3 अन्धेर नगरीः पाठ
2.4 अन्धेर नगरीः आलोचना
2.4.1 कथावस्तु
2.4.2 चरित्र/पात्र
2.4.3 संवाद
2.4.4 देशकाल एवं वातावरण
2.4.5 भाषा का प्रश्न
2.5 अंधेर नगरीः मूल्यांकन
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.9 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

'अंधेर नगरी' भारतेन्दु हरिचन्द्र का न केवल प्रसिद्ध नाटक (प्रहसन) है। बल्कि भारतीय नाट्य परम्परा में भी वह अपना विशिष्ट स्थान रखता है। 'लोक' का सृजनात्मक प्रयोग कैसे किया जा सकता है? इसकी व्यंजना अंधेर नगरी के माध्यम से हमें प्राप्त होती है। सामान्य कथानक से लगने वाले अंधेर नगरी की व्यंजना पूरे राष्ट्र तक कैसे प्रसरित हो जाती है। यह इस नाटक के माध्यम से हमें देखने को मिलती है। चूरन, पाचक, सब्जीवाला इत्यादि के माध्यम से वर्गीय चरित्रों को निर्तित कर भारतेन्दु ने अपने कथ्य को सामाजिक विस्तार दे दिया है। बाजार का दृश्य सायास रखा गया है, जो नाटक को सामाजिक आधार प्रदान करता है। इस नाटक की तीसरी विशेषता यह है कि इसके पात्र प्रतीकात्मक अर्थ पैदा करने में सक्षम हो गये हैं। चौपट्ट राजा, अंधेर नगरी, बाजार, नारायणदास, गोवर्धनदास, महन्त व अन्य पात्र अपना प्रतीकात्क अर्थ भी रखते हैं। नाटक के पात्र विस्तार को संकेतरूप में ही रखा गया है, लेकिन उसके बावजूद

पात्र अपनी व्यंजना करने में सफल हुए हैं। नाटक की एक अन्य विशेषता इसका संकेतात्मक स्वरूप है। ज्यादा कहने की अपेक्षा संकेतो में अपनी बात नाटककार ने कहीं है।

2.2 पाठ का उद्देश्य

इस पाठ्यक्रम की यह दूसरी इकाई है। नाट्क एवं कथेतर साहित्य की अवधारणा से संबंधित इस पुस्तक में मुख्यतः नाटक एवं अन्य गद्य विधाओं पर चर्चा की गई है। यह इकाई हिन्दी के प्रसिद्ध नाटक 'अन्धेर नगरी' के पाठ एवं आलोचना पर केंन्द्रित है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को समझ सकेंगे।
- अंधेर नगरी' नाटक के मूल पाठ से परिचित हो सकेंगे।
- अंधेर नगरी की विशेषता को समझ सकेंगे व उसका मूल्यांकन कर सकेंगे।
- नाटक की विशेषता से परिचित हो सकेंगे।
- नाटक की भाषा की समझ पैदा हो सकेगी।

2.3 अंधेर नगरीः मूल पाठ

अंधेर-नगरी
चौपट्ट राजा
टके सेर भाजी टके सेर खाजा
प्रथम दश्य

(वाह्य प्रान्त)

(महन्त जी दो चेलों के साथ गाते हुए आते हैं)

सब- राम भजो राम भजो राम भजो भाई
राम के भजे से गतिाक तर गई,
राम के भजे से गति गात पाई।
राम के भजे से काम बनै सब,
राम के भजन बिनु सबहि नसाई।।
राम के नाम से दोनो नयन बिनु
सूरदास भये कविकुल राई
राम के नाम से घास जंगल की,
तुलसीदास भये भाज रघुराई।।

महन्त- बच्चा नारायणदा! यह नगर तो दूर से बड़ा सुन्दर दिखालाई पड़ता है! देख, कुछ भिच्छा-उच्छा मिले तो ठाकुर जी का भोग लगे।

ना0दा0-और क्या! गुररूजो महाराज। नगर तो नारायण के आसरे से बहुत ही सुन्दर है जो है सो, पर भिक्षा सुन्दर मिलै तो बड़ा आनन्द हो।

महन्त- बच्चा गोबरधनदास! तू पश्चिम की ओर से जा और नारायणदास पूरब की ओर से जाएगा। देख, जो कुछ सोधा सामग्री मिले तो श्री शालग्राम जी का बाल भोग सिद्ध हो।

गो0दा- गुरूजी! मैं बहुत सी भिक्षा लाता हूँ। यहाँ लोग तो बड़े मालदार दिखलाई पड़ते हैं। आप कुछ चिन्ता मत कीजिए।

महन्त- बच्चा बहुत लोभ मत करणा। देखना, हाँ-

लोभ पाप को मूल है, लोभ मिटावत मान।
लोभ कभी नहीं कीजिए, यामैं नरक निदान।।

(गाते हुए सब जाते हैं)

दूसरा दृश्य

(बजार)

कवाब वाल- बवाब गरमागरम मसालेदार-चौरासी मसाला बहत्तर आंच का -कावाब गरमागरम मसालेदार-खाय सो होंट चाअै, न खाय सो जीभ काटै। कवाब लो, कवाब का ढेर-बेचा टके सेर।

घासीराम- चने जोर गरम-

चने बनावै घासीराम। निज की झोली में दुकान।
चना चुरमुर-चुरमुर बोलै। बाबू खाने को मुँह खोलै।।
चना खावै तौकी मैना। बोले अच्छा बना चबैना।।
चना खायें गफूरन मुत्रा। बोलै और नहीं कुछ सत्रा।।
चना चबाते सब बंगाली। जिनकी धोती ढीली ढाली।।
चना खाते मियां जुलाहे। डाढ़ी हलती गाह बगाहै।।
चना हाकिम सब जो खाते। सब पर दूना टिकस लगाते।।
चने णोर गरम-टके सेर

नारंगीवाली- नरंगी ले नरंगी- सिलहट की नरंगी, बुटवल की नरंगी, रामबाग की नरंगी, आनन्दबाग की नरंगी। भई नीबू से नरंगी। मैं तो पिया के रंग न रंगी। मैं तो झूली लेकर संगी। नरंगी ले नरंगी। कंवला नीबू, मीठा नीबू, रंगतरा, संगतरा। दोनों हाथों लो नहीं पीछे हाथ ही मलते रहोगे। नरंगी ले नरंगी। टके सेर नरंगी

हलवाई-जलेबियाँ गरमागरम। ले सेव इमरती लड्डू गुलाबजामुन, खुरमा, बुदिया, बर्फी, समोसा, पेडा, कचौड़ी, दालमोठ, पकौडी, घेवर, गुपचुप। हलुवा गरम चमाका। घी में गरम चीनी में तरातर चासनी में चमाचम ले मूरे का लड्डू। जो खाय सो भी पछताय जो न खाय सो भी पछताय। रेवड़ी कड़ाका। पापड़ कड़ाका। ऐसी जात हलवाई जिसके छत्तिस कौम है भाई जैसे कलकत्ते के विल्सन, मन्दिर के भिररिए, वैसे अंधेर नगरी के हम। सब सामान ताजा। खाजा ले खाजा। टके सेर खाजा।

कुजड़िन- ले धनिया, मेथी, सोआ, पालक, चौराई, बथुआ, करेमू, नोनियाँ, कुलफा, कसारी, चना, सरसों का साग। मरसा ले मरसा। ले बैगन लौकी, कोहड़ा, आलू, अरूई, बन्डा नेनुआँ सूरन राम तरोई मुरई ले आदी मिरचा लहसुन पियाज टिकोरा। ले फालसा खिरनी आम अमरूद निबुआ मटर होरहा। जेसे काजी वैसे पाजी। रैयत राजी टके सेर भाजी। ले हिन्दुस्तान का मेवा फूट और वैर।

मुगल- बादाम पिस्ते अखरोट अनार बिहीदाना मुनक्का किशमिश अंजीर आबजोश आलूबुखारा चिलगोजा सेब नाशपती बिही सरदा अंगूर का पिटारी आमारा ऐसा मुल्क जिसमें अंगरेज का भी दाँत कट्टा हो गया। नाहक को रूपया खराब किया। हिन्दोस्तान का आदमी लक-लक हमारे यहाँ आदमी बुबंक-बुबंक लो सब भैवा टके सेर।

पाचकवाला- चूरन अमल बेद का भारी। जिसकी खाते कृष्ण मुरारी।।
मेरा पाचक है पचनोला। जिसकी खाता श्याम सलोना।।
चूरन बना मसालेदार। जिसमें खट्टे की बहार।।
मेरा चूरन जो कोई खाये। मुझ को छोड़ कहीं नहीं जाए।।
हिन्दू चूरन इसका नाम। विलायत पूरन इसका काम।।
चूरन जब से हिन्द में आया। इसका धन बल सभी घटाया।।
चूरन ऐसा हट्टा कट्टा। कीना दाँत सभी का खट्टा।।
चूरन चला दाल की मण्डी। इसकी खायेंगी सब रंडी।।
चूरन अमले सब जो खावै। दूनी ख्शावत तुरंत पचावै।।
चूरन नाटक वाले खाते। इनकी नकल पचा कर लाते।।
चूरन सभी महाजन खाते। जिससे जमा हजम कर जाते ।।
चूरन खाते लाला लोग। जिनकी अकिल अकिल अजीरन रोग।।
चूरन खावै एडिटर जात। जिनके पेट पचै नहिं बात।।
चूरन पुलिस वाले खाते। सब कानून हजम कर जाते।।
ले चूरन का ढेर, बेचा टके सेर।।

मछलीवाली- मछरी ले मछरी।
मछरिया एक टके कै बिकाय।
लाख टका के वाला जोबन, गाहक सब ललचाय।
नैन मछरिया रूप जाल में, देखतहि फैसि जाय।
बिनु पानी मछरी सो बिरहिया, मिले बिना अकुलाय।

जातवाला (ब्राह्मण) जात ले जात, टके सेर जात। एक टका दो, हम अभी अपनी जात बेचते हैं। टके के वास्ते ब्राह्मण से धोबी हो जाएं और धोबी को ब्राह्मण कर दें। टके के वास्ते जैसी कहो वैसी व्यवस्था दें। टके के वास्ते झूठ को सच करें। टके के वास्ते ब्राह्मण से मुसलमान, टके के वास्ते हिन्दू से क्रिस्तान। टके के वास्ते धर्म और प्रतिष्ठा दोनों बेचें, टके के वास्ते झूठी

गवाही दें। टके के वास्ते पाप को पुण्य मानें, टके के वास्ते नीच को भी पितामह बनावें। वेद धर्म कुल मरजादा सचाई बड़ाई सब टके सेर। लुटाय दिया अनमोल माल ले टके सेर।

बनिया- आटा दाल लकड़ी नमक घी चीनी मसाला चावल ले टके सेर।

(बाबा जी का चेला गोबरधन आता है। और सब बेचने वालों की आवाज सुन-सुनकर खाने के आनन्द में बड़ा प्रसन्न होता है।)

गो.दा.- क्यों भाई बण्ये, आटा कितणें सेर?

बनियां- टके सेर।

गो.दा.- औ चावल?

बनियां- टके सेर।

गो. दा.- और चीनी?

बनियां- टके सेर।

गो.दा.- और घी?

बनियां- टके सेर।

गो.दा.- सब टके सेर सचमुच।

बनियां- हाँ महाराज, क्या झूठ बोलूँगा।

गो.दा.- (कुँजड़िन के पास जाकर) क्यों भाई भाजी क्या भाव?

कुँजड़िन'-बाबा जी, टके सेर। निबुआ मुरई धनिया मिरचा साग सब टके सेर।

गो.दा. - सब भाजी टके सेर। वाह! वाह। बड़ा आनन्द है। यहाँ सभी चीज टके सेर। (हलवाई के पास जाकर) क्यों भाई हलवाई? मिठाई कितने सेर?

हलवाई- बाबा जी! लडुआ हलुआ जलेबी गुलाब जामुन खाजा टके सेर।

गो.दा.- वाह!वाह! बड़ा आनन्द है? क्यों बच्चा, मुझसे मसखरी तो नहीं करता? सचमुच सब टके सेर?

हलवाई- हाँ बाबा जी, सचमुच सब टके सेर । इस नगरी की चाल ही यही है। यहाँ सब चीज टके सेर बिकती है।

गो.दा.- क्यों बच्चा। इस नगरी का नाम क्या है?

हलवाई- अंन्धेर नगरी।

गो.दा.- और राजा का क्या नाम है?

हलवाई- चौपट्ट राजा?

गो.दा.- वाह!वाह! अन्धेर नगरी चौपट्ट राजा, टके सेर भाजी टका सेर खाजा (यही गाता है और आनन्द से बगल बजाता है)

हलवाई- तो बाबा जी, कुछ लेना देना हो तो लो दो।

गो.दा.- बच्चा, भिक्षा माँग कर सात पैसे लाया हूँ, साढेऋ तीन सेर मिठाई दे दे, गुरू चेले सब आनन्दपूर्वक इतने में छक जायेंगे।

(हलवाई मिठाई तोलता है बाबा जी मिठाई लेकर खाते हुए और अन्धेर नगरी गाते हुए जाते हैं।) (पटाक्षेप)

तीसरा दृश्य

(स्थान जगल)

(महन्त जी और नारायणदास एक ओर से राम भजो इत्यादि गीत गाते हुये आते हैं और एक ओर से गोवरधनदास अन्धेर नगरी गाते हुए आते हैं)

महन्त- बच्चा गोबरधनदास! कह क्या भिक्षा लाया। गठरी तो भारा मालूम पड़ती है।

गो.दा.- बाबा जी महाराज! बड़े माल लाया हूँ, साढे तीन सेर मिठाई है।

महन्त- देखूं बच्चा! बड़े (मिठाई की झोली अपने सामने रखकर खोल कर देखता है) वाह! वाह! बच्चा! इतनी मिठाई कहाँ से लया? किन धर्मात्मा से भेंट हुई?

गो.दा.- गुरूजी जो महाराज! सात पैसे भाव में मिल थे, उससे इतनी मिठाई मोल ली है।

महन्त- बच्चा नारायण दास ने मुझसे कहा था कि यहाँ सब चीज टके सेर मिलती है, तो मैंने इसकी बात का विश्वास नहीं किया। बच्चा यह कौन सी नगरी है? और इसका कौन सा राजा है जहाँ टके सेर भाजी और टके सेर खाजा है।

गो.दा.- अन्धेर नगरी चौपट्ट राजा, टके सेर खाजा टके सेर खाजा।

महन्त- तो बच्चा! ऐसी नगरी में रहना उचित नहीं है, जहाँ टके सेर भाजी और टके से ही सेर खाजा हो।

दोहा- सेत सेत सब एक से, जहाँ कपूर कपास ।
ऐसे देश कुदेश में, कबहुँ न कीजै बास ।।
कोकिल वायस एक सम, पण्डित मूरख एक।
इन्द्रामन दाड़िम विषम, जहाँ न नकु विवेकु।।
बसिये ऐसे देश नहिं, कनक बृष्टि जो होय।
रहिए तो दुख पाइये, प्रान दीजिये रोय।।

सो बच्चा चलो यहाँ से । ऐसी अन्धेर नगरी में हजार मन मिठाई मुफ्त की मिलै तो किस काम की। यहाँ एक छन नहीं रहना।

गो.दा.- गुरू जी तो संसार भर में कोई देश ही नहीं है। दो पैसा पास रहने ही में मजे मै पेट भरता है। मैं तो इस नगर को छोड़ कर नहीं जाऊँगा। और जगह दिन भर मांगो तो भी पेट नहीं भरता। वरन बाजे बाजे दिन उपास करना पड़ता है। सौ मे तो यहाँ रहूँगा।

महन्त- देख बच्चा, पीछे पछतायेगा।

गो.दा.- आपकी कृपा से कोई दुख न होगा, मे तो यही कहता हूँ कि आप भी यहीं रहिये।

महन्त- मैं तो इस नगर में अब एक क्षण भी नहीं रहूँगा। देख मेरी बात मान नहीं पीछे पछताएगा। मैं तो जाता हूँ, पर इतना कहे जाता हूँ कि कभी संकट पड़े तो हमारा स्मरण करना।

गो.दा.- प्रणाम गुरू जी, मैं आप का नित्य ही स्मरण करूँगा। मैं तो फिर भी कहता हूँ कि आप भी यहीं रहिये।

(महन्त जी नारायण दास के साथ जाते हैं, गोबर्धनदास बैठकर मिठाई खाता है)

(पटाक्षेप)

चौथा दृश्य

(राज सभा)

(राजा-मन्त्री और नौकर लोग यथास्थान स्थित है)

एक सेवक- (चिल्ला कर) पान खाइए महाराज।

राजा- (पीनक से चौंक के घबड़ाकर उठता है) क्या कहा। सुपनखा आईए महाराज। (भागता है)

मन्त्री- (राजा का हाथ पकड़कर) नहीं नहीं, यह कहता है कि पान खाइए महाराज।

राजा- दृष्ट लुच्चा पाजी! नाहक हमको डरा दिया। मन्त्री इसको सौ कोड़े लगैं।

मन्त्री- महाराज! इसका क्या दोष है। न तमोली पान लगाकर देता, न यह पुकारता।

राजा- अच्छा, तमोली को दो सौ कोड़े लगैं।

मन्त्री- पर महाराज, आप पान खाइए सुनकर थोड़े ही डरे हैं। आप तो सूपनखा के नाम से डरे हैं, सुपनखा की सजा हो।

राजा- (घबड़ाकर) फिर वही नाम। मन्त्री बड़े खराब आदमी हो। हम रानी से कह देगे कि मन्त्री बेर-बेर तुको सौत बुलाने चाहता है। नौकर! नौकर! शराब।

नौकर- (एक सुराह में से एक गिलास में शराब उझल कर देता है) लीजिए महाराज। पीजिए महाराज।

राजा- (मुँह बनाकर पीता है) और दे।

(नेपथ्य में -दुहाई है दुहाई का शब्द होता है।)

कौन चिल्लाता है- पकड़ लाओ।

(दो नौकर एक फर्यादी को पकड़ लाते हैं।)

फरयादी - दोहाई हो महाराज दोहाई है। हमारा न्याय होय।

राजा- चुप रहो। तुम्हारा न्याय यहाँ ऐसा होगा कि जैसा जम के यहाँ भी न होगा। बोलो क्या हुआ।

फ. -महाराज कल्लू बनिया को दीवार गिर पड़ी सो मेरी बकरी उकसे नीचे दब गई। दोहाई है महाराज न्याय हो।

राजा- (नौकर से) कल्लू बनिया को, दीवार को अभी पकड़ लाओ।

मन्त्री- महाराज, दीवार नहीं लाई जा सकती।

राजा- अच्छा, उसका भाई, लड़का, दोस्त, आशना जो हो उसको पकड़ लाओ।

मन्त्री- महाराज! दीवार ईंट चूने का होता है, उसको भाई बेटा नहीं होता।

राजा- अच्छा कल्लू बनिये को पकड़ लाओ।

(नौकर लोग दौड़कर बाहर से बनिये को पकड़ लाते हैं)

क्यों बे बनिये! इसकी लरकी, नहीं बरकी क्यों दबकर गर गई।

मन्त्री- बरकी नहीं महाराज बकरी।

राजा- हां, हां, बकरी क्यों मर गई बोल, नहीं अभी फाँसी देता हूँ।

कल्लू- महाराज! मेरा कुछ दोष नहीं। कारीगर ने ऐसी दीवार बनाया कि गिर पड़ी।

राजा- अच्छा कल्लू को छोड़ दो, कारीगर की पकड़ लाओ। (कल्लू जाता है। लोग कारीगर को पकड़ लाते हैं) क्यों बे कारीगर! इसकी बकरी किस तरह मर गई।

कारीगर- महाराज मेरा कुछ कसूर नहीं चूने वाले ने ऐसा वोदा बनाया कि दीवार गिर पड़ी।

राजा- अच्छा इस कारीगर को बुलाओ, नहीं नहीं निकालो, उकस चूने वाले को बुलाओ। (कारीगर निकल जाता है, चूने वाला पकड़कर लाया जाता है) क्यों बे खैर सुपाड़ी चूने वाले। इसकी बकरी कैसे मर गई।

चूने वाला- महाराज! मेरा कुछ दोष नहीं, भिश्ती ने चूने ने पानी ढेर दे दिया, इसी से चूना कमजोर हो गया होगा।

राजा- अच्छा चुन्नीलाल को निकालो, भिश्ती को पकडो। (चूने वाला निकल जाता है, भिश्ती लाया जाता है) क्यों बे भिश्ती! गंगा-जमुना की किश्ती! इतना पानी क्यों दिया कि इसकी बकरी गिर पड़ी और दीवार दब गई।

भिश्ती- महाराज गुलाम का कोई कसूर सनहीं, कस्साई ने मसक इतनी बड़ी बना दिया कि उसमें पानी जादे आ गया।

राजा- अच्छा कस्साई को लाओ, भिश्ती निकालो। (लोग भिश्ती को निकालते हैं और कसाई को लाते हैं) क्यों बे कस्साई, मशक ऐसी क्यों बनाई कि दिवार लगाई बकरी दबाई।

कस्साई- महाराज! गड़रिया ने टके पर ऐसी बड़ी भेंड़ मेरे हाथ बेची कि उसकी मशक बड़ी बन गई।

राजा- अच्छा कस्साई को निकालो, गड़ेरिये को लाओं। (कस्साई निकल जाता है। गड़ेरिया आता है) ऐसी बड़ी भेड़ क्यों बेचा कि बकरी मर गई।

गड़ेरिया-महाराज उधर से कोतवाल साहब की सवारी आई, सो उसके देखने में मैंने छोटी भेड़ का ख्याल नहीं किया, मेरा कुछ कसूर नहीं।

राजा- अच्छा इसको निकालो, कोतवाल को अभी सरबमुहर पकड़ लाओ।

(गड़ेरिया निकाला जाता है, कोतवाल पकड़ा जाता है) क्यों बे कोतवाल। तैनें सवारी ऐसी धूम से क्यों निकाली कि गड़ेरिया ने घबड़ाकर बड़ी भेड़ बेचा, जिससे बकरी गिर कर कल्लू बनियाँ दब गया।

कोतवाल- महाराज, महाराज! मैंने तो कोई कसूर नहीं किया मैं तो शहर के इन्तजाम के वास्ते जाता था।

मन्त्री- (आप ही आप) यह तो बड़ा गजब हुआ, ऐसा न हो कि बेककूफ इस बात पर सारे नगर को फूँक दे या फांसी दे। (कोतवाल से) यह नहीं, तुम ने ऐसे धूम से सवारी क्यों निकाली।

राजा- हां हां नहीं; तुमने ऐसे धूम से सवारी क्यों निकाली कि उसकी बकरी दबी।

कोतवाल- महाराज— महाराज—

राजा- कुछ नहीं, महाराजा! महाराज ले जाओ, कोतवाल को अभी फाँसी दो। दरबार बरखास्त।

(लोक एक तरफ से कोतवाल को पकड़ कर ले जाते हैं, दूसरी ओर से मन्त्री को पकड़ कर राजा जाते हैं।)

(पटाक्षेप)

पाँचवा दृश्य

(आराण्य)

(गोवर्धनदास गाते हुए जाते हैं)

अंन्धेर नगरी अनबूझ राजा। टके सेर भाजी टका सेर खाजा।।
नीचे-ऊँचे सब एकहि ऐसे। जैसे भडुएँ पंडित तैसे।।
कुल मरजाद न मान बड़ाई। सबै एक से लोग लुगाई।।
जात पात पूछै नहिं कोई। हरि की भजे सो हरि को होई।।
वेश्या जोरू एक समाना। बकरी गऊ एक करि जाना।।
सांचे मारे मारे डोलै। छली दुष्ट सिर चढ़ि-चढ़ि बोलै।।
प्रगट सभ्य अन्तर छलकारी। सोई राज सभा बलभारी।।
सांच कहे ते पनहीं खावै। झूठे बहुविधि पदवी पावै।।
छलिमान एका के आगे। लाख कहो एकहु नहिं लागे।।
भीतर कोई मलिन की कारो। चहिये बाहर रंग चटकारी।।
धर्म अधर्म एक दरगाई। राजा करे सो न्याव सदाई।।
भीतर स्वाहा बाहर सादे। राजा करहिं अमल अरूप्यादे।।
अन्धा धुन्ध मच्या सब देसा। मानहु राजा रहत विदेशा।।
गो द्विज श्रुति आद नहिं होई। मानहु नृपत्ति विधर्म्मी कोई।।
ऊँचे नीच सब एकहि सारा। मानहुं ब्रह्म ज्ञान विस्तारा।।
अंधेर नगरी अनबूझ राजा। टका सेर भाजी टका सेर खाजा।

(बैठकर मिठाई खाता है)

गुरू जी ने हमको नाहक यहाँ रहने को मना किया था। माना कि देस बहुत बुरा है। पर अपना क्या। अपने किसी राज काज में थोड़े हैं कि कुछ डर है, रोज मिठाई चाभना, मजे में आनन्द से राम भजन करना।

(मिठाई खाता है)

(चार प्यादे चार ओर से आकर उसको पकड़ लेते हैं)

1 प्या0- चल बे चल, बहुत खा कर मुटाया है। आज पूरी हो गई।

2 प्या0- बाबा जी चलिए, नमोनारायन कीजिये।

गो0दा0- (घबड़ा कर) है! यह आफत कहाँ से आई। अरे भई, मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है जो मुझको पकड़ते हो।

1 प्या0- आप ने बिगाड़ा है या बनाया है, इस से क्या मतलब अब चलिये मुझे फाँसी चढ़िए।
गो0दा0-फाँसी । अरे बाप रे बाप फांसी!! मैंने किसकी जमा लूटी है, कि मुझको फांसी! मैंने किसके प्राण मारे कि मुझको फांसी!
2 प्या0- आप बड़े मोटे हैं, इस वास्ते फाँसी होती है।
गो0दा0-मोटे होने से फांसी । यह कहाँ का न्याय है। अरे, हंसी फकीरों से नहीं करनी होती ।
1 प्या0- जब सूल चढ़ लीजिएगा तब मालूम होगा कि हंसी है कि रच। सीधी राह से चलते हो कि घसीट कर ले चलें।
गो0दा0-अरे बाबा क्यों बेकसूर का प्राण मारते हो। भगवान के यहाँ क्या जवाब दोगे?
1 प्या0- भगवान को जबाब राजा देगा। हमो क्या मतलब। हम तो हुक्मी बन्दे हैं?
गो0दा'- तब भी बाबा क्या है कि हम फकीर आदमी को नाहक फाँसी देते हो?
1 प्या0- बात है कि कल कोतवाल को फांसी का हुकम हुआ था। जब फाँसी देने को उसे ले गेये; तो फाँसी का फन्दा बड़ा हुआ; क्योंकि कोतवाल साहब दुबले हैं। हम लोगों ने महाराज से अर्ज किया, इस पर हुक्म हुआ कि एम मोटा आदमी पकड़कर फाँसी दे दो, क्योंकि बकरी मारने के अपराध में किसी न किसी को सजा होनी जरूर है, नहीं तो न्याय न होगा। इसी वास्ते ले जाते हैं कि कोतवाल के बदले तुमको फाँसी दें।
गो0दा0-तो क्या और कोई मोटा आदमी इस नगर भर में नहीं मिलता जो मुझ अनाथ फकीर को फाँसी देते हैं।
1प्या0- इसमें दो बात है- एक तो नगर भर में राजा के न्याय के डर से कोई मुटाता ही नहीं, दूसरे और किसी का पकडा तो वह न जाने क्या बात बनावे कि हमी लोगों के सिर कीहं न घहराय और फिर इस राज में साधू महात्मा इन्हीं लोगों के सिर कहीं न घहराय और फिर इस राज में साधू महात्मा इन्हीं लोगों की दुर्दशा है, इससे तुम्ही को फांसी देंगे।
गो0दा0-दुहाई परमेश्वर की, अरे मैं नाहक मारा जाता हूँ। अरे यहां बड़ा ही अन्धेर है, अरे गुरू जी महाराज कहा मैंने न माना उसका फल मुझ को भोगना पड़े। गुरू जी कहां हो! आओ, मेरे प्राण बचाओ, अरे मैं बेअपराध मारा जाता हूँ गुरू जी! गुरू जी-
(गोवरर्धनदास चिल्लाता है, प्यादे लोग उसको पकड़ कर ले जाते हैं) (पटाक्षेप)
छठा दृश्य
(स्थान- श्मशान)
(गोवर्धनदास को पकड़े हुए चार सिपाहियों का प्रवेश)
गो0दा0-हाय बाप रे! मुझे बेकसूर ही फांसी देते हैं। अरे भाइयों, कुछ तो धरम विचारी! अरे मुझ गरीब को फाँसी देकर तुम लोगों को क्या लाभ होगा। अरे मुझे छोड़ दो । हाय! हाय!
(रोता है और छुड़ाने का यतन करता है)
1सिपाही-अबे चुप रह- राजा का हुकुम कहीं टल सकता है। यह तेरा आखिरी दम है, राम का नाम ले- बेकाइदा क्यों शोर करता है। चुप रह-

गो0दा0-हाय! मैंने गुरू जी का कहना न माना, उसी का यह फल है। गुरू जी ने कहा था कि ऐसे नगर में न रहना चाहिये, हय मैंने न सुना! अरे! इस नगर का नाम ही अंधेरी नगरी और राजा का नाम चौपट्ट है, तब बचने की कौन आशा है। अरे! इस नगर में ऐसा कोई धर्मात्मा नहीं है। जो इस फकीर को बचावै। गुरू जी! कहाँ हैं। बचाओ- गुरू जी-

गुरू जी- (रोता है, सिपाही लोग उसे घसीटते हुए ले चलते हैं)

(गुरू जी और नारायण दास आते हैं)

गुरू- अरे बच्चा गोवर्धनदास! तेरी यह क्या दशा है।

गो0दो0-(गुरू को हाथ जोड़कर) गुरू जी! दीवार ने नीचे बकरी दब गई, सो इसके लिए मुझे फांसी देते हैं, गुरू जी बचाओ।

गुरू0-अरे बच्चा! मैंने तो पहिले ही कहा था कि ऐसे नगर में रहना ठीक नहीं, तैने मेरा कहना नहीं सुना।

गो0दा0-मैंने आपका कहा नहीं माना उसी का यह फल मिला। आपके सिवा अब ऐसा कोई नहीं है जो रक्षा करे। मैं आपही का हूँआप के सिवा और कोई नहीं। (पैर पकड़कर रोता है)।

महन्त- कोई चिन्ता नहीं, नारायण 'सब' समर्थ है। (भौंह चढा़कर सिपाहियों से) सुनो, मुझको अपने शिष्य को अंन्तिम उपदेश देने दो, तुम लोग तनिक किनारे हो जाओ, देखा मेरा कहना न मानोगे तो तुम्हार भला न होगा।

सिपाही- नहीं महाराज हम लोग हट जाते हैं। आप बेशक उपदेश कीजिये।

(सिपाही हट जाते हैं। गुरू जी चेले के कान में समझाते हैं)

गो0दा0-(प्रकट) तब तो गुरू जी हम अभी फाँसी चढ़ेगे।

महन्त- नहीं बच्चा मुझको चढ़ने दें।

गो0दा0-नहीं गुरू जी, हम फाँजी चढ़ेगे।

महन्त- नहीं बच्चा हम इतना समझाया नहीं मानता, हम बूढ़े भए, हमको जाने दे।

गो0दा0-स्वर्ग जाने में बूढ़ा़ जवान क्या। आप तो सिद्ध हो, आपको गति-अगति से क्या। मैं फांसी चढ़ूँगा।

(इसी प्रकार दोनो हुज्जत करते हैं- सिपाही लोग परस्पर चकित होते हैं)

1 सिपाही- भाई! यह क्या माजरा है, कुछ समझ नहीं पड़ता।

2 सिपाही- हम भी नहीं समझ सकते कि यह कैसा गबड़ा हैं।

(राजा, मन्त्री, कोतवाल आते हैं)

राजा- यह क्या गोलमाल है।

1सिपाही- महाराज! चेला कहता है मैं फाँसी चढ़ूँगा, गुरू कहता है, मे चढ़ूँगा, कुछ मालूम नहीं पड़ता कि क्या बात है।

राजा- (गुरू से) बाबा जी! बोलो। काहे आप फाँसी चढ़ते हैं।

महन्त- राजा! इस समय ऐसा साइत है कि जो मरेगा सो बैकुंठ जायगा।

मंत्री- तब तो हमी फाँसी चढ़ेगें।

गो0दा0-हम हम। हमको तो हुकुम है।

कोलवाल- हम लटकेंगे। हमारे सबब तो दिवार गिरी।

राजा- चुप रहो, सब लोग। राजा के होते और कौन बैकुण्ठ जा सकता है। हमको फाँसी चढा़ओ, जल्दी, जल्दी।

महन्त- जहाँ न धर्म्म न बुद्धि नहिं, नीति न सुजान समाज।
ते ऐसहिं आपुहि नसे, जैसे चोपट राजा।।
(राजा को लोग टिकटी पर खड़ा करते हैं)
(पटाक्षेप)

2.4 अन्धेरनगरी - आलोचना

(अ)जीवन परिचय

भारतेन्दु हरिचन्द्र का जन्म काशी के एक समृद्ध परिवार में हुआ था। आपके जीवन काल 1850-1800 को देखते हुए आपकी साहित्यिक उपलब्धियाँ बहुत बड़ी थीं। साहित्यिक पत्रकारिता (कविवचन सुधा, हरिश्चन्द्र मैगजीन, हरिचन्द्र चन्द्रिका) के प्रारम्भ की बात हो या गद्य की अन्य विधाओं के प्रारम्भ (आत्मकथा, जीवनी, निबंध, नाटक, यात्रावर्तांत जैसी विधाओं) की बात भारतेन्दु हिन्दी साहित्य के प्रवर्तक बनते हैं। पद्य को खड़ी बोलने की ओर मोड़ने का प्रयास हो या साहित्य संबंधी 'रीतिविरोधी मानसिक' चेतना पैदा करने का प्रश्न हो, भारतेन्दु हरिचन्द्र हिन्दी साहित्य में अग्रणी माने जाते हैं। हिन्दी साहित्य को राष्ट्रीयता, समाजसुधार की ओर मोड़ने का प्रश्न हो या 'निज भाषा' की उन्नति का सूत्र प्रदान करने का प्रश्न, भारतेन्दु अपने युग के निर्माता बनते हैं। भाषागत रवानी एवं व्यंग्य के प्रयोग के कारण भारतेन्दु की भाषा जिंदादिल हो गई है। भारतेन्दु का लेखकीय व्यक्तित्व इतना बड़ा था कि अपने युग में ही 'भारतेन्दु-मण्डल' के नाम से विख्यात हो गया है

(ब) नाटक परिचय

'अंधेर नगरी' भारतेन्दु का सर्वाधिक चर्चित नाटक (प्रहसन) है। इसका रचनाकाल सन् 1881 है। इस तरह से यह भारतेन्दु का अंतिम नाटक है। अंधेर नगरी की रचना बंगाल के एक जमींदार को शिक्षित करने लिए भारतेन्दु ने की थी। यह नाटक एक रात में लिखा गया था। अपने कलेवर में यह नाटक संक्षिप्त ही कहा जा सकता है। लेकिन अपने अर्थ- गांभीर्य में यह नाटक इतनी व्यंजना लिये हुए है। कि पूरा नाटक ही प्रतीकात्मक हो गया है। यह नाटक छः दृश्यों में विभक्त है। नाटक का विकासा नाटकीय कार्य व्यापारों पर आधारित है। आरम्भ, प्रयन्त, फलागम जैसी शा़स्त्रीयता भी है और समसामयिकता भी । एक ओर नाटक लोकवृत्त का घेरा तैयार करता हे। तो दूसरी और व्यवस्था पर चोट करता है। हास्य-व्यंग्य के साथ व्यवस्था की विसंगति को दिखान ही इस नाटक का मूल उद्देश्य है ।

2.4.1 कथावस्तु

अंधेर नगरी' नाटक (प्रहसन) की कथावस्तु का आधार सामाजिक राजनीतिक व्यवस्था पर निर्मित था। छ' दृश्यों में विभक्त इस नाटक की कथावस्तु का आधार वर्तमान सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक एवं सांस्कृतिक विसंगति है। प्रथम दृश्य नाटक की प्रस्तावना रूप में आया है। ''लोभ पाप को मूल है, लोभ मिटावत मान/लोभ कभी नहीं कीजिए, यामैं नरक निदान।।'' सूत्र रूप में आया है। लोभ और मूर्खता चूँकि पूरे नाटक के कथा तत्वों को आबद्ध किए हुए है, इस दृष्टि से भी महन्त द्वारा कहे गये ये वाक्य नाटक की प्रस्तावना व कथा के मूल बिन्दु का संकेत करते हैं। भारतेन्दु के नाटकों की एक प्रधान विशेषता उसका प्रतीकाव्यक स्वरूप है। चाहे व 'भारत-दुर्दशा' नाटक हो या ' अंधेर नगरी' अपनी व्यंजना में प्रतीकात्मकता ही है। इस नाटक में गुरू विवके के प्रतिनिधि रूप में आया हें गोबर्धनदास मूर्खता के प्रतीक रूप में आया हे। दूसरा शिष्य नारायणदास बुद्धि के प्रतीक रूप में आया है, जो विवेक का अनुसरण करती है। चौपट राज-दिशाहीन व्यवस्था का प्रतीक है। नाटक का दूसरा दृश्य बाजार पर आधारित है। बाज़ार में कबाव, चनेवाला, नारंगीवाली, हलवाई, कुंजड़िन, मसाले वाला, पाचक वाला, मछली वाली, बनिया सभी अपनी दुकान लगाये दिखते हैं। सबका दाम प्रति टका सेर है। पूरे नाटक का बीज वक्तव्य भी इसी पंक्ति में निहित है। नाटक का तीसरा दृश्य गुरू (महन्त) व उकसे दोनों शिष्यों नारायणदास व गोबर्धनदास के वार्तालाप पर आधारित है। महन्त अपने शिष्यों को समझाता है कि जहाँ अच्छे और बुरे, मूर्ख व पंडित का भेद न हो, वह जगह रहने लायक नहीं हे। इस प्रकार यह दृश्य नाटक में आने वाले घटना- क्रम का संकेत करता है। नाटक का चतुर्थ दृश्य राजसभा का है। इस दृश्य मै चौपट्ट राजा की मूर्खता का हमें दर्शन होता है। कथा सूत्र का विकास भी इसमें है- जब राजा की अदूरदर्शिता व अन्यायपूर्ण समझ का हमें पता चलता है। पाँचवें दृश्य में नाटकीय ढंग से गोवर्धनदास को फाँसी के लिए पकड़ लिया जाता है। इस तर्क के कारण कि 'जो भी मोटा होगा और जिसकी गर्दन फाँसी के फंदे में आयेगी, उसे फाँसी दिया जायेगा', गाबर्धनदास को फांसी के लिए पकड़ लिया जाता है। यह दृश्य नाटकीय भाषा में कथा का चरम विकास हें नाटक का छठा व अंतिम दृश्य श्मसान पर केन्द्रित है। गोबर्धनदास के बुलाने पर महन्त आकर उसे बचा लेता है और अपनी बृद्धि से राजा को फांसी पर चढ़ा देता है। इस प्रकार सुखद अन्त के साथ नाटक सामप्त हो जाता है। कथावस्तु का विश्लेषण करें तो ऊपर से साधारण सी दिखनेवाली कथावस्तु अपने भीतर गहरे व्यंग्य को धारण किए हुए है। कथावस्तु का फैलाव इतना घनीभूत है कि चौपट्ट राजा व अंधेर नगरी संपूर्ण राष्ट्र के पर्याय रूप में प्रसरित हो जाते हैं।

2.4.2 पात्र/ चरित्र चित्रण-

संपूर्ण नाटक का विश्लेषण करने पर 'अंधेर नगरी' की व्यंजना अपने आप में अप्रतिम है। चाहे वह कथावस्तु का संदर्भ हो या चरित्र-चित्रण का प्रश्न, सर्वत्र भारतेन्दु के व्यक्तित्व व लेखन- शैली के हमें दर्शन होते है। चरित्र व पात्र विश्लेषण के प्रसंग में हम देखते है। कि अन्य नाटाकें की तुलना इस नाटक में पात्रों की संख्या कम है। महन्त, उसके दोनों शिष्यों - नारायणदास व गोबर्धनदास व चौपट्ट राजा यही नाटक के प्रधान चरित्र है। अन्य पात्रों में मंत्री, चूने वाला, भिश्ती, कस्साई, गड़ेरिया, कोतवाल, सिपाही हैं। इसके अतिरिक्त भारतेन्दु जी ने कुछ

वर्गीय पात्रों का भी रचा है। नाटक के दूसरे दृश्य में कबाव वाला, घासीराम, नारंगी वाली, हलवाई, कुजड़िन, मुगल, पाचकवाला, मछलीवाली, जातवाला (ब्राह्मण), बनियाइत्यादि है। भारतेन्दु के चरित्र चित्रण में उनकी व्यंग्यात्मक दृष्टि देखते ही बनती है। चाहे व नगर का नामकरण (अंधेर नगरी) हो या राजा का नामकरण (चौपट्ट राजा)।

2.4.3 संवाद-

'अंधेर नगरी' अपने कलेवर में संक्षिप्त व छोटा नाटक है। संक्षिप्त आकार के बावजूद अपने संवादों की चुस्ती, प्रसंगानुइलता व व्यंग्यता के कारण नाटक की भाषा अपने उद्देश्य में सफल है। सामान्य बोलचाल की भाषा में इतना अर्थ- गौरव कम ही देखने को मिलता हे। जयशंकर प्रसाद की संवाद योजना की तरह भारतेन्दु में दार्शनिक ऊँचाई भले न मिले, किन्तु व्यंग्य में भारतेन्दु के संवाद ज्यादा मारक है। गीतात्मक ढंग से प्रहसन का प्रारम्भ होता है, जो भारतीय नाट्य परम्परा के क्रम में ही है। दूसरे दृश्य में, बाज़ार का संपूर्ण चित्र गीतों के माध्यम से ही खींचा है। गीत भी सीधे-सादे नहीं व्यंग्यात्मक। घासीराम का कथन देखें- 'चना हाकिम सब जो खातै। सब पर दूना टिकस लगाते ।।' इसी प्रकार पाचकवाला का संवाद देखिये- '' चूरन जब से हिन्द में आया। इसका धन बल सभी घटाया..... चूरन सभी महाजन खाते। जिससे जमा हजम कर जाते।।..... चूरन खावै एडिटर जात, जिनके पेट पचै नहिं बात।।..... चूरन साहब लोग जो खाता। सारा हिन्द हजम कर जाता।। चूरन पुलिस वाले खाते। सब कानून हजम कर जाते ।।'' इसी प्रकार जातवाला (बाह्मण) का कथन देखिये- 'जात ले जात, टके सेर जात। एक टका दो, हम अभी अपनी जात बेचते हैं। टके के वास्त ब्राह्मण से धोबी हो जाएं और धोबी को ब्राह्मण कर दें..... उत्तर- आधुनिक संदर्भों में उपरोक्त पंक्तियाँ कितनी प्रासांगिक हैं। इसी प्रकार गोबर्धनदास का कथन देखें- ' अन्धेर नगरी चौपट्ट राजा, टके सेर भाजी टका सेर खाजा'।

'अंधेर नगरी' नाटक की भाषा की एक प्रमुख विशेषता इसकी हास्य शैली है। नाअक् के चौथे दृश्य में इस प्रकार के काफी संवाद हैं।

2.4.4 देशकाल एवं वातावरण-

'अन्धेर नगी' नापटक का रचनाकाल 1881 ई. है। वह समय एक और भारतीय समाज राजनीतिक रूप से औपनिवेशिक परतंत्रता से जूझ रहा था, दूसरी ओर सामाजिक धरातल पर जातिगत, धार्मिक, वर्गगत संकीर्णताओं से भी जझ रहा था। कहते हैं- 'अंधेर नगरी' नाटक की तत्कालीन प्रेरणा यह कही जाती है कि इसे भारतेन्दु जी ने बंगाल के एक भ्रष्ट जमींदार को उसके कर्तव्य का भान कराने के लिए लिखा था। क्रमशः नाटक की व्यंजना संपूर्ण राष्ट्र में प्रसरित हो जाती है। अंधेर नगरी, अंग्रेजी कुशासन के प्रतीक के रूप में रूपान्तरित हो जाता हे। और चौपट्ट राजा तत्कालीन अंग्रेजी शासकों में रूपान्ततिर हो जाता है। भारतेन्दु युग की अराजकता, दिशाहीनता एवं शोषण को यह नाटक बखूबी चित्रित करता है। पाचकवाले के बहाने से भारतेन्दु ने भारतवासियों की दुर्बलता, रिश्वतखोरी, महाजनों का शोषण, अंग्रेजों का शोषण, पुलिस की अराजकता इत्यादि पर प्रकाश डाला हें इसी प्रकार जातवाले के बहाने से भारतेन्दु जी ने पूँजी की

वर्चस्ववादी प्रकृति व भारतीय समाज के अनैतिक आचरण व ह्रासशील स्थिति का चित्र खींचा है। तत्कालीन समाज की विसंगति को व्यक्त करने के लिए भारतेन्दु जी ने गीतों का सार्थक प्रयोग किया है। अंधेर-नगरी का प्रसिद्ध कथन देखिये-

'' अन्धा धुन्ध मच्या सब देसा।
मानहु राजा रहत विदेशा।''

अभ्यास प्रश्न-

(क) रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए।

1. अंधेर नगरी..... है। (भाण/गीतिका/प्रहसन)
2. अंधेरे नगरी कर रचनाकाल..... है।(1850/188/1900)
3. अंधेर नगरी के राजा का नाम.... है। (चौपट्ट/गोवर्धनदा/नारायणदास)
4. गुरू को नाटक में कहा गया हैं (गोवर्धनदास/महन्त/नारायणदास)
5. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म..... में हुआ था। (1850/1885/1900)

(ख) सही / गलत का चुनाव कीजिए।

1. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की मृत्यु 1885 ई0 में हुई थी। (सही/गलत)
2. भारतेन्दु हरिचन्द्र ने कई गद्य विधाओं की शुरूआज की थी। (सही/गलत)
3. कविवचन सुधा भारतेन्दु द्वारा संपादित पत्रिका थी। (सही/गलत)
4. अंधेरे नगरी 4 दृश्यों में विभक्त नाटक हैं। (सही/गलत)
5. भारत दुर्दशा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित नाटक है। (सही/गलत)

2.5 अंधेर नगरीः मूल्यांकन

जब राष्ट्र सांस्कृतिक व राजनीतिक पराधीनता के चक्र के तले दबता-पिसता, कराहता है तब-तब समर्थ रचनाकार अपने ढंग से उसका प्रतिकार करते रहते हैं। प्रतिकार में अक्सर 'लोक' उनका आधार व माध्यम बनते हैं। अंग्रेजीं दासता का प्रतिकार लोक जीवन व लोक शैली से बेहतर और क्या हो सकता था? अंधेर नगरी में भारतेन्दु जी ने लोक को आधार बनाकर के औपनिवेशिक सत्ता से प्रतिरोध की नई रणनीति खोजी है। 'अंधेर नगरी- सम्पूर्ण लूट-खसोट व दिशाही राष्ट्र का प्रतीक बन गया। अंधेर नगरी आज मुहाविरा बन गया है, यह किसी रचनाकार की सामर्थ्य का ही संकेत समझना चाहिए। ऊपरले स्तर पर देखने पर इसकी कथावस्तु की कमियों की ओर लोगों ने ईशारा भी किया है। डॉ0 प्रहसन की कथावस्तु साधारण हें कहीं-कहीं उसमें ऐसे अंश आ गए हैं, जो देश की तत्कालीन अवस्था पर प्रकाश डालते है । साथ ही उसमें अति नाटकीयता है और हास्य भी उच्च कोटि का नहीं है।'' दरअसल अंधेर-नगी की व्यंजकता को न समझ पाने के कारण ही आलोचकों ने इसे साधारण नाटक समझ लिया। जबकि अपनी साधारणता में हय महान व्यंजकता को अपने में समेटे हुए है। हमने पहले भी संकेत किया था कि भारतेन्दु के नाटक अपनी बनावट में प्रीतकात्मक स्वरूप ग्रहण किए हुए हैं, अतः उनकी मूल संरचना को समझने में इस तथ्य को भी हमें ध्यान रखना होगा। 'अंधेर-नगरी' का बाज़ार

दृश्य क्या सामान्य अर्थ रखता है? प्रेमचन्द्र ने भी बाज़ार को चित्रित किया है (देखें, 'ईदगाह' कहानी), भवानी प्रसाद मिश्र ने 'गीतफ़रोश' में बाज़ार को चित्रित किया है तथा हबीब तनवीर ने 'आगरा बाज़ार' नामक नाटक में बाज़ार को केंन्द्र में खड़ा किया है। प्रेमचन्द्र, भवानीप्रसाद मिश्र तथा हबीब तनवीर का बाज़ार चित्रण भारतेन्दु से प्रभावित है।

2.6 सारांश

'अन्धेरे नगरी' नाटक का अध्ययन आपने कर लिया है। नाटक के मूल पाठ व उसकी आलोचना का भी आपने अध्ययन किया.... इस नाटक का अध्ययन करने के पश्चात् आपने जाना कि-

- लोभ और मूर्खता के विनाश के आधार बनते हैं।
- व्वस्था की विसंगति के कारण व्यक्ति का जीवन कितना त्रासीपूर्ण और संकट में पड़ जाती है, हय तथ्य नाटक के माध्यम से हमने जाना।
- बाजार जीवन की विभिद्रता की संरचना का प्रतीक है, इस ढंग से वर्गीय चरित्र प्रकार के होते हैं, नाटक के माध्यम से हमने जाना।
- व्यवस्था में एडीटर, पुलिस, न्याय कैसे मिलकर अराजकता पैदा करते हैं, इस बात को भी अंधेर नगरी में स्पष्ट किया गया है।

2.7 शब्दावली

- चौपट्ट राजा - भ्रष्ट शासक
- अंधेर नगरी - नाटक में आये नगर का नाम, व्यंजना में सारे गलत कार्यों का केन्द्र।
- नसाई - नष्ट होना।
- कबिकुल राई - कवि समूह के सिरमौर, शीर्ष
- टिकस - टैक्स, कर
- विलायत - विदेश, ब्रिटिश राज का संकेत।
- सेर - माप का पुराना रूप, किलों के समतुल्य।

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(क)

1. प्रहसन
2. 1881
3. चौपट्ट

4. महन्त
5. 1850

(ख)

1. सही
2. सही
3. सही
4. गलत
5. सही

2.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अंधेर नगरी - (सं) शर्मा, रामकिशोर, विद्या प्रकाशन, इलाहाबार।
2. हिन्दी नाटक नई परख- (सं) गौतम, रमेश, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली।

2.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

संस्कृति की उत्तर कथा – शम्भुनाथ, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

2.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. अंधेरे नगरी की नाट्य विशेषताओं पर निबंध लिखिए।

इकाई 3 ध्रुवस्वामिनी : पाठ एवं मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 पाठ का उद्देश्य
3.3 ध्रुवस्वामिनीः परिचय
3.3.1 लेखक परिचय
3.3.2 नाटक परिचय
3.4 ध्रुवस्वामिनीः मूल पाठ
3.5 ध्रुवस्वामिनीः आलोचना
3.5.1 कथावस्तु
3.5.2 चरित्र-चित्रण
3.5.3 देश-काल एवं परिवेश
3.5.4 भाषा- शैली
3.6 सारांश
3.7 शब्दावली
3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
3.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.11 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

भारतीय नाट्य परम्परा का संबंध नवजागरणकालीन चेतना से है। प्रो. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने यह प्रश्न उठाया है कि क्या कारण है कि आधुनिक हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ नाटकों से हुआ? फिर इसका उत्तर तलाशते हुए उन्होंने स्थापना दी है कि चूँकि नाटक का मूल स्वरूप, अपनी प्रकृति में, सामजिक है, इसलिए नवजागरण के प्रवक्ताओं ने इसका चुनाव सायास किया था। नाटक के रच जाने के जो भी कारण रहे हों, किन्तु एक बात निर्विवाद रूप से सत्य है और वो यह है कि नाटक का प्रभाव साहित्य की अन्य सारी विधाओं से ज्यादा तीव्र गति से प्रसरित होता है। एक तो अपनी दृश्यता के कारण और दूसरे अपनी संकेतधर्मिता के कारण। नाटक के माध्यम से ही न्दिी साहित्य प्रारम्भ हुआ तो दूसरे हिन्दी समालोचना का प्रारम्भ भी नाटाकों के माध्यम से हुआ । इसलिए नाटक प्रारम्भ से ही हिन्दी साहित्य के केन्द्र में रहा । बावजूद इसके रंगमंचशालाओं का अभाव बना राह। भारतेन्दु जी ने स्वंय इस दिशा में प्रयास किया। उनके प्रयास से काशी में नाट्यशालाओं का निर्माण हुआ और मंचन भी। भारतेन्दु जी की नाट्य विरासत को जयशंकर प्रसाज दी ने सांस्कृतिक रूप प्रदान किया। जयशंकर प्रसाद के नाटक उच्च सांस्कृतिक पाठिका के आधार पर रचित हुए हैं। एक ओर राष्ट्रीय पराधीनता की पीड़ा तो दूसरी ओर उसका रचनात्मक उत्तर खोजने की प्रक्रिया में ही जयशंकर प्रसाद जी के नाटक सृजित हुए हैं। अपने प्रारंभिक पूर्वग्रह कि- नाटक के लिए रंगमंच होने चाहिए- का निराकरण करते हुए जयशंकर प्रसाद क्रमशः नाट्य निर्देशों व मंचीय आवश्यकताओं को समझने लगे थे। इस दृष्टि से 'ध्रुवस्वामिनी ' जयशंकर प्रसाद की सवश्रेष्ठ नाट्य कृति है।

जयशंकर प्रसाद के नाट्य लेखन तक समस्या नाटकों का चलन हो गया था। उसके दबाव में किसी एक समस्या को लेकर संपूर्ण नाटक की रचना की जाने लगी थी। दूष्सन के समस्या नाटकों का प्रभाव 'ध्रुवस्मामिनी' पर आलोंकों ने स्वीकार किया है। पूर्व के नाटकों से अलग' ध्रुवस्वामिनी ' नाटक में जयंशकर प्रसाद ने स्त्री को इसका प्रधान पात्र बनाया है। इस दृष्टि से आलोच्य नाटक ''नायिका प्रधान नाटक है। इस नाटक की एक ओर विशेषता यह है कि इसमें स्त्री अपने अधिकारों के प्रतिनागरूक होती है और वह निर्णय लेने की स्थिति में आती है। इस दृष्टि से भारतीय नाटकों में 'धस्वामिनी' अपना अलग महत्व रखती है।

3.2 पाठ का उद्देश्य

एम0ए0एच0एल0202 की यह तीसरीइकाई है । यह इकाई ध्रुवस्वामिनी नाटक पर केन्द्रित है। इस इकाई अध्ययन के पश्चात् आप-

- नाटक विधा की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
- जयशंकर प्रसाद का जीवन परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- ध्रुवस्वामिनी नाटक से परिचित हो सकेंगे।
- भारतीय इतिहास व संसकृति के विशेष काल खण्ड को सकझ सकेंगे।
- ध्रुवस्वामिनी नाटक की नाट्य कला को समझ सकेंगे।

3.3ध्रुवस्वामिनी : परिचय

3.3.1 लेखक परिचय -

जयशंकर प्रसाद हिन्दी साहित्य के महत्वपूर्ण साहित्यकार है। उनका जन्म काशी के प्रतिष्ठित सुंधनी साहू परिवार में हुआ था। सन् 1889 में आपका जन्म हुआ था। स्कूली शिक्षा पूरी न होने कारण आपने स्वाध्याय से ही कई विषयों व भाषा का ज्ञान प्राप्त कर लिया। आपकी प्रतिभा बहुमुखी थी। आपने कविता, कहानी, संपादन, उपन्यास व नाटकों के क्षेत्र में महनीय कृतियाँ हिन्दी साहित्य को दी है। नाटकों को गंभीर स्वरूप तो आपके ही कारण मिला है। इसी प्रकार कविता के क्षेत्र में छायावादी काव्य आन्दोलन के आप आधार स्तम्भ रहे हैं। जयशंकर प्रसाद जी के साहित्य का संक्षिप्त परिचय जानना, उनके साहित्यिक व्यक्तित्व को समझने की दृष्टि से प्रासंगिक है।

प्रमुख कृतियाँ -

काव्यः कानन कुसुम, करूणालय, महाराणा का महत्व, झरना, प्रेम पथिक, लहर, आँसू, कामायनी (महाकाव्य)।

कहानीः छाया आकाशदीप, इन्द्रजाल, आंधी, स्वप्न पथिक, प्रतिध्वनि , गुंडा, पुरस्कार जैसी 70 कहानियाँ।

संपादनः इन्दु पत्रिका में विशेष योगदान।

उपन्यासःकंकाल, तितली, इरावती (अपूर्ण)।

निबन्धः काव्यकला तथा अन्य निबंध।

नाटकः सज्जन, कल्याणी परिणय, करूणालय, प्रायश्चित, राज्यश्री, विशाख, अजातशतुत्र, जनमेजय का नागयज्ञ, कामना, स्कन्दगुप्त, एक घूँट, चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी (1933ई)

3.3.2 नाटक परिचय

'ध्रुवस्वामिनी ' जयशंकर प्रसाद का रंगमंचीय विद्यान की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ नाटक माना गया है। रंगमंचीय विधान की शर्तों का पालन करने के कारण ही इसका कई बार मंचन संभव हो सका है। इसमें नाटक में कुल मिलाकर तीन ही अंक हैं और दृश्य संख्या भी हर नाटक में सीमित

है। दृश्य और अंक कम होने के कारण नाटकीय कसाव की दृष्टि से नाटक सफल रहा है। 'ध्रुवस्वामिनी ' नाटक अपने विद्यान में ऐतिहासिक है। इसमें कथानक का केन्द्र बिन्दु गुप्तकाल का साम्राज्य है। चन्द्रगुप्त, रामगुप्त व ध्रुवस्वामिनी जैसे ऐतिहासिक पत्रों के साथ ही जय शंकर प्रसाद ने कुछ काल्पनिक पत्रों की भी सृष्टि की है। देशकाल, परिवेश की शर्तों पर नाटक सफल रहा है क्योंकि इसने सम्पूर्ण इतिहास के एक प्रमुख अंश को अपने क्रूरता व वैभव के साथ हमारे सामने प्रस्तुत किया है।

अभ्यास प्रश्न-

(क) सही/गलत में उत्तर दीजिए।

1. कानन कुसुम जयशंकर प्रसाद का नाटक है। (सही/गलत)
2. कंकाल जयशंकर प्रसाद की प्रसिद्ध कहानी है। (सही/गलत)
3. ध्रवस्वामिनी नाटक पर समस्या नाटकों का प्रभाव है। (सही/गलत)
4. कामायनी की रचना विधा महाकाव्य है। (सही/गलत)
5. आकाशदीप की रचना विधा कहानी है। (सही/गलत)

(ख) रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. ध्रुवस्वामिनी का रचनाकाल..... है। (1933/1935/1940)
2. जयशंकर प्रसाद का जन्म वर्ष है..... (1930/1889/1850)
3. जयशंकर प्रसाद का मृत्यु वर्ष है ..... (1937/1940/1950)
4. .'..... पत्रिका संपादन में जयशंकर प्रसाद का महत्त्वपूर्ण योगदान है। (इंदु, जागरण, हंस)
5. कामायनी का प्रकाशन वर्ष..... है। (1936/1933/1932)।

3.4 मूल पाठ

प्रथम अंक

(शिविर का पिछला भाग, जिसके पीछे पर्वतमाला की प्राचीर है, शिविर का एक कोना दिखलाई दे रहा है। जिससे सटा हुआ चंद्रांतप टँगा है। मोटी-मोटी रेशमी डोरियों से सुनहले काम के परदे खम्भों में बँधे हैं। दो-तीन सुन्दर मन्च रक्खे हुए हैं। चन्द्रातप और पहाड़ी के बीच छोटा-सा कुञ्ज: पहाड़ी पर से एक पतली जलधारा उस हरियाली में बहती है। झरने के पास शिलाओं से चिपकी हुई लता की डालियाँ पवन में हिल रही हैं। दो-चार छोटे-बड़े वृक्ष, जिन पर फलों से लदी हुई सेवती की लता छोटा-सा झुरमुट बना रही है। शिविर के कोने से ध्रुवस्वामिनी का प्रवेश। पीछे-पीछे एक लम्बी और कुरूप् स्त्री चुपचाप नंगी तलवार लिये आती)

ध्रुवस्वामिनी - (सामने पर्वत की ओर देख कर) सीधा तना हुआ, अपने प्रभुत्वसाकार कठोरता, अभ्रभेदी उन्मुक्त शिखर! और इन क्षुद्र कोमल निरीहलताओं और पौधों को इसके चरण में लोटना ही चाहिए न! (साथवाली खड्गधारिणी की ओर देखकर) क्यों, मन्दाकिनी नहीं आई? (वह उत्तर नहीं देती है) बोलती क्यों नहीं? यह तो मैं जानती हूँ, किइस राजकुल के अन्तःपुर में मेर लिए न जाने कब से नीरव अपमान सञ्चित रहा, जो मुझे आते ही मिला; किन्तु क्या तुम-जैसी दासियों से भी वही मिलेगा? इसी शैलमाला की तरह मौन रहने का अभिनय तुम न करो, बोलो! (वह दाँत निकालकर विनय प्रकट करती हुई कुछ और आगे बढ़ने का संकेत करती है) अरे, यह क्याः मेरे भाग्य-विधाता! यह कैसा इन्द्रजाल उस दिन राजमहापुरोहित ने कुछ आहुतियों के बाद मुझे जो आशिर्वाद दिया था, क्या यह अभिशाप था? इस राजकीय अन्तःपुरमें सब जैसे एक रहस्य छिपाये हुये चलते बोलते हैं और मौन हो जाते है;

(खड्गधारिणी विवशता और भय का अभिनय करती हुई आगे बढ़ने का संकेत करती है) तो क्या तुम मूक हो? तुम कुछ बोल न सको, मेरी बातों का उत्तर भी न दो, इसलिए तुम मेरी सेवा में नियुक्त की गयी हो? वह असह्य है। इस राजकुल में एक भी सम्पूर्ण मनुष्यता का निदर्शनमिलेगा क्या? जिधर देखा कुबड़े, बौने, हिजड़े, गूँगे और बहरे।

(चिढ़ती हुई ध्रुवस्वामिनी आगे बढ़कर झरने के किनारे बैठ जाती है, खड्गधारी भी इधर-उधर देखकर ध्रुवस्वामिनी के पैरों के समीप बैठती है)

खड्गधारिणी- (सशंक चारों ओर देखती हुई) देवि, प्रत्येक स्थान और समय बोलने के योग्य नहीं होता, कभी-कभी मौन रह जाना बुरी बात नहीं है। मुझे अपनी दासी समझिए। अवरोध के भीतर मैं गूँगी हूँ। यहाँ संदिग्ध न रहने के लिये मुझे ऐसा ही करना पड़ता है।

ध्रुवस्वामिनी - अरे, तो क्या तुम बोलती भी हो? पर यह तो कहो, यह कपट-आचरण किस लिये?

खड्गधारिणी - एक पीड़ित की प्रार्थना सुनाने के लिए। कुमार चन्द्रगुप्त को आप भूल न गयी होंगी।

ध्रुवस्वामिनी - (उत्कण्ठा से) वही न, जो मुझे बन्दिनी बनाने के लिये गये थे।

खड्गधारिणी - (दाँतों से जीभ दबाकर) यह आप क्या कह रही है? उनको तो स्वयम् अपने भिषण भविष्य का पता नहीं। प्रत्येक क्षण उनके प्राणों पर सन्देह करता है। उन्होंने पूछा है कि मेरा क्या अपराध है।

ध्रुवस्वामिनी - (उदासी की मुस्कुराहट के साथ) अपराध! मैं क्या बताऊ! तो क्या कुमार भी बन्दी है?

खड्गधारिणी - कुछ-कुछ वैसा ही है देवि! राजाधिराज से कहकर क्या आप उनका कुछ उपकार कर सकेंगी।

ध्रुवस्वामिनी - भला मैं क्या कर सकूँगी? मैं तो अपने ही प्राणों का मूल्य नहीं समझ पाती। मुझ पर राजा का कितना अनुग्रह है, यह भी मैं आज तक न जान सकीं, मैंने तो कभी उनका मधुर सम्भाषण सुना ही नहीं। विलासिनियों के साथ मदिरा में उन्मत्त, उन्हें अपने आनन्द से अवकाश कहाँ!

खड्गधारिणी - तब तो अदृष्ट ही कुमार के जीवन का सहायक होगा। उन्होंने पिता का दिया हुआ स्वत्व और राज्य का अधिकार तो छोड़ ही दिया; इसके साथ अपनी एक अमूल्य निधि भी। (कहते-कहते सहसा रूक जाती है)

ध्रुवस्वामिनी - अपनी अमूल्य निधि! वह क्या?

खड्गधारिणी - वह अत्यन्त गुप्त है देवि, किन्तु मैं प्राणों की भीख माँगती हुई कह सकूँगी।

ध्रुवास्वामिनी - (कुछ सोचकर) तो जाने दो, छिपी हुई बातों में घबरा उठी हूँ, हाँ, मैंने उन्हें देखा था, वह निरभ्रप्राची का बाल-अरूणआह! राज-चक्रसबको पीसता है, पिसने दो, हम निस्हायों को और दुर्बलों को पिसने दो।

खड्गधारिणी - देवि, वह वल्लरी जो झरने के समीप पहाड़ी पर चढ़ गयी है, उसकी नन्हीं-नन्हीं पत्तियों को ध्यान से देखने पर आप समझ जायेंगी कि वह काई की जाति की है। प्राणों की क्षमता बढ़ा लेने पर वही काई जो बिछलनबन कर गिरा सकती थी, अब दूसरों के ऊपर चढ़ने का अवलम्ब बन गयी है।

ध्रुवास्वामिनी - (आकाश की ओर देखकर) वह, बहुत दूर की बात है। आह, कितनी कठोरता है! मनुष्य के हृदय में देवता को हटाकर राक्षस कहाँ से घुस आता है? कुमार स्निग्ध, सरल, और सुन्दर मूर्ति को देखकर कोई भी प्रेम से पुलकित हो सकता है। किन्तु, उन्हीं का भाई? आश्चर्य?

खड्गधारिणी - कुमार को इतने में ही सन्तोष होगा कि उन्हें कोई विश्वासपूर्वक स्मरण कर लेता है। रही अभ्युदयकी बात, सो तो उनको अपने बाहु-बल और भाग्य पर विश्वास है।

ध्रुवस्वामिनी - किन्तु उन्हें कोई ऐसा साहस का काम न करना चाहिये जिसमें उनकी परिस्थिति और भी भयानक हो जाय।

(खड्गधारिणी खड़ी हो जाती है)

- अच्छा, तो अब तू जा और अपने मौन संकेत से किसी दासी को यहाँ भेज दे। मैं अभी यहीं बैठना चाहती हूँ।

(खड्गधारिणी नमस्कार करके जाती है। और एक दासी का प्रवेश)

दासी - (हाथ जोड़कर) देवि, सांयकाल हो चला है। वनस्पतियाँ शिथिल होने लगी हैं। देखिये न व्योम-विहारी पक्षियों का झुण्ड भी अपनी नीड़ों में प्रसन्न कोलाहल से लौट रहा है। क्या भितर चलने की अभी इच्छा नहीं है?

ध्रुवास्वामिनी - चलूँगी क्यों नहीं? किन्तु मेरा नीड़ कहाँ? यह तो स्वर्ण-पिंजर है।

(करूण भाव से उठकर दासी के कन्धे पर हाथ रखकर चलने की उद्यत होती है। नेपथ्य में कोलाहल- 'महादेवी' कहाँ है, उन्हें कौन बुलाने गयी है?)

ध्रुवास्वामिनी - हैं-हैं, यह उतावली कैसी?

प्रतिहारी - (प्रवेश करके घबराहट से) भट्टारक इधर आएं हैं क्या?

ध्रुवास्वामिनी - (व्यंग से मुस्कराती हुई) मेरे अंचल में तो छिपे नहीं है। देखो किसी कुंज में ढूँढो।

प्रतिहारी - (सम्भ्रम से) अरे महादेवि, क्षमा कीजिए। युद्ध-सम्बन्धी एक आवश्यक संवाद देने के लिए महाराज को खोजती हुई मैं इधर आ गयी हूँ।

ध्रुवास्वामिनी - होंगे कहीं, यहां तो नहीं हैं।

(उदास भाव से दासी के साथ ध्रुवस्वामिनी का प्रस्थान। दूसरी ओर से खड्गधारिणी का पुनः प्रवेश और कुंज में से अपना उत्तरीय सँभालता हुआ रामगुप्त निकल कर एक बार प्रतिहारी की ओर फिर खड्गधारिणी की ओर देखता है)

प्रतिहारी - जय हो देव! एक चिन्ताजनक समाचार निवेदन करने के लिए अमात्य ने मुझे भेजा है।

रामगुप्त - (झुँझला कर) चिन्ता करते-करते देखता हूँ कि मुझे मर जाना पड़ेगा! ठहरो (खड्गधारिणी से) हाँ जी, तुमने अपना काम तो अच्छा किया, किन्तु मैं समझ न सका कि चन्द्रगुप्त को वह अब भी प्यार करती है या नहीं?

(खड्गधारिणी प्रतिहारी की ओर देखकर चुप रह जाती है)

रामगुप्त - (प्रतिहारी की ओर क्रोध देखता हुआ) तुमने मैंने कह न दिया कि अभी मुझे अवकाश नहीं, ठहर कर आना।

प्रतिहारी - राजाधिराज! शकों ने किसी पहाड़ी राह से उतर कर नीचे का गिरि-पथ रोक लिया है। हम लोगों के शिविर का सम्बन्ध राज-पथ से छूट गया है। शंकों ने दोनों ही ओर से घेर लिया है।

रामगुप्त - दोनों ओर से घिरा रहने में शिविर और भी सुरक्षित है। मूर्ख! चुप रह (खड्गधारिणी से) ध्रुवदेवी, क्या मन-ही-मन चन्द्रगुप्त को ..... है न मेरा सन्देह ठीक?

प्रतिहारी - (हाथ जोड़कर) अपराध क्षमा हो देव! अमात्य, युद्ध-परिषद्आपकी प्रतिक्षा कर रहे है।

रामगुप्त - (हृदय पर हाथ रखकर) युद्ध तो यहाँ भी चल रहा है, देखता नहीं जगत् की अनुपम सुन्दरी मुझसे सन्देह नहीं करती और मैं हूँ इस देश का राजाधिराज!

प्रतिहारी- महाराज, शकराज का सन्देश लेकर एक दूत भी आया है।

रामगुप्त - आह! किन्तु ध्रुवदेवी! उसके मन में टीस है (कुछ सोचकर) जो दूसरों के शासन में रहकर और प्रेम किसी अन्य पुरूष से करती है; उसमें एक गम्भीर और व्यापक रस उद्वेलित रहता होगा। वही तो नहीं, जो चन्द्रगुप्त से प्रेम करेगी वह न जाने कब चोट कर बैठे? भीतर-भीतर न जाने कितने कुचक्रघूमने लगेंगे। (खड्गधारिणी से) सुना न, ध्रुव देवी से कह देना चाहिये किवह मुझे और मुझसे ही प्यार करे। केवल महादेवी बन जाना ठीक नहीं।

(खड्गधारिणी का प्रतिहारी के साथ प्रस्थान और शिखरस्वामी का प्रवेश)

शिखरस्वामी - कुछ आवश्यक बातें करनी हैं देव!

रामगुप्त - (चिन्ता से उँगली दिखाते हुए, जैसे अपने-आप बातें कर रहा हो) ध्रुवदेवी को लेकर क्या साम्राज्य से भी हाथ धोना पड़ेगा! न्हीं तो फिर? (कुछ सोचने लगता है) ठीक तो, सहसा मेरे राजदण्ड ग्रहण कर लेने से पुरोहित, अमात्य और सेनापति लोग छिपा हुआ विद्रोह-भाव रखते हैं। (शिखर से) है न? केवल एक तुम्हीं मेरे विश्वासपात्र हो। समझा न? यही गिरि-पथ सब झगड़ों का अन्तिम निर्णय करेगा। क्यों अमात्य, जिसकी भुजाओं में बल न हो, उसके मस्तिष्क में तो कुछ होना चाहिये?

शिखरस्वामी - (एक पत्र देकर) पहले इसे पढ़ लीजिये। (रामगुप्त पत्र पढ़ते जैसे आश्चर्य से चौंक उठता है) चौंकिए मत, यह घटना इतनी आकस्मिक है कि कुछ सोचने का अवसर नहीं मिलता।

रामगुप्त - (ठहर कर) है तो ऐसा ही; किन्तु एक बार ही मेरे प्रतिकूल भी नहीं मुझे उसकी सम्भावना पहले से ही थी।

शिखरस्वामी - (आश्चर्य से) ऐं? तब तो महाराज ने अवश्य ही कुछ सोच लिया होगा। मेघसंकुल आकाश की तरह जिसका भविष्य घिरा हो, उसकी बुद्धि को तो बिजली के समान चमकना ही चाहिये।

रामगुप्त - (सशंक) कह दूँ! सोचा तो है मैंने; परन्तु क्या तुम उसका समर्थन करोगे?

शिखरस्वामी - यदि नीति-युक्त हुआ तो अवश्य समर्थन करूँगा। सबके विरूद्ध रहने पर भी स्वर्गीय आर्य समुन्द्रगुप्त की आज्ञा के प्रतिकूल मैंने ही आपका समर्थन किया था। नीति-सिद्धान्त के आधार पर ज्येष्ठ राजपुत्र को।

रामगुप्त - (बात काट कर) वह तो-वह तो मैं जानता हूँ, किन्तु इस समय जो प्रश्न सामने आ गया है, उस पर विचार करना चाहियें यह तुम जानते हो कि मेरी इस विजय-यात्रा का कोई गुप्त उद्देश्य है। उसकी सफलता भी सामने दिखाई पड़ रही है। हाँ, थोड़ा-सा साहस चाहिये।

शिखरस्वामी - वह क्या?

रामगुप्त - शक-दूत के लिए जो प्रमाण चाहता हो, उसे अस्वीकार न करना चाहिये। ऐसा करने में इस संकट के बहाने जितना विरोधी प्रकृति है उस सब को हम लोग सहज में ही हटा सकेंगे।

शिखरस्वामी - भविष्य के लिये यह चाहे अच्छा हो; किन्तु इस समय तो हम लोगों को बहुत-से विघ्नों का सामना करना पड़ेगा।

रामगुप्त - (हँसकर) तब तुम्हारी बुद्धि कब काम में आयेगी? और हाँ, चन्द्रगुप्त के मनोभाव का कुछ पता लगा?

शिखरस्वामी - कोई नयी बात तो नहीं।

रामगुप्त - मैं देखता हूँ कि मुझे पहले अपने अन्तःपुर के ही विद्रोह का दमन करना होगा। (निःश्वास लेकर) ध्रुवदेवी के हृदय में चन्द्रगुप्त की आंकाक्षा धीरे-धीरे जाग रही है।

शिखरस्वामी - यह असम्भव नहीं; किन्तु महाराज! इस समय आपको दूत से साक्षात करके उपस्थित राजनीति पर ध्यान देना चाहिये। यह एक विचित्र बात है कि प्रबल पक्ष संधि के लिए प्रस्ताव भेजे।

रामगुप्त - विचित्र हो चाहे सचित्र, अमात्य, तुम्हारी राजनीतिज्ञता इसी में है कि भीतर और बाहर के सब शत्रु एक ही चाल में परास्त हों। तो चलो।

(दोनों का प्रस्थान! मन्दाकिनी का सशंक भाव से प्रवेश)

मन्दाकिनी - (चारो ओर देखकर) भयानक समस्या है। मूर्खों ने स्वार्थ के लिये साम्राज्य के गौरव का सर्वनाश करने का निश्चय कर लिया है! सच है, वीरता जब भागती है, तब उसके पैरों से राजनीतिक छल-छन्द की धूल उड़ती है। (कुछ सोचकर) कुमार चन्द्रगुप्त को यह सब समाचार शीघ्र ही मिलता चाहिये। गूँगी के अभिनय में महादेवी के हृदय का आवरण तनिक-सा हटा है, किन्तु वह थोड़ा-सा स्निग्ध भाव भी कुमार के लिये कम महत्व नहीं रखता। कुमार चन्द्रगुप्त! कितना समर्पण का भाव है उसमें? और उसका बड़ा भाई रामगुप्त! कपटचारी रामगुप्त! जी करता है इस कलुषित वातावरण से कहीं दूर, विस्मृत में अपने को छिपा लूँ। पर मन्दा! तुझे विधाता ने क्यों बनाया? (सोचने लगती है) नहीं; मुझे हृदय कठोर करके अपना कर्त्तव्य करने के लिये यहाँ रूकना होगा। न्याय का दुर्बल पक्ष ग्रहण करना होगा।

(गाती है)

यह कसक अरे आँसू सह जा!
बनकर विनम्र अभिमान मुझे
मेरा अस्तित्व बता, रह जा।
बन प्रेम छलक कोने-कोने
अपनी नीरव गाथा कह जा।

करूणा बन दुखिया वसुधा पर

शीतलता फैलाता बह जाती है। ध्रुवस्वामिनी का उदास भाव से धीरे-धीरे प्रवेश) पीछे एक परिचारिका पान का डिब्बा और दूसरी चमर लिये जाती है। ध्रुवस्वामिनी एक मंच पर बैठकर अधरों पर उंगली रखकर कुछ सोचने लगती है और चमरधारिणी चमर चलाने लगती है)

ध्रुवस्वामिनी - (दूसरी परिचारिका से) हाँ, क्या कहा! शिखरस्वामी कुछ कहना चाहते है? कह दो कल सुनूँगी, आज नहीं।

प्रिचारिका - जैसी आज्ञा! ते मैं कह आऊँ कि अमात्य से कल महादेवी बातें करेंगी?

ध्रुवस्वामिनी - (कुछ सोचकर) ठहरो तो, वह गुप्त-साम्राज्य का अमात्य है, उससे आज भी भेंट करना होगा। हाँ, यह तो बताओ, तुम्हारे राजकूल में नियम क्या है? पहले अमात्य की मन्त्रणा सुननी पड़ती है, तब राजा से भेंट होती है?

प्रिचारिका - (दाँतों से जीभ दबाकर) ऐसा नियम तो मैंने नहीं सुना। यह युद्ध-शिविर है न? परमभट्टारक को अवसर न मिला होगा! म्हादेवी! आपको सन्देह न करना चाहिये।

ध्रुवस्वामिनी - मैं महादेवी ही हूँ न? यदि यह सत्य है तो क्या तुम मेरी आज्ञा से कुमार चन्द्रगुप्त को यहाँ बुल सकती हो? मैं चाहती हूँ कि अमात्य के साथ ही कुमार से भी कुछ बातें कर लूँ।

प्रिचारिका - क्षमा कीजिये, इसके लिए तो पहले अमात्य से पूछना होगा।

(ध्रुवस्वामिनी क्रोध से उसकी ओर देखने लगती है और वह पान का डिब्बा रख कर चली जाती है। एक बौने का कुबड़े और हिजड़े के साथ प्रवेश)

कुबड़ा - युद्ध! भयानक युद्ध!

बौना - हो रहा है कि कहीं होगा मित्र!

हिजड़ा - बहनों, यहीं युद्ध करके दिखाओ न, महादेवी भी देख लें।

बौना - (कुबड़े से) सुनता है रे! तू अपना हिमाचल इधर कर दे- मैं दिग्विजय करने के लिए कुबेर पर चढ़ाई करूँगा।

(उसके कूबड़ को दबाता है और कुबड़ा अपने घुटनों और हाथों के बल बैठ जाता है। हिजड़ा कुबड़े की पीठ पर बैठता है। बौना एक मोर्छललेकर तलवार की तरह उसे घुमाने लगता है)

हिजड़ा - अरे! यह तो मैं हूँ नल-कूबर की वधू! दिग्विजयी वीर, क्या तुम से युद्ध करोगे? लौट आओ, कल आना। मेरे श्वसुर और आर्यपुत्र दोनों ही उर्वशी और रम्भा के अभिसार से अभी नहीं आये। कुछ आज ही तो युद्ध करने का शुभ मूहूर्त नहीं हैं।

बौना - (मोर्छल से पटा घुमाता हुआ) नहीं; आज ही युद्ध होगा। तुम नहीं हो, तुम्हारी उँगलियाँ तो मेरी तलवार से भी अधिक चल रही हैं। कूबड़ तुम्हारे नीचे है। तब मैं कैसे मान लूँ कि तुम न तो नल-कुम्बर हो और न कुबेर! तुम्हारे वस्त्रों से मैं धोखा न खा जाऊँगा। तुम पुरूष हो युद्ध करो!

हिजड़ा - (उसी तरह मटकते हुये) अरे मैं स्त्री हूँ। बहनों, कोई मुझसे व्याह भले ही कर सकता है, लड़ाई मैं क्या जानूँ।

(दासी के साथ शिखर स्वामी का प्रवेश)

शिखरस्वामी - महादेवी की जय हो!

(दूसरी ओर से एक युवती दासी के कन्धे का सहारा लिये कुछ-कुछ मदिरा के नशे में रामगुपत का प्रवेश। मुस्कराता हुआ बौने का खेल देखने लगता है। ध्रुवस्वामिनी उठकर खड़ी हो जाती है और शिखरस्वामी रामगुप्त को संकेत करता है)

रामगुप्त - (कुछ भर्राये हुये कण्ठ से) महादेवी की जय हो!

ध्रुवास्वामिनी - स्वागत महाराज!

(रामगुप्त एक मंच पर बैठ जाता है और शिखरस्वामी ध्रुवस्वामिनी के इस शिष्टाचार से चकित होकर सिर खुजलाने लगता है)

कुबड़ा - दोहाई राजाधिराज की! मुझ हिमालय का कूबड़ दुखने लगा। न तो यह नल-कूबर की बधू मेरे कूबर से उठती है और न तो यह बौना मुझे विजय ही कर लेता है।

रामगुप्त - (हँसते हुए) वाह रे वामन वीर! यहाँ दिग्विजय का नाटक खेला जा रहा है क्या?

बौना - (अकड़कर) वामन के बलि-विजय की गाथा और तीन पगों की महिमा सब लोग जानते है। मैं भी तीन लात में इसका कबूतर सीधा कर सकता हूँ।

कुबड़ा - लगा दे भाई बौना! फिर यह अचल हेमकूट बनना तो छूट जाय!

हिजड़ा - देखो जी, मैं नल-कूबर की वधू इस पर बैठी है।

बौना - झूठ! युद्ध के डर से पुरूष होकर भी यह स्त्री बन गया है।

हिजड़ा - मैं तो पहले ही कह चूकि कि मैं युद्ध करना नहीं जानती।

बौना - तुम नल-कूबर की स्त्री हो न, तो अपनी विजय का उपहार समझ कर मैं तुम्हारा हरण कर लूँगा। (और लोगों की ओर देखकर उसका हाथ पकड़ कर खींचता हुआ) ठीक होगा न? कदाचित् यह धर्म के विरूद्ध न होगा।

(रामगुप्त ठठाकर हँसने लगता है)

ध्रुवस्वामिनी - (क्रोध से भड़क कर) निकलो! अभी निकलो, यहाँ ऐसी निर्लज्जता का नाटक मैं नहीं देखना चाहती।

(शिखरस्वामी की ओर सक्रोध देखती है। शिखर के संकेत करने पर वे सब भाग जाते है)

रामगुप्त - अरे, ओ दिग्विजयी! सुन तो (उठ कर ताली पीटता हुआ हँसने लगता है। ध्रुवस्वामिनी क्षोभ और घृणा से मुँह फिरा लेती है। शिखरस्वामी के संकेत से दासी मदिरा का पात्र ले आती है, उसे देखकर प्रसन्नता से आँखे फाड़कर शिखर की ओर अपने हाथ बढ़ा देता है) अमात्य, आज

ही महादेवी के पास मैं आया और आप भी पहुँच गये, यह एक विलक्षण घटना है। है न? (पात्र लेकर पीता है)

शिखरस्वामी - देव, मैं इस समय एक आवश्यक कार्य से आया हूँ।

रामगुप्त - ओह, मैं तो भूल ही गया था! वह बर्बर शकराज क्या चाहता है? आक्रमण न करूँ, इतना ही तो? जाने दो, युद्ध कोई अच्छी बात तो नहीं!

शिखरस्वामी - वह और भी कुछ चाहता है।

रामगुप्त - क्या कुछ सहायता भी माँग रहा है?

शिखरस्वामी - (सिर झुका कर गम्भीरता से) नहीं देव, वह बहुत ही असंगत और अशिष्ट याचना कर रहा है।

रामगुप्त - क्या? कुछ कहो भी।

शिखरस्वामी - क्षमा हो महाराज! दूत तो अवध्य होता है; इसलिये उसका सनदेश सुनना ही पड़ा। वह कहता था कि शकराज से महादेवी ध्रुवस्वामिनी का (रूक कर ध्रुवस्वामिनी की ओर देखने लगता है। ध्रुवस्वामिनी सिर हिला कर कहने की आज्ञा देती है) विवाह-सम्बन्ध स्थिर हो चुका था, बीच में ही आर्य समुद्रगुप्त की विजय यात्रा में महादेवी के पिता जी ने उपहार में गुप्तकुल में भेज दिया, इसलिए महादेवी को वह।

रामगुपत - ऐं, क्या कहते हो अमात्य? क्या वह महादेवी को मांगंता है।

शिखरस्वामी - हाँ देव! साथ ही वह अपने सामन्तों8 के लिए मगध के सामन्तों की स्त्रियों को माँगता है।

रामगुप्त - (श्वास लेकर) ठीक ही है, जब उसके यहाँ सामन्त हैं, तब उन लोगों के लिए भी स्त्रियॉ चाहिए। हां, क्या यह सच है कि महादेवी के पिता ने शकराज से इनका सम्बन्ध स्थिर कर लिया था?

शिखरस्वामी - यह तो मुझे नहीं मालूम?

(ध्रुवस्वामिनी रोष से फूलती हुई टहलने लगती है)

रामगुप्त - महादेवी, अमात्य क्या पूछ रहे हैं?

ध्रुवस्वामिनी - इस प्रथम सम्भाषण के लिए मैं कृतज्ञ हुई महाराज! किन्तु मैं यह भी जानना चाहती हूँ कि गुप्त-साम्राज्य का स्त्री-सम्प्रदान से ही बढ़ा है?

रामगुप्त - (झेंपकर हंसता हुआ) हें-हें-हें, बताइये अमात्य जी!

शिखरस्वामी - मैं क्या कहूँ? शत्रु-पक्ष का यही सन्धि-सन्देश है। यदि स्वीकार न हो तो युद्ध कीजिये। शिविर दोनों ओर से घिर गया है। उसकी बातें मानिये, या मर कर भी अपनी कुल-मर्यादा की रक्षा कीजिये। दूसरा कोई उपाय नहीं।

रामगुप्त - (चौंककर) क्या प्राण देने के अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं? ऊँहूँ, अब तो महादेवी से पूछिये।

ध्रुवस्वामिनी - (तीव्र स्वर से) और आप लोग, कुबड़ों, बौनों और नपुंसकों का नृत्य देखेंगे। मै जानना चाहती हूँ किसने सुख-दुख में मेरा साथ न छोड़ने की प्रतिज्ञा अग्नि-वेदी के सामने की है?

रामगुप्त - (चारों ओर देखकर) किसने की है, कोई बोलता क्यों नहीं?

ध्रुवस्वामिनी - तो क्या मैं राजाधिरराज रामगुप्त की महादेवी नहीं हूँ?

रामगुप्त - क्यों नहीं ?परन्तु रामगुप्त ने ऐया कोंई प्रतिज्ञा न की होगी। मैं तो उस दिन द्राक्षासव1 में डुबकी लगा रहा था।

पुरोहितो ने न जाने क्या -क्या पढ़ा दिया होगा। उन सब बातो का बोझ मेरे सिर पर। (सिर हिलाकर) कदापि नहीं।

ध्रुवस्वामिनी - (निस्सहाय होकर हीनता से शिखरस्वामी के प्रति) यह तो हुई राजा की व्यवस्था, अब सुनूँ मंत्री महोदय क्या कहते है।

शिखरस्वामी - मैं कहूँगा देवी, अवसर देख कर राज्य की रक्षा करने वाली उचित सम्मति दे देना ही तो मेरा कर्तव्य है। राजनीति के सिद्धान्त से राष्ट्र की रक्षा सब उपायो से करने का आदेश हैं। उसके लिए राजा, रानी, कुमार और अमात्य सब का विसर्जन किया जा सकता है। किन्तु राज-विसर्जन अन्तिम उपाय है।

रामगुप्त - (प्रसत्रता से) वाह! क्या कहा तुमने ! तभी तो लोग तुम्हें नीति-शास्त्र का बृहस्पति समझते है!

ध्रुवस्वामिनी - अमात्य, तुम बृहस्पति हो चाहे शुक्र
किन्तु धूर्त होने से ही क्या मनुष्य भूल नहीं बिठा दिया!

रामगुप्त - (आश्चर्य से) क्या? क्या?? क्या???

ध्रुवस्वामिनी - कुछ नहीं मैं केवल यही कहना चाहती हूँ कि पुरूषो ने स्त्रियो को अपनी पशु-सम्पत्ति समझकर उन पर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया हैवह मेरे साथ नहीं चल सकता। सदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते, अपने कुल की मर्यादा, नारी का गौरव, नही बचा सकते, तो मुझे बेच भी सकते हो। हॉ तुम लोगो कोआपत्ति से बचाने के लिए मैं स्वये यहाँ से चली जाऊँगी।

शिखरस्वामी - (मुँह बना कर) ऊँह, राजनीति मे ऐसी बातो को स्थान नहीं। जब तक नियमो के अनुकूल सन्धि का पूर्ण रूप से पालन न किया जाय, तब तक सन्धि का कोई अर्थ ही नही।

ध्रुवस्वामिनी - देखती हूँ कि इस राष्ट्र-रक्षा-यज्ञ में रानी की बलि होगी ही।

शिखरस्वामी - दूसरा कोई उपाय नहीं।

ध्रुवस्वामिनी - (क्रोध से पैर पटक कर) उपाय नहीं, तो न हो निर्लज्ज अमात्य फिर ऐसा प्रस्ताव मैं सुनना नहीं चाहती।

रामगुप्त - (चौक कर) इस छोटी सी बात के लिए इतना उपद्रव! (दासी की ओर देख कर) मेरा तो कण्ठ सूखने लगा।

(वह मदिरा देती है)

ध्रुवस्वामिनी - (दृढता से) अच्छा, तो अब मैं चाहती हूँ कि आमत्य अपने मन्त्रणा-गृह में जाये मैं केवल रानी ही नहीं, किन्तु स्त्री भी हूँ; मुझे अपने को पति कहने वाले पुरूष से कुछ कहना है, राजा से नहीं।

(शिखरस्वामी का दासियो के साथ प्रस्थान)

रामगुप्त - ठहरो जी, मै भी चलता हूँ (उठना चाहता है। ध्रुवस्वामिनी उसका हाथ पकड़ कर रोक लेती है) तुम मुझसे क्या कहना चाहती हो?

ध्रुवस्वामिनी - (ठहर कर) अकेले यहॉ भय लगता है क्या? बैठिये, सुनिये। मेरे पिता ने उपहार-स्वरूप कन्या-दान किया था। किन्तु गुप्त-सम्राट क्या अपनी पत्नी शत्रु को उपहार में देगे? (घुटने के बल बैठकर) देखिये, मेरी ओर देखिये।

मेरा स्त्रीत्व क्या इतने का भी अधिकारी नहीं कि अपने को स्वामी समझने वाला पुरूष उसके लिए प्राणों का पण लगा सके।

रामगुप्त - (उसे देखता हुआ) तुम सुन्दर; किन्तु सोने की कटार पर मुग्ध होकर उसे कोई अपने हृदय मे डुबा नहीं सकता। तुम्हारी सुन्दरता- तुम्हारा नारीत्व- अमूल्य हो सकता है। फिर भी अपने लिये मै स्वंय कितना आवश्यक हूँ कदाचित तुम यह नही जानती हो।

ध्रुवस्वामिनी - (उसके पैरों को पकड़कर) मै गुप्त- कुल की वधू होकर इस राज-परिवार में आयी हूँ। इसी विश्वास पर।

रामगुप्त - (उसे रोक कर) वह सब मै नहीं सुनना चाहता।

ध्रुवस्वामिनी - मेरी रक्षा करो । मेरे और अपने गौरव की रक्षा करो। राजा, आज मै शरण की प्रार्थिनी हूं। मै स्वीकार करती हूं, कि आज तक मै तुम्हारे विलास की सहचारीी नहीं हुई; किन्तु वह मेरा अहंकार10 चूर्ण हो गया है। मै तुम्हारी होकर रहँूगी। राज्य और सम्पत्ति रहने पर राजा को- पुरूष को बहुत- सी रानियॉ और स्त्रियॉ मिलती है; किन्तु व्यक्ति का मान11 नष्ट होने पर फिर नहीं मिलता।

रामगुप्त - (घबराकर उसका हाथ हटाता हुआ) ओह, तुम्हारा यह घातक12 स्पर्श बहुत ही उत्तेजनापूर्ण है। मै,- नहीं तुम मेरी रानी? नहीं नही। तुमको जाना पडेगा। तुम उपहार की वस्तु हो। आज मै तुम्हे किसी दूसरे को देना चाहता हूं। इसमे तुम्हे क्यो आपत्ति हो?

ध्रुवस्वामिनी - (खडी होकर रोष से) निर्लज्ज, मद्यप,क्लीवओह, तो मेरा कोई रक्षक नहीं? (ठहर कर) नही, मै अपनी रक्षा स्वंय करूँगी। मै उपहार मे देने की वस्तु, शीतल-मणि नहीं हूँ। मुझ में रक्त की तरल लालिमा है। मेरा हृदय उष्ण है और उसमें आत्म- सम्मान की ज्योति ळै। उसकी रक्षा मै ही करूँगी । (रशना से कृपाणी निकाल लेती है)।

रामगुप्त - (भयभीत होकर पीछे हटता हुआ) तो क्या तुम मेरी हत्या करोगी?

ध्रुवस्वामिनी- तुम्हारी हत्या? नही, तुम जिओ। भेड़ की तरह तुम्हारा क्षुद्र जीवन! इसे न लूँगी! मै अपना ही जीवन समाप्त करूँगी।

रामगुप्त - किन्तु तुम्हारे मर जाने पर उस बर्बर1 शकराज के पास किसको भेजा जायगा? नहीं, नही, ऐसा न करो। हत्या! हत्या! दौड़ा! दौड़ो!! (भागता हुआ निकल जाता हैः दूसरी ओर से वेग सहित चन्द्रगुप्त का प्रवेश)

चन्द्रगुप्त - हत्या! कैसी हत्या! (ध्रुवस्वामिनी को देखकर) यह क्या? महादेवी ठहरिये!

ध्रुवस्वामिनी - कुमार, इसी समय तुम्हे भी आना था। (सकरूण देखती हुई) मै प्रार्थना करती हूं कि तुम यहाँ से चले जाओ! मुझे अपने अपमान में निर्वसन- नग्र देचाने का किसी पुरूष को अधिकार नही! मुझे मृत्यु की चादर से अपने को ढँक लेने दो।

चन्द्रगुप्त - किन्तु क्या कारण सुनने का मै अधिकारी नहीं हूँ?

ध्रुवस्वामिनी - सुनाने? (ठहर कर सोचती हूई) नहीं, अभी आत्महत्या नहीं करूँगी। यह तीखी छुरी इस अतृप्त हृदय मे विकासोन्मुख कुसुम मे बिषैले कीट के डंक की तरह चुभा दूँया नहीं, इस पर विचार करूँगी। यदि नही तो मेरी दुर्दशा का पुरस्कार क्या कुछ और है? हाँ जीवन के लिए कृतज्ञ, उपकृत और आभारी होकर किसी के अभिमानपूर्ण आत्म- विज्ञापन का भार ढोती रहूँ- सही क्या विधाता का निष्ठुर विधान है? छुटकारा नहीं? जीवन नियति के कठोर आदेश पर चलेगी ही? तो क्या यह मेरा जीवन भी अपना नहीं है?

चन्द्रगुप्त - देवि, जीवन विश्व की सम्पत्ति है। प्रसाद से, क्षणिक आवेश से, या दुःख की कठिनाइयो से उसे नष्ट करना ठीक तो नही। गुप्त-कुल-लक्ष्मी आज यह छिन्नमस्ता का अवतार किसलिये धारण करना चाहती है? सुनूँ भी?

ध्रुवस्वामिनी - नहीं, मै न मरूँगी। क्योकि तुम आ गये होकर मेरी शिविका के साथ चातर- सज्जित अश्व पर चढ़कर तुम्हीं उस दिन आये थे? तुम्हारा विश्वासपूर्ण मुखमण्डल मेरे साथ आने में क्यो इतना प्रसन्न था?

चन्द्रगुप्त - मै गुप्त- कुल- वधू कों आदरसहित ले आने के लिए गया था फिर प्रसन्न क्सो न होता?

ध्रुवस्वामिनी - तो फिर आज मुझे शक- शिविर में पहुँचाने के लिए उसी प्रकार तुमको मेरे साथ चलना होगा। (आँखों से आँसू पोंछती है)

चन्द्रगुप्त - (आश्चर्य से) यह कैसा परिहास!

ध्रुवस्वामिनी - कुमार! यह परिहास नहीं, राजा की आज्ञा है। शकराज को मेरी अत्यन्त आवश्यकता है। यह अवरोध बिना मेरे उपहार दिये नहीं हट सकता।

चन्द्रगुप्त - (आवेश से) यह नहीं हो सता। महादेवी! जिस मर्यादा के लि- जिस महत्व कोस्थिर रखने के लिए, मैने राजदण्ड ग्रहण न करके अपना मिला हुआ अधिकार छोड दिया; उसका यह अपमान! मेरे जीवित रहते आर्य समुद्रगुप्त के स्वर्गीय गर्व को इस तरह पद-दलित न होना पड़ेगा। (ठहर कर) औक्र भी एक बात है! मेरे हृदय के अन्धकार में प्रथम किरण - सी आकर जिसने अज्ञात भाव से अपना मधुर आलोक ढाल दिया थ, उसको भी मैने केवल इसीलिए भूलने का प्रयत्र किया कि- (सहसा चुप हो जाता है।)

ध्रुवस्वामिनी - (आँख बन्द किए हुए कुतूहल-भरी प्रसन्नता से) हाँ - हाँ कहो - कहो

(शिखरस्वामी के साथ रामगुप्त का प्रवेश)

रामगुप्त - देखो तो कुमार! यह भी कोंई बात है? आत्महत्या केतना बड़ा अपराध है।

चन्द्रगुप्त - और आप से तो वह भी नही करते बनता!

रामगुप्त - (शिखरस्वामी से) देखो, कुमार के मन में छिपा हुआ कलुष कितना- कितना भयानक है?

शिखरस्वामी - कुमार, विनय गुप्त- कुल का सर्वोत्तम गृह-विधान है, उसे न भूलना चाहिये!

चन्द्रगुप्त - (व्यंग्य से हँसकर) अमात्य, तभी तो तुमने व्यवस्था दी है कि महादेवी को देकर सन्धि की जाय! क्यो, यही तो विनय की पराकाष्ठा है? ऐसा विनय प्रवंचको का आवरण है, जिसमें शील न हो। और शील परस्पर सम्मान की घोषणा करता है। कानुरूष! आर्य समुद्रगुप्त का सम्मान।

शिखरस्वामी - (बीच में बात काट कर) उसके लिए मुझे प्राणदण्ड दिया जाय! मै उसे अविचल भाव से ग्रहण करूँगा; परन्तु राजा और राष्ट्रकी रक्षा करने में असमर्थ है, तब भी उस राज की रक्षा होनी चाहिये। अमात्य यह कैसी विवशता है! तुम मृत्यु दण्ड के लिये उत्सुक! महादेवी आत्महत्या करने के लिये प्रस्तुत! फिर यह हिचक क्यों? एक बार अन्तिम बल से परीक्षा कर देखो। बचोगे तो राष्ट्र और सम्मान भी बचेगा, नहींतो सर्वनाश!

चन्द्रगुप्त - आहा; मन्दा! भला तू कहाँसे यह उत्साह भरी बात कहने के लिये आ गयी? ठीक तो है अमात्य! सुनी, यह स्त्री क्या कह रही है?

रामगुप्त - (अपने हाथो को मसलते हुये) दुरभिन्धि, छल, मेरे प्राण लेने का कौशल!

चन्द्रगुप्त - तब आओ, हम स्त्री बन जायें और बैठ कर रोये।

हिजड़ा - (प्रवेश करके) कुमार, स्त्री बनना सहज नहीं है। कुछ दिनो तक मुससे सीखना होगा। (सबका मुँह देखता है और शिखरस्वामी के मुँह पर हाथ फेरता है) ऊहूँ, तुम नहीं बन सकते। तुम्हारे ऊपर बड़ा कठोर आवरण है। (कुमार के समीप जा कर) कुमार! मै शपथ खाकर कह सकती हूँ कि यदि मै अपने हाथो से सजा दूँ तो आपको देख कर महादेवी का भ्रम हो जाय।

(चन्द्रगुप्त उसका कान पकड़ कर बाहर कर देता है।)

ध्रुवस्वामिनी - उसे छोड़ दो कुमार। यहाँ पर एक वही नपुंसक तो नही है। बहुत- से किसको - किसको निकालोगे?

(चन्द्रगुप्त उसे छोड़ कर चितिन्त- सा अहलने लगता है और शिखरस्वामी रामगुप्त के कानो में कुछ कहता है)

चन्द्रगुप्त - (सहसा खड़े होकर) अमात्य, तो तुम्हारी ही बात रही। हाँ, उसमें तुम्हारे सहयोगी हिजड़े की भी सम्मति मुझे अच्छी लगी। मै ध्रुवस्वामिनी बन कर अन्य सामन्त कुमारो के साथ शकराज के पास जाँऊगा। यदि मै सफल हुआ तब तो कोई बात ही नहीं, अन्यथा, मेरी मृत्यु के बाद तुम लोग जैसा उचित समझना, वैसा करना।

ध्रुवस्वामिनी - (चन्द्रगुप्त को अपनी भुजाओं में पकड़ कर) नहीं, मैं तुमको न जाने दूँगी। मेरे श्रद्र, दुर्बल नारी-जीवन का सम्मान बचाने के लिए इतने बड़े बलिदान की आवश्यकता नहीं।

रामगुप्त - (आश्चर्य और क्रोध से) छोड़ों यह कैसा अनर्थ! सबके सामने यह कैसी निर्जज्ज़ता!

ध्रुवस्वामिनी - (चन्द्रगुप्त को छोड़ती हुई जैसे चैतन्य हो कर) यह पाप है? जो मेरे लिए अपनी बलि दे सकता हो, जो मेरे स्नेह (ठहर कर) अथवा इससे क्या? शकराज क्या मुझे देवी बना कर भक्ति- भाव से मेरी पूजा करेगा! वह रे लज्जाशील पुरूष!

(शिखररूवामी फिर रामगुप्त के कान में कुछ कहता है। रामगुप्त स्वीकारसूचक सिर हिलाता है)

शिखरस्वामी - राजाधिराज, आज्ञा दीजिये, यही एक उपाय है, जिसे कुमार बता रहे है। किन्तु राजनीति की दृष्टि से महादेवी का भी वहाँ जाना आवश्यक है।

चन्द्रगुप्त - (क्रोध से) क्यो आवश्यक है! यदि उन्हें जाना ही पड़ा तो फिर मेरे जाने से क्या लाभ! तब मै न जाऊँगा।

रामगुप्त - नहीं यह मेरी आज्ञा है। सामन्त कुमारो के साथ जाने के लिये प्रस्तुत हो जाओ।

ध्रुवस्वामिनी - तो कुमार! हम लोगा का पलना निश्चित ही है अब इसमें विलम्ब की आवश्यकता नहीं।

(चन्द्रगुप्त का प्रस्थान। ध्रुवस्वामिनी मंच पर बैठ कर रोने लगती है)

रामगुप्त - अब यह कैसा अभिनय! मुझे तोपहले से ही शंका थी, और आज तो तुमने मेरी ऑखे भी खोल दीं।

अनार्य! निष्ठुर मुझे कलंक- कालिमा के कारागार में बन्द कर, मर्म वाक्य के धुँयें से दम घोटकर मार डालने की आशा न करो। आज मेरी असहायता मुझे अमृत पिलाकर मेरा निर्लज्ज जीवन बढ़ाने के लिए तत्पर है। (उठाकर, हाथ से निकल जाने का संकेत करती हुई) जाओ मै एकान्त चाहती हूँ।

(शिखरस्वामी के साथ रामगुप्त का प्रस्थान)

ध्रुवस्वामिनी - कितना अनुभूतिपूर्ण था वह एक क्षण का आलिंग! कितने सन्तोष से भरा था! नियति ने अज्ञात भाव से मानो लू से तपी हूई वसुधा को क्षितिज के निर्जन से सांयकालीन शीतल आकाश से मिला दिया हो। (ठहर कर) जिय वायुविहीन प्रदेश में उखड़ी हुई सॉसो पर बन्धन हो- अर्गला हो वहाँ रहते- रहत यह जीवन असह्य हो गया था। तो भी मरूँगी नहीं। संसार के कुछ दिन विधाता के विधान में अपने लिये सुरक्षित करा लूँगी। कुमार! तुमने वही किया, जिसे मै बचाती रही। तुम्हारे उपकार और स्नेह की वर्षा से मै भीगी जा रही हूँ। ओह, (हृदय पर उँगली रख कर) इस वक्षस्थल में दो हृदय है क्या? जब अन्तरंग 'हां' करना चाहता है, तब ऊपरी मन 'ना' क्यो कहला देता है?

चन्द्रगुप्त - (प्रवेश कर के) महादेवि, हम लोग प्रस्तुत है किन्तु ध्रुवस्वामिनी के साथ शक- शिविर में जाने के लिये हम लोग सहमत नहीं।

ध्रुवस्वामिनी - (हँस कर) राजा की आज्ञा मान लेना ही पर्याप्त नहीं। रानी की भी एक बात न मानोगे? मैने तो पहले ही कुमार से प्रार्थना की थी कि मुझे जैसे ले आये हो; उसी तरह पहुँचा भी दो।

चन्द्रगुप्त - नहीं- मै अकेला ही आऊँगा।

ध्रुवस्वामिनी - कुमार! यह मृत्यु और निर्वासन का सुख, तुम अकेले ही लोगे, ऐसा नहीं हो सकता। राजा की इच्छा क्या है, यह जानते हो? मुझसे और तुमसे एक साथ ही छुटकारा। तो फिर वहीं क्यो न हो? हम दोनो ही चलेगे। मृत्यु के गह्वर में प्रवकश करने के समय मै भी तुम्हारी ज्योति बन कर बुझ जाने की कामना रखती हूँ। और भी एक विनोद, प्रलय का परिहास, देख सकूँगी। मेरी सहचासरी, तुम्हारी वह ध्रुवस्वामिनी का वेश, ध्रुवस्वामिनी ही न देखे तो किय कात का?

(दोनो हाथो से चन्द्रगुप्त का चिबुक पकड़ कर सकरूण देखती है)

चन्द्रगुप्त - (अधखुली आँखो से देखती हुआ) तो फिर चलो।

(सामन्त कुमारो के आगे- आगे मन्दाकिनी का गम्भीर स्वर से गाते हुये प्रवेश)

पैरो के नीचे जलधर हों, बिजली से उनका खेल चले
संकीर्ण कगारो के नीचे, शत- शत झरने बेमेल चले

सन्नाटे में हो विकल पवन, पादप निज पद हों चूम रहे
तब भी गिरि- पथ का अथक पथिक, ऊपर ऊँचे सब झेल चले
पृथ्वी की आँखो मे बन कर छाया का पुतला बढ़ता हो
सूने तुम में हो ज्योति बना, अपनी प्रतिभा को गढ़ता हो
पीड़ा की ल उड़ाता- सा, बाधाओ को ठुकराता-सा
कष्टो पर कुछ मुसक्याता- सा, ऊपर ऊँचे सब झेल चले
खिलते हों क्षत के फूल वहाँ बन व्यथा तमिस्त्रा के तारे
पद- पद पर ताण्डव नर्त्तन हो, स्वर सप्तक होंवे लय सारे
भैरव रव से ही व्याप्त दिशा हो काँप रही भय-चकित निशा
खिलते हो क्षत के फूल वहाँबन व्यथा तमिस्त्रा के तारे,
पद-पद पर ताण्डव नर्त्तन हो, स्वर सप्तक होंवे लय सारे
भैरव रव से ही व्याप्त दिशा हो काँप् रही भय-चकित निशा
हो स्वेद धार बहती कपिशा, ऊपर ऊँचे सब झेल चले
विचलित हो अचल न मौन रहे निष्ठुर श्रृंगार उतरता हो
क्रन्दन कम्पन न पुकार बने, निज साहस पर निर्भता हो
अपनी ज्वाला को आप पिये नव-नीलकण्ठ की छाप लिये
विश्राम शान्ति को शाप दिये, ऊपर ऊंचे सब झेल चले।

(चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी सबका धीरे-धीरे प्रस्थान अकेली मन्दाकिनी खड़ी रह जाती है)

{पटाक्षेप}

द्वितीय अंक

(शक दुर्ग के भीतर सुनहले काम वाले खम्भो पर एक दालान, बीच में छोटी-छोटी दो सीढियों, उसी के सामने काश्मीरी खुदाई का सुन्दर लकड़ी का सिंहासन बीच के दो खम्बे खुले हुये है, उनके दोनो ओर मोटें- मोटे चित्र बने हुए तिब्बती ढंग के रेशमी पर्दे पढ़े है। सामने बीच में छोटा-सा आंगन की तरह, जिसके दोनो ओर क्यारियाँ उनमं दो-चार पौधे और लताएँ फूलो से लदी दिखाई पड़ती है)

कोमा - (धीरे- धीरे पौधो को देखती हुई प्रवेश करके) इन्हें सीचना पड़ता है, नही तो इनकी रूखाई और मलिनता सौन्दर्य पर आवरण डाल देती है। (देखकर) आज तो इनके पत्ते धुले हुए भी नहीं है। इनमें फूल, जैसे मुकुलित होकर ही रह गये है। खिलखिलाकर हँसने का मानो इन्हे बल नहीं। (सोचकर) ठीक, इधर कई दिनो से महाराज अपने युद्ध-विग्रह में लगे हुये है और मै भी यहाँ नहीं आयी, तो फिर इनकी बिना कौन करता है? उस दिन मैने यहाँ दो मंच और भी रख देने

के लिए कहा था, पर सुनता कौन है। सब जैसे रक्त के प्यास! प्राण लेने और देने मे पागल! बसन्त का उदास और अलस पवन आता है, चला जाता है। कोई उस स्पर्श से परिचित नहीं। ऐसा तो वास्तविक जीवन नहीं है?

(सीढी पर बैठकर सोचने लगती है) प्रणय! प्रेम! जब सामने से आते हुये तीव्र आलोक की तरह आँखो मे प्रकाश पुंज उँडेल देता है, तब सामने की सब वस्तुये और भी अस्पष्ट हो जाती है। अपनी ओर से कोई भी प्रकाश की किरण नही। तब वही केवल वही! हो पागलपन, भूल हो, दुःख मिले, प्रेम करने की एक ऋतु होती है। उसमें चूकना, उसमें सोच- समझ कर चलना, दोनो बराबर है। सुना है, दोनो ही संसार के चतुरो की दृष्टि में मूर्ख बनते है, तब कोमा, तू किसे अच्छा समझती है?

(गाती है)

यौवन! तेरी चंचल छाया
इसमें बैठ घूँट भर पी लूँ जो रस मू है लाया
मेरे प्याले मे मद बनकर कब तू छली समाया
जीवन- वंशी के छिद्रो में स्वर बनकर लहराया
पत्न भर रूकने वाले! कह तू पथिक! कहाँ से आया।

(चुप होकर आँखे बन्द कियये तन्मय होकर बैठी रह जाती है। शकराज का प्रवेश। हाथ में एक लम्बी तलवार लिये हुये चिन्तित भाव से आकर इस तरह खड़ा होता है, जिसमें कोमा को नहीं देखता)

शकराज - खिंगल अभी नहीं आया, क्या वह बन्दी तो नही कर लिया गसा? नहीं, दि से अन्धे नहीं है तो उन्हे अपने सिर पर खड़ी विपत्ति दिखाई देनी चाहिये (सोचकर) विपत्ति! केवल उन्ही पर तो नहीं है, हम लोगो को भी रक्त की पदी बहानी पड़ेगी। चित्त बड़ा चंचल हो रहा है। तो बैठ जाऊँ? इस एकान्त में अपने बिखरे हुये मन को सँभाल लूँ? (इधर- उधर देखता है, कोमा आहट पा कर उठ खड़ी होती है। उसे देख कर) अरे, कोमा! केमा!

कोमा - हाँ, महाराज! क्या आज्ञा है?

शकराज - (उसे संदिग्ध भाव से देखकर) आज्ञा नहीं, कोमा! तुम्हें आज्ञा न दूँगा! तुम रूठी हुई-सी क्यों बोल रही हो।

कोमा - रूठने का सुहाग मुझे मिला कब?

शकराज - आजकल मैं जैसी भीषण स्थिति में हूँ, उसमें अन्यमनस्क होना स्वाभाविक है, तुम्हें यह न भूल जाना चाहिये।

कोमा - तो क्या आपकी दुश्रिचिन्ताओं में मेरा भाग नहीं? मुझे उससे अलग रखने में क्या वह परिस्थिति कुछ सरल हो रही है?

शकराज - तुम्हारे हृदय को उन दुर्भावनाओं में डाल कर व्यथित नहीं करना चाहता। मेरे सामने जीवन-मरण का प्रश्न है।

कोमा - प्रश्न स्वयं किसी के सामने नहीं आते। मैं तो समझती हूँ, मनुष्य उन्हें जीवन के लिए उपयोगी समझता है। मकड़ी की तरह लटकने के लिए अपने-आप ही जाला बुनता है। जीवन का प्राथमिक प्रसन्न उल्लास मनुष्य के भविष्य में मंगल और सौभाग्य को आमन्त्रित करता है। उससे उदासीन न होना चाहिये महाराज!

शकराज - सौभाग्य और दुर्भाग्य मनुष्य की दुर्बलता के नाम है। मै तो पुरूषार्थ को ही सबका नियामक समझता हूँ! पुरूषार्थ ही सौभाग्य को खींच लाता है। हाँ, मैं इस युद्ध के लिए उत्सुक नहीं था कोमा, मैं ही दिग्विजय के लिये नहीं निकला था।

कोमा - संसार के नियम के अनुसार आप अपने से महान के सम्मुख थोड़ा-सा विनीत बनकर इस उपद्रव से अलग रह सकते थे।

शकराज - यही तो मुझ से नहीं हो सकता।

कोमा - अभावमयी लघुता में मनुष्य अपने को महत्वपूर्ण दिखाने का अभिनय न करे तो क्या अच्छा नहीं है?

शकराज - (चिढ़कर) यह शिक्षा अभी रहने दो कोमा, किसी से बड़ा नहीं हूँ तो छोटा भी नहीं बनना चाहता। तुम अभी तक पाषाणी प्रतिमा की तरह वहीं खड़ी हो, मेरे पास आओ।

कोमा – पाषाणी! हाँ, राजा! पाषाणी के भीतर भी कितने मधुर होत बहते रहते हैं। उनमें मदिरा नहीं, शीतल जल की धारा बहती है। प्यासों की तृप्ति-

शकराज - किन्तु मुझे तो इस समय स्फूर्ति के लिए एक प्याला मदिरा ही चाहिये।

(कोमा एक छोटा-सा मंच रख देखती है और चली जाती है। शकराज मंच पर बैठ जाता है। खिंगल का प्रवेश)

कोमा - (स्थिर दृष्टि से देखती हुई) मैं आती हूँ। आप बैठिये।

शकराज - को जी, क्या समाचार है।

खिंगल - महाराज! मैंने उन्हें अच्छी तरह समझा दिया कि हम लोगों का अवरोध दृढ़ है। उन्हें दो में से एक करना ही होगा। या तो अपने प्राण दें अन्यथा मेरे सन्धि के नियमों को स्वीकार करें।

शकराज - (उत्सुकता से) तो वे समझ गये?खिंगल - दूसरा उपाय ही क्या था! यह छोकड़ा रामगुप्त, समुद्रगुप्त ही तरह दिग्विजय करने निकला था। उसे इन बीहड़ घाटियों का परिचय नहीं मिला था। किन्तु सब बातों को समझ कर वह आपके नियमों को मानने के लिए बाध्य हुआ।

शकराज - (प्रसन्नता से उठकर उसके दोनों हाथ पकड़ लेता है) ऐ, तुम सच कहते हो! मुझे आशा नहीं। क्या मेरा दूसरा प्रस्ताव भी रामगुप्त ने मान लिया?

(स्वर्ण के कलश में मदिरा लेकर कोमा चुपके से आकारा पीछे खड़ी हो जाती है)

खिंगल - हाँ महाराज! उसने माँगे हुए उपहारों को देना स्वीकार किया और ध्रुवस्वामिनी भी आपकही सेवा में शीघ्र ही उपस्थित होती है।

(कोमा चौंक उठती है और शकराज प्रसन्नता से खिंगल के हाथों को झकझोरने लगता है)

शकराज - खिंगल। तुमने कितना सुन्दर समाचार सुनाया। आज देवपुत्रों की स्वर्गीय आत्म एँ प्रसन्न होंगी। उनकी पराजयों का यह प्रतिशोध है। हम लोग गुप्तों की दृष्टि में जंगली, बर्बर और असभ्य है तो फिर मेरी प्रतिहिंसा भी बर्बरता के ही अनुकूल होगी। हाँ, मैंने शूर-सामन्तों के लिए पत्नियाँ भी मांगी थीं।

खिंगल - वे भी साथ आयेंगी।

शकराज - तो फिर सोने की झाँझ वाली नाच का प्रबन्ध करो, इस विजय का उत्सव मनाया जाय और मेरे सामन्तों को भी शीघ्र बुला लाओ।

(खिंगल का प्रस्थान: शकराज अपनी प्रसन्नता में उद्विग्र सा इधर-उधर टहलने लगता है और कोमा अपना कलश लिये हुए धीरे-धीरे सिंहासन के पास आकर खड़ी हो जाती है। चार सामन्तों का प्रवेश। दूसरी ओर से नर्तकियों का दल आता है। शकराज उनकी ओर ही देखता हुआ सिंहासन पर बैठ जाता है। सामन्त लोग उसके पैरों के नीचे सीढ़ियों पर बैठते है। नर्तकियों नाचती हुई गाती हैं)

अस्ताचल पर युवती सन्धया की खुली अलक घुँघराली है
लो; मानिक मदिरा की धारा अब बहने लगी निराली है
भर ली पहाड़ियों ने अपनी झीलों की रत्नमयी प्याली
झुक चली चुमने बल्लिरियों से लिपटी तरु की डाली है
यह लगा पिघलने मानिनियों का हृदय मृदु प्रणय-रोष भरा
वे हँसती हुई दुलार-भरी मधु लहर उठाने वाली हैं
भरने निकले है प्यार-भरे जोड़े कुञ्जों की झुरमुट से
इस मधुर अँधेरे में अब तक क्या इनकी प्याली खाली है।
भर उठीं प्यालियाँ, सुमनों ने सौरभ मकरन्द मिलाया है
कामिनियों ने अनुराग-भरे अधरों से उन्हें लगा ली है
बसुधा मदमाती हुई उधर आकाश लगा देखो झुकने
सब झुम रहे अपने सुख में तूने क्यों बाधा डाली है

(नर्तकियाँ जाने लगती है)

एक सामन्त - श्रीमान्! ठतनी बड़ी विजय के अवसर पर इस सूखे उत्सव से सन्तोष नहीं होता, जब कि कलश सामने भरा हुआ रखा है।

शकराज - ठीक है, इन लोगों को केवल कहकर ही नहीं, प्यालियाँ भर कर भी देनी चाहिये।

(सब पीते है और नर्तकियाँ एक-एक को सानुरोध पान कराती है)

दूसरा सामन्त - श्रीमान् की आज्ञा मानने से अतिरिक्त दूसरी गति नहीं। उन्होंने समझ से काम लिया, नहीं तो हम लोगों को इस रात की कालिमा में रक्त की लाली मिलानी पड़ती है।

तीसरा सामन्त - क्यों बक-बक करते हो? चुप-चाप इस बिना परिश्रम की विजय का आनन्द लो। लड़ना पड़ता तो सारी हेंकड़ी भूल जाती।

दूसरा सामन्त - (क्रोध से लड़खड़ाता हुआ उठता है।) हमसे!

तीसरा सामन्त - हाँ जी तुमसे!

दूसरा सामन्त - तो फिर आओ तुम्हीं से निपट लें (सब परस्पर लड़ने की चेष्टा कर रहे हैं। शकराज खिंगल को संकेत करता है। वह उन लोगों को बाहर लिवा जाता है। तूर्यनाद)

शकराज - रात्रि के आगमन की सूचना हो गयी। दुर्ग का द्वार अब शीघ्र ही बन्द होगा। अब तो हृदय अधीर हो रहा है। खिंगल!

(खिंगल का पुनः प्रवेश)

खिंगल - दुर्ग तोरण में शिविकायें आ गयी है।

शकराज - (गर्व से) तब विलम्ब क्यों? उन्हें अभी ले आओ।

खिंगल - (सविनय) किन्तु रानी की एक प्रार्थना है।

शकराज - क्या!

खिंगल - वह पहले केवल श्रीमान् से ही सीधे भेंट करना चाहती है। उसकी मर्यादा’’’’’’’’

शकराज - (ठठाकर हँसते हुए) क्या कहा? मर्यादा? भाग्य ने झुकने के लिए परवश कर दिया है, उन लोगों के मन में मर्यादा का ध्यान और भी अधिक रहता हैं यह उनकी दयनीय दशा है।

खिंगल - वह श्रीमान् की रानी होने के लिये आ रही है।

शकराज - (हँसकर) अच्छा, तुम मध्यस्थ हो न! तुम्हारी बात मान कर मैं उससे एकान्त में ही भेंट करूँगा जाओ।

(खिंगल का प्रस्थान)

कोमा - महाराज! मुझे क्या आज्ञा है।

शकराज - (चौंक कर) अरे, तुम अभी खड़ी हो? मै तो जैसे भूल गया था। हृदय चंचल हो रहा है। मेरे समीप आओ कोमा!

कोमा - नयी रानी के आगमन की प्रसन्नता से?

शकराज - (सँभल कर) नयी रानी का अपना क्या तुम्हें अच्छा नहीं होगा कोमा?

कोमा - (निर्विकार भाव से) संसार से बहुत-सी बातें बिना अच्छी हुये भी अच्छी लगती हैं, और बहुत-सी अच्छी बातें बुरी मालूम पड़ती हैं।

शकराज - (झुँझला कर) तुम तो आचार्य मिहिरदेव की तरह दार्शनिक की सी बातें कर रही हो!

कोमा - वे मेरे पिता-तुल्य हैं, उन्हीं कही शिक्षा में मैं पली हूँ। हाँ ठीक है, जो बातें राजा को अच्छी लगें, वे ही मुझे भी रुचनी ही चाहिये।

शकराज - (अव्यवस्थित होकर) अच्छा अच्छा, तुम इतनी अनुभूतिमयी हो, यह मैं आज जान सका।

कोमा - राजा, तुम्हारी स्नेह-सूचनाओं की सहज प्रसन्नता और मधुर आलापों ने जिस दिन मन में नीरस और नीरव शून्य के संगीत की, वसन्त की और मकरन्द कही सृष्टि की थी, उसी दिन से मैं अनुभूतिमयी बन गयी हूँ। क्या वह मेरा भ्रम था? कह दो - कह दो कि वह तेरी भूल थी।

(उत्तेजित कोमा सिर उठा कर राजा से आँख मिलाती है)

शकराज - (शंकोच से) नहीं कोमा, वह भ्रम नहीं था। मैं सचमुच तुम्हें प्यार करता हूँ।

कोमा - (उसी तरह) तब भी यह बात?

शकराज - (सशंक) कौन-सी बात?

कोमा - वही जो आज होने जा रहा है! मेरे राजा! आज तुम एक स्त्री को अपने पति से विच्छिन्न कराकर अपने गर्व को तृप्ति के लिये कैसा अनर्थ कर रहे हो?

शकराज - (हँस कर बात उड़ाते हुए) पगली कोमा! वह मेरी राजनीति का प्रतिशोध है।

कोमा - (दृढ़ता से) किन्तु, राजनीति का प्रतिशोध, क्या एक नारी को कुचले बिना पूरा नहीं हो सकता?

शकराज - जो विषय न समझ में आवे, उस पर विवाद न करो।

कोमा - (खिन्न होकर) मैं क्यों न करूँ। (ठहर कर) किन्तु नहीं, मुझे विवाद करने का अधिकार नहीं यह मैं समझ गयी।

(वह दुःखी होकर जाना चाहती है कि दूसरी ओर से मिहिरदेव का प्रवेश)

शकराज - (संभम से खड़ा होकर) धर्मपूज्य! मैं वन्दना करता हूँ।

मिहिरदेव - कल्याण हो! (कोमा सिर पर हाथ रखकर) बेटी! मैं तो तूझको ही देखने चला आया। तू उदास क्यों है?

(शकराज को ओर गूढ़ दृष्टि से देखने लगता है)

शकराज - आचार्य! रामगुप्त का दर्प करने के लिये, मैंने ध्रुवस्वामिनी को उपहार में भेजने की आज्ञा दी थी। आज रामगुप्त की रानी मेरे दुर्ग में आयी है। कोमा को इसमें आपत्ति है।

मिहिरदेव - (गम्भीरता से) ऐसे काम में तो आपत्ति होनी ही चाहिये राजा! स्त्री का सम्मान नष्ट करके तुम जो भयानक अपराध करेंगे, उसका फल क्या होगा? और भी यह अपनी भावी पत्नी के प्रति तुम्हारा अत्याचार होगा।

शकराज - (क्षोभ से) भावी पत्नी?

मिहिरदेव - अरे, क्या तुम इस क्षणिक सफलता से प्रमत्त हो जाओगे। क्या तुमने अपने आचार्य की प्रतिपालिता कुमारी के साथ स्नेह का सम्बन्ध नहीं स्थापित किया है? क्या इसमें भी सन्देह है। राजा! स्त्रियों का स्नेह - विश्वास भंग कर देना, कोमल तंतु को तोड़ने से भी सहज है, परन्तु सावधान होकर उसके परिणाम को भी सोच लो।

शकराज - मैं समझता हूँ कि आप मेरे राजनीतिक कामों में हस्तक्षेप न करें तो अच्छा हो।

मिहिरदेव - राजनीति? राजनीति ही मनुष्यों के लिये सब कुछ नहीं है। राजनीति के पीछे नीति से भी हाथ न धो बैठो जिसका विश्वमानव के साथ व्यापक सम्बन्ध है। राजनीति की साधारण छलनाओं8 से सफलता प्राप्त करके क्षण भर के लिये तुम अपने को चतुर समझ लेने की भूल कर स्त्रियों सकते हो। परन्तु इस भीषण9 संसार से एक प्रेम करने वाले हृदय को खो देना, सबसे बड़ी हानि है। शकराज! दो प्यार करने वाले के हृदयों के बीच में स्वर्गीय ज्योति का निवास है।

शकराज - बस, बहुत हो चुका! टापके महत्व की भी एक सीमा होगी। अब आप यहाँ से नहीं जाते हैं, तो मैं ही चला जाता हूँ (प्रस्थान)।

महिरदेव - चल कोमा! हम लोगों को लताओं, वृक्षों और चट्टानों से छाया और सहानभूति मिलेगी। इस दुर्ग से बाहर चल।

कोमा - (गद्गद् कण्ठ से) पिता जी् (खड़ी रहती है)

मिहिरदेव - बेटी! हृदय का सँभाल। कष्ट सहन करने के लिये प्रस्तुत हो जा। प्रतारणा में बड़ा मोह होता है। उसे छोड़ने को मन नहीं करता। कोमा! छल का बहिरंग सुन्दर होता है- विनीत और आकर्षक भी; पर दुःखदायी और हृदय को बेधने के लिये। इस बन्धन को तोड़ डाल।

कोमा - (सकरूण) तोड़ डालूँ पिताजी! मैंने जिसे अपने आँसूओं से सींचा, वही दुलार भरी बल्लरी, मेरे आँख बन्द कर चलने में मेरे पैरों से उलझ गयी है। दे दूँ एक झटका- उसकी हरी-हरी पत्तियाँ कुचल जायें और वह छिन्न होकर धूल लोटने लगे? ना, ऐसी कठोर आज्ञा न दो!

मिहिरदेव - (निश्वास लेकर आकाश को देखते हुए) यहाँ तेरी भलाई होती, तो मैं चलने के लिए न कहता। हम लोग अखरोट की छाया में बैठेंगे- झरनों के किनारे, दाख के कुञ्जों में विश्राम

करेंगे। जब नीले आकाश में मेंघों के टुकड़े, मानसरोवर जाने वाले हंसों का अभिनय करेंगे, तब तू अपनी तकली पर ऊन कातती हुई, कहानी कहेगी और मैं सुनूगाँ।

कोमा - तो चलूँ! (एक बार चारों ओर देखकर) एक घड़ी के लिए मुझे.....

मिहिरदेव - (ऊब कर आकाश की ओर देखता हुआ) तू नहीं मानती। वह देख, नील लोहितरंग का धूमकेतु अविचल भाव से इस दुर्ग की ओर कैसा भयानक संकेत कर रहा है।

कोमा - (उधर देखते हुए) तब भी एक क्षण मुझे.....

मिहिरदेव - पागल लड़की! अच्छा, मैं फिर आऊँगा। तू सोच ले, विचार कर ले (जाता है)।

कोमा - जाना ही होगा! तब यह मन की उलझन क्यों अमंगल का अभिशाप अपनी क्रूर हँसी से इस दुर्ग को कँपा देगा, और सुख के स्वप्न विलीन मेर यहां रहने से उन्हें अपने भावों को छिपाने के लिए बनावटी व्यवहार करना होगा; पग-पग पर अपमानित होकर मेरा हृदय उसे सह नहीं सकेगा। तो चलूँ। यही ठीक है! पिताजी! ठहरिये, मैं आती हूँ।

शकराज - (प्रवेश करके) कोमा?

कोमा - जाती हूँ, राजा!

शकराज - कहाँ? आचार्य के पास? मालूम होता है कि वे बहुत ही दुखी हो कर चले गये है।

कोमा - धूमकेतू को दिखाकर उन्होंने मुझसे कहा है कि तुम्हारे दुर्ग में रहने से अमंगल होगा।

शकराज - (भयभीत होकर उसे देखता हुआ) आह! भयावनी पूँछवाला धूमकेतु! आकाश का उच्चश्रृंखल पर्यटक! नक्षत्रलोक का अभिशाप! कोमा! आचार्य को बुलाओ। वे जो आदेश देगें, वही मैं करूगा। इस अमंगल की शान्ति होनी चाहिए।

कोमा - वे बहुत चिढ़ गये है। अब उनको प्रसन्न करना सहज नहीं है। वे मुझे अपने साथ लिवा जाने के लिए मेरी प्रतिक्षा करते होंगे।

शकराज - कोमा! तुम कहाँ जाओगी?

कोमा - पिताजी के साथ।

शकराज - और मेरा प्यार, मेरा स्नेह, सब भुला दोगी? इस अमंगल की शान्ति के लिये आचार्य को न समझाओगी?

कोमा - (खिन्न होकर) प्रेम का नाम न लो! वह एक पीड़ा थी जो छूट गयी। उसकी कसक भी धीरे-धीरे दूर हो जायेगी। राजा, मैं तुम्हें प्यार नहीं करती। मैं तो दर्प से दीप्त तुम्हारी महत्वमयी पुरूष-मूर्ति की पूजारिन थी, जिसमें पृथ्वी पर अपने पैरों से खड़े रहने की दृढ़ता थी! इस स्वार्थ-मलिन कलुष से भरी मूर्ति से मेरा परिचय नहीं। अपने तेज की अग्नि में जो सब कुछ भस्म कर सकता हो, उस दृढ़ता का, आकाश के नक्षत्र कुछ बना-बिगाड़ नहीं सकते। तुम आशंका-मात्र से दुर्बल - - कम्पित और भयभीत हो।

शकराज - (धूमकेतु को बार-बार देखता हुआ) भयानक! कोमा, मुझे बचाओ!

कोमा - जाती हूँ महाराज! पिताजी मेरी प्रतिक्षा करते होंगे।

(जाती है। शकराज अपने सिंहासन पर हताश होकर बैठ जाता है)

प्रहरी - (प्रवेश करके) महाराज! ध्रुवस्वामिनी ने पूछा है कि एकान्त हो तो आऊँ।

शकराज - हाँ कह दो कि यहाँ एकान्त है। और देखो, यहाँ दूसरा कोई न आने पावे।

(प्रहरी जाता हैः शकराज चंचल होकर टहलने लगता है। धूमकेतु की ओर दृष्टि जाती है तो भयभीत होकर बैठ जाता है)

शकराज - तो इसका कोई उपाय नहीं? न जाने क्यों मेरा हृदय घबरा रहा। कोमा को समझा-बुझा कर ले आना चाहिये (सोचकर) किन्तु इधर ध्रुवस्वामिनी जो आ रही है! तो भी देखूँ, यदि कोमा प्रसन्न हो जाय .....(जाता है)

(स्त्री -वेश में चन्द्रगुप्त आगे और पीछे ध्रुवस्वामिनी स्वर्ण-खचित उत्तरीय में सब अंग छिपाये हुये जाती है। केवल खुले हुये मूँह पर प्रसन्न दिखाई देती है)

चन्द्रगुप्त - तुम आज कितनी प्रसन्न हो।

ध्रुवस्वामिनी - और तुम क्या नहीं?

चन्द्रगुप्त - मेरे जीवन-निशीथ का ध्रुव-नक्षत्र इसे घोर अन्धकार में अपनी स्थिर उज्जवलता से चमका रहा है। आज महोत्सव है न?

ध्रुवस्वामिनी - लौट जाओ, इस तुच्छ नारी-जीवन के लिये इतने महान् उत्सर्ग की आवश्यकता नहीं।

चन्द्रगुप्त - देवी! यह तुम्हारा क्षणिक मोह हैं। मेरी परीक्षा न लो! मेरे शरीर ने चाहे जो रूप धारण किंया हो, किन्तु हृदय निश्छल है।

ध्रुवस्वामिनी - अपनी कामना की वस्तु न पाकर यह आत्महत्या जैसा प्रसंग तो नहीं है।

चन्द्रगुप्त - तीखे वचनों मर्माहत कर के भी आज कोई मुझे इस मृत्यु-पथ से विमुख नहीं कर सकता! मैं केवल अपना कर्त्तव्य करूँ, इसी में मुझे सुख है। (ध्रुवस्वामिनी संकेत करती है। शकराज का प्रवेश। दोनो चुप हो जाते हैं। वह दोनों को चकित होकर देखता है)

शकराज - मैं किसको रानी समझूँ रूप का ऐसा तीव्र आलोक! न्हीं मैंने कभी नहीं देखा था। इसमें कौन ध्रुवस्वामिनी है?

ध्रुवस्वामिनी - यह मैं आ गयी हूँ।

चन्द्रगुप्त - (हँसकर) शकराज को तुम धोखा नहीं दे सकती हो। ध्रुवस्वामिनी कौन है? यह अन्धा भी बता सकता है।

ध्रुवस्वामिनी - (आश्चर्य से) चन्द्रे! तुमको क्या हो गया है? यहां आने पर तुम्हारी इच्छा रानी बनने की हो गई है? या मुझे शकराज से बचा लेने के लिये यह तुम्हारी स्वामिभक्ति है?

(शकराज चकित होकर दोनों की ओर देखता है)

चन्द्रगुप्त - कौन जाने तुम्हीं ऐसा कर रही हो?

ध्रुवस्वामिनी - चन्द्रे! तुम मुझे दोनों ओर नष्ट न करो। यहाँ से लौट जाने पर भी क्या मैं गुप्तकुल के अन्तःपुर में रह पाऊँगी?

चन्द्रगुप्त - चन्द्रे कह कर मुझको पुकारने से तुम्हारा क्या तात्पर्य है? यह अच्छा झगड़ा तुमने फैलाया। इसीलिये मैंने एकान्त में मिलने की प्रार्थना की थी।

ध्रुवस्वामिनी - तो क्या मैं यहाँ भी छली जाऊँगी?

शकराज - ठहरो, (दोनों को ध्यान से देखता हुआ) क्या चिन्ता यदि मैं दोनों को ही रानी समझ लूँ?

ध्रुवस्वामिनी - ऐं.....

चन्द्रगुप्त - ऐं .....

शकराज - क्यों? इसमें क्या बुरी बात हैं?

चन्द्रगुप्त - जी नहीं, यह नहीं हो सकता। ध्रुवस्वामिनी कोन है, पहले इसका निर्णय होना चाहिये।

ध्रुवस्वामिनी - (क्रोध से) चन्द्रे! मेरे भाग्य के आकाश में धूमकेतू-सी अपनी गति बन्द करो।

शकराज - (धूमकेतु की ओर देखकर भयभीत-सा) ओह भयानक! (व्यग्र भाव से टहलने लगता है)

चन्द्रगुप्त - (शकराज की पीठ पर हाथ रखकर) सुनिये .....

ध्रुवस्वामिनी - चन्द्रे!

चन्द्रगुप्त - इस धमकी से तो लाभ नहीं।

ध्रुवस्वामिनी - तो फिर मेरा और तुम्हारा जीवन-मरण साथ ही होगा।

चन्द्रगुप्त - तो डरता कौर है (दोनों ही शीघ्र कटार निकाल लेते हैं)

शकराज - (घबराकर) हैं, यह क्या? तुम लोग यह क्या कर रही हो? ठहरो! आचार्य ने ठीक कहा है, आज शुभ् मूहूर्त नहीं। मैं कल विश्वसनीय व्यक्ति को बुला कर इसका निश्चय कर लूँगा। आज तुम लोग विश्राम करो।

ध्रुवस्वामिनी - नहीं इसका निश्चय तो आज ही होना चाहिये।

शकराज - (बीच में खड़ा होकर) मै कहता हूँ न।

चन्द्रगुप्त - वाह रे कहने वाले!

(ध्रुवस्वामिनी मानो चन्द्रगुप्त के आक्रमण से भयभीत होकर पीछे हटती है और तूर्यनाद करती है। शकराज आश्चर्य से उसे सुनता हुआ सहसा घूम कर चन्द्रगुप्त का हाथ पकड़ लेता हैं ध्रुवस्वामिनी झटके से चन्द्रगुप्त का उत्तरीय खींच लेती है और चन्द्रगुप्त हाथ छुड़ाकर शकराज को घेर लेता है)

चन्द्रगुप्त - (चकित-सा) ऐं, यह तुम कौन प्रवंचक?

शकराज - मैं हूँ, चन्द्रगुप्त, तुम्हारा काल। मैं अकेला आया हूँ, तुम्हारी वीरता की परीक्षा लेने। सावधान!

(शकराज भी कटार निकाल कर युद्ध के लिए अग्रसर होता है। युद्ध, और शकराज की मृत्यु। बाहर दुर्ग में कोलाहल। 'ध्रुवस्वामिनी की जय' का हल्ला मचाते हुए रक्ताक्त कलेवर सामन्त कुमारों का प्रवेश, ध्रुवस्वामिनी और चन्द्रगुप्त को घेर कर समवेत स्वर से 'ध्रुवस्वामिनी की जय हो!')

(पटाक्षेप)

तृतीय अंक

(शक। दुर्ग के भीतर एक प्रकोष्ठ। तीन मंच में दो खाली और एक पर ध्रुवस्वामिनी पादपीठ1 के ऊपर बायें पैर पर दाहिना पैर रखकर अधरों से ऊँगली लगाये चिन्ता में निमग्न बैठी है। बाहर कुछ कोलाहल होता है)

सैनिक - (प्रवेश करके) महादेवी की जय हो!

ध्रुवस्वामिनी - (चौंककर) क्या?

सैनिक - विजय का समाचार सुनकर राजाधिराज भी दुर्ग में आ गये हैं। अभी वे सैनिकों से बातें कर रहे हैं। उन्होंने पूछा है महादेवी कहाँ हैं। आपकी जैसी आज्ञा हो; क्योंकि कुमार ने कहा है।

ध्रुवस्वामिनी - क्या कहा? यही न कि मुझसे पूछ कर राजा यहाँ आने पावें? ठीक है, अभी मैं बहुत थकी हूँ। (सैनिक जाने लगता है, उसे रोक कर) और सुनो तो; तुमने यह नहीं बताया कि कुमार के घाव अब कैसे हैं?

सैनिक - घाव चिन्ताजनक नहीं हैं, उन पर पट्टियां बँध चुकी हैं। कुमार प्रधान-मण्डप में विश्राम कर रहे हैं।

ध्रुवस्वामिनी - अच्छा जाओ; (सैनिक का प्रस्थान)।

मन्दाकिनी - (सहसा प्रवेश करके) भाभी, बधाई हो! (जैसे भूल कर गई हो) नहीं; नहीं! म्हादेवी, क्षमा कीजिए।

ध्रुवस्वामिनी - मन्दा! भूल से ही तुमने आज एक प्यारी बात कह दी। उसे क्या लौटा देना चाहती हो? आह! यदि वह सत्य होती?

(पुरोहित का प्रवेश)

मन्दाकिनी - क्या इसमें भी सन्देह है?

ध्रुवस्वामिनी - मुझे तो सन्देह का इन्द्रजाल ही दिखलायी पड़ रही है। मैं न तो महादेवी हूँ और न तुम्हारी भाभी (पुरोहित को देखकर चुप रह जाती है)।

पुरोहित - (आश्चर्य से इधर-उधर देखता हुआ) तब मैं क्या करूं?

मन्दाकिनी - क्यों, आपको कुछ कहना है क्या?

पुरोहित - ऐसे उपद्रवों के बाद शान्तिकर्म होना आवश्यक है। इसीलिए मैं स्वस्त्ययन करके आया था; किन्तु आप तो कहती है कि महादेवी ही नहीं हूँ।

ध्रुवस्वामिनी - (तीखे स्वर से) पुरोहित जी! मैं राजनीति नहीं जानती; किन्तु इतना समझती हूँ कि जो रानी शत्रु के लिए उपहार में भेज दी जाती है, वह महादेवी की उच्च पदवी से पहले ही वंचित हो गयी होगी।

मन्दाकिनी - किन्तु आप तो भाभी होना भी अस्वीकार करती हैं।

ध्रुवस्वामिनी - भाभी कहने का तुम्हें रोग हो तो कह लो। क्योंकि इन्हीं पुरोहित जी ने उस दिन कुछ मंत्रों को पढ़ा था। उस दिन के बाद मुझे कभी राजा से सरल सम्भाषण करने का अवसर ही न मिला। हां, न जाने मेरे किस अपराध पर

सन्दिग्ध- चित्त होकर उन्होंने जब मुझे विर्वासित किया, तभी मैने उनसे अपने स्त्री होने के अधिकार की रक्ष की भीख माँगी थी। वह भी न मिली और मै बलि-पशु की तरह, अकरूण आज्ञा की बाँधी हुई शक- दुर्ग में भेज दी गयी।

तब भी मुझे तुम भाभी कहना चाहती हो?

मन्दाकिनी - (सिर झुका कर) यह गर्हित और ग्लानि- जनक प्रसंग है।

पुरोहित - यह मै क्या सुन रहा हूँ? मुझे तो यह जान कर प्रसन्नता हुई थी की तरह, अपने साहस के बल पर महादेवी ने इस दुर्ग पर अधिकार किया है।

ध्रुवस्वामिनी - आप झूठ बोलते है!

पुरोहित - (आश्चर्य से) मै और झूठ!

ध्रुवस्वामिनी-हाँ, आप और झूठ, नहीं स्वंय आप ही मिथ्या हैं।

पुरोहित - (हँस कर) क्या आप वेदान्त की बात कहती है? तब तो मिथ्या है ही।

ध्रुवस्वामिनी - (क्रोध में) संसार मिथ्या है या नहीं, यह तो मै नही जानती, परन्तु आप, आपका कर्मकाण्ड और आपके शास्त्र क्या सत्य है, जो सदैव रक्षणीय स्त्री की दुर्दशा हो रही है?

पुरोहित - (मन्दकिनी से) बेटी! तुम्ही बताओ, यह मेरा भ्रम है या महादेवी का रोष?

ध्रुवस्वामिनी - रोष है, हाँमै रोष से जली जी रही हूँ। इतना बड़ा उपहास- धर्म के नाम पर स्त्री की आज्ञाकारितर की सह पैशाचिक परीक्षा मुझसे बलपूर्वक ली गयी है। पुरोहित! तुमने जो मेरा राक्षस- विवाह कराया है, उसका उत्सव भी कितना सुन्दर है। यह जन-संहार देखो, अभी उस प्रकोष्ठ मे रक्त से सनी हुई शकराज की लोथ पड़ी होगी। कितने ही सैनिक दम तोड़ते होंगे, और इस रक्तधारा में तिरती हुई मै राक्षसी- सी साँस ले रही हूँ। तुम्हारा स्वस्त्ययन मुझे शान्ति देगा?

मन्दाकिनी - आर्य! आप बोलते क्यो नहीं? आप धर्म के नियामक है। जिन स्त्रियो को धर्म-बन्धन में बाँधकर उनकी सम्मति के बिना आप उनका सब अधिकार छीन लेते है, तब क्या धर्म के पास कोई प्रतिकार- कोई संरक्षण नहीं रख छोड़ते, जिससे वे स्त्रियाँअपनी आपत्ति में अवलम्ब माँग सकें? क्या भविष्य के सहयोग की कोरी कल्पना से उन्हें आप सनतुष्ट रहने की आज्ञा देकर विश्राम ले लेते है।

पुरोहित - नहीं, स्त्री और पुरूष का विश्वापूर्ण अधिकार, रक्षा और सहयोग ही तो विवाह कहा जाता है। यदि ऐसा न हो तो धर्म और विवाह खेल है।

ध्रुवस्वामिनी - खेल हो या न हो, किन्तु एक क्लीव पति के द्वारा परित्यक्ता नारी का मृत्यु- मुख में जाना ही मंगल है।

उसे स्वसत्ययन और शान्ति की आवश्यकता नहीं।

पुरोहित - (आश्चर्य से) यह मै क्या सुन रहा हूँ? विश्वास नहीं होता। यदि ये बाते सत्य है, तब मुझे फिर एक बार धर्मशास्त्र को देखना पडेगा। (प्रस्थान)

(मिहिरदेव के साथ कोमा का प्रवेश)

ध्रुवस्वामिनी - तुम लोग कौन हो?

कोमा - मै पराजित शक- जाति की एक बालिका हूँ।

ध्रुवस्वामिनी - इस घोर अपराध का तुम्हे क्या दण्ड मिला?

कोमा - वहीं, जो स्त्रियो को प्रायःमिला करता है- निराशा निष्पीड़न और उपहास! श्रानी मै तुमसे भीख माँगने आयी हूँ।

ध्रुवस्वामिनी - शत्रुओ के लिए मेरे पास कुछ नही है। अधिक हठ करने पर दण्ड मिलना भी असम्भव नहीं।

मिहिरदेव - (दीर्घ निःश्वास लेकर) पागल लड़की, हो चुका न? अब भी तू न चलेगी?

(कोमा सिर झुका लेती है)

मन्दाकिनी - तुम चाहता क्या हो?

कोमा - रानी तुम भी स्त्री हो। क्या स्त्री की व्यथा न समझोगी? आज तुम्हारी विजय का अन्धकार तुम्हारे शाश्वत स्त्रीत्व का ढँक ले, किन्तु सबके जीवन में एक बार प्रेम की दीपावली जलती है।

जली होगी अवश्य। तुम्हारी भी जीवन में वह आलोक का महोत्सव आया होगा, जिसमें हृदय-हृदय को पहचानने का प्रयत्न करता है, उदार बनता है और सर्वस्व दान करने का उत्साह रखता है। मुझे शकराज का शव चाहिये।

ध्रुवस्वामिनी - (सोच कर) जलो, प्रेम के नातम पर जलना चाहती हो तो तुम उस शव को ले जा कर जलो। जीवित रहने पर मालूम होता है कि तुम्हे अधिक शीतलता मिलज चुकी है। अवश्य तुम्हारा जीवन धन्य है। (सैनिक से) इसे ले जाने दो।

(कोमा का प्रस्थान)

मन्दाकिनी - स्त्रियो के इस बलिदान का भी कोई मूल्य नहीं। कितनी असहाय दशा है। अपने निर्बल और अवलम्ब1 खोलने वाले हाथो से यह पुरूषो के चरणो को पकड़ती है और वह सदैव ही इनको तिरस्कार घृणा, और दुर्दशा की भिक्षा से उपकृत करता है। तब भी यह बावली मानता है?

ध्रुवस्वामिनी - भूल है-भ्रम है। (ठहर कर) किन्तु उसका कारण भी है। पराधीनता की एक परम्परा - सी उनकी नस-नस में- उनकी चेतना में न जाने किस युग से घुस गयी है। उन्हें समझ कर भी भूल करनी पड़ती है। क्या वह मेंरी भूल न थी- जब मुझे निर्वासित किया गया, तब मै अपनी आत्म-मर्यादा4 से कितना तड़प् रही थी और राजाधिराज रामगुप्त के चरणो में रक्षा के लिये गिरी; पर कोई उपाय चला? नहीं। पुरूषो की प्रभुता का जाल मुझे अपने निर्दिष्ट पर ले आया। मन्दा! दुर्ग की विलय मेरी सफलता है या मेरा दुर्भाग्य इसे मै नही समझ सकी हूँ। राजा से मै समान नहीं चाहती। पृथ्वी- तल से जैसे एक साकार घृणा निकल कर मुझे अपने पीछे लौट चलने का संकेत कर रही है। क्या यह मेंरे मन का कलुष है? क्या मै मानसिक पाप कर रहीं हूँ?

(उन्मुक्त भाव से प्रस्थान)

मन्दाकिनी - नारी हृदय, जिसके मध्य बिन्दु से सट कर, शास्त्र का एक मन्त्र कील तरह गढ़ गया है और उसे अपने सरल प्रवर्त्तन- चक्र में घुमने से रोक रहा निश्चय ही वह कुमार चन्द्रगुप्त की अनुरागिनी है।

चन्द्रगुप्त - (सहसा प्रवेश करके) कौन?- मन्दा!

मन्दाकिनी - अरे कुमार! अभी थोड़ा विश्राम करते।

चन्द्रगुप्त - (बैठते हुए) विश्राम! मुझे कहाँ विश्राम? मै अभी यहाँ से प्रार्थना करने वाला हूँ। मेरा कर्त्तव्य पूर्ण हो चुका। यहाँ मेरा ठहरना अच्छा नहीं।

मन्दाकिनी - किन्तु, भाभी की जो बुरी दशा है।

चन्द्रगुप्त - क्यों उन्हें क्या हुआ? (मन्दाकिनी चुप रहती है) बोलो, मझे अवकाश नहीं।

राजाधिराज का सामना होंते ही क्या हो जायेगा- मै नही कह सकता। क्योकि अब यह राजनीतिक छल - प्रपंच मे सह सकता।

मन्दाकिनी - किन्तु, उन्हें इस असहाय अवस्था में छोड़कर आपका जाना क्या उचित होगा? और.... (चुप रह जाती है)

चन्द्रगुप्त - और क्या? वहीं क्यो नहीं कहती हो?

मन्दाकिनी - तो क्या उसे भी कहना होगा? महादेवी बनने के पहले ध्रवस्वागिनी का जो मनोभाव था, वह क्या आप से छिपा है?

चन्द्रगुप्त - किन्तु मन्दाकिनी! डसकी चर्चा करने से क्या लाभ?

मन्दाकिनी - हृदय में नैतिक साहस- वास्तविक प्रेरणा और पौरूष की पुकार एकत्र करके सोचिये तो कुमार, कि अब आपको क्या करना चाहिये?

(चन्द्रगुप्त चिन्तित भाव से टहलने लगता है। नेपथ्य में कुछ लोगो के आने- जाने का शब्द और कोलाहल) देखँ तो यह क्या है? और महादेवी कहाँ गयी? (प्रस्थान)

चन्द्रगुप्त - विधान की स्याही का एक बिन्दु गिर कर भाग्य- लिजि पर कालिमा बढत्रा देता है।मै आज यह स्वीकार करने में भी सेकुचित हो रहा हूँ कि ध्रुवदेवी मेरी है। (ठहर कर) हाँ, वह मेरी है। उसे मैने आरम्भ से ही अपनी सम्पूर्ण भावना से प्यार किया है। मेरे हृदय के गहन अन्तस्तल से निकली हुई सह मूक स्वीकृति आज बोल रही है। मैं पुरूष हूँ? मै अपनी आँखोसे अपना वैभव और अधिकार दूसरो को अन्याय से छीनते देख रहा हूँ। और मेरी वाग्दत्ता पत्नी मेरे ही अनुत्साह से आज मेरी नही रही। नही, यह शील का कपट, मोह अैर प्रवंचना है। मै जो हूँ, वही तो नही स्पष्ट रूप से प्रकट कर सका। यह कैसी विडम्बना है। विनय के आवरण मे मेरी कायरता अपने को कब तक छिपा सकेगी?

(एक ओर से मन्दाकिनी का प्रवेश)

मन्दाकिनी - शकरराज का शव लेकर जाते हुये आचार्य और उसकी कन्या का राजाधिराज के साथी सैनिको ने वध कर डाला

ध्रुवस्वामिनी - (दूसरी ओर से प्रवेश करके) ऐ!

(सामन्त कुमारो का प्रवेश)

सामन्त कुमार - (सब एक साथ ही) स्वामिनी! आपकी आज्ञा के विरूद्ध राजाधिराज ने निरीह शको का संहार करके दिया है।

ध्रुवस्वामिनी - फिर आप लोग इतने चंचल क्यो है? राजा को आज्ञा देनी चाहिये और प्रजा को नत-मस्तक होकर उसे मानना होगा।

सामन्त कुमार - किन्तु अब वह असह्य है। राजसत्ता के अस्तित्व की घोषणा के लिए इतना भंयकर प्रदर्शन। मै तो कहूँगा, इस दुर्ग में आपको आज्ञा के बिना राजा का आना अन्याय है।

ध्रुवस्वामिनी - मेरे वीर सहायको! मै तो स्वंय एक परित्यक्ता और हतभागिनी स्त्री हूँ। मुझे तो अपनी स्थिति की कल्पना से भी क्षोभ हो रहा है। मै क्या कहूँ?

सामन्त कुमार - मै सच कहता हूँ, रातगुप्त- जैसे राजपद को कलुषित करने पाले के लिसे मेरे हृदय मे तनिक भी श्रद्ध नही। विजय का उत्साह दिखाने यहाँ वे किस मुँह से आये, जो हिंसक, पाखण्डी क्षीव और कृीव है।

रामगुप्त - (सहसा शिखरस्वामी के साथ प्रवेश करके) क्या कहा? फिर से तो कहना!

सामन्त कुमार- गुप्त काल के गौरव को कलंक- कालिमा के सागर में निमज्जित करने वाले!

शिखरस्वामी - (उसे बीच ही में रोककर) चुप रहो! क्या तुम लोग किसी के बहकाने से आवेश में आ गये हो?

(चन्द्रगुप्त की ओर देखकर) कुमार! यह क्या हो रहा है?

(चन्द्रगुप्त उत्तर देने की चेष्टा करके चुप रह जाता है)

रामगुप्त - दुर्विनीत पाखण्डी, पामरो तम्हें इस धृष्टता का क्रुर दण्ड भोगना पड़ेगा। (नुपथ्य की ओर देखकर) इन विद्रोहियो को बन्दह करो।

(रामगुप्त के सैनिक आकर सामन्त कुमारो को बन्दी बनाते है। रामगुप्त का संकेत पा कर सैनिक लोग चन्द्रगुप्त की ओर भी बढ़ते है और चन्द्रगुप्त श्रंखृला में बँध जाता है)

ध्रुवस्वामिनी - कुमार! मैं कहती हूँ कि तुम प्रतिवाद किस अपराध के लिए यह दण्ड ग्रहण कर रहे हो?

(चन्द्रगुप्त एक दीर्घ निःश्वास लेकर चुप रह जाता है)

रामगुप्त - (हँसकर) कुचक्र करने वाले क्या बोलेगें?

ध्रुवस्वामिनी - और जो लोग बोल सकते है, जो अपनी पवित्रता की दुन्दुभी बजाते6 है, वे सब-के-सब साधु होते है न? (चन्द्रगुप्त से) कुमार! तुम्हारी जिह्वा पर कोई बन्धन नहीं कि मेरा यही अपराध है कि मैने कोई अपराध नहीं किया?

रामगुप्त - महादेवी!

ध्रुवस्वामिनी - (उसे न सुनते हुए चन्द्रगुप्त से) झटक दो इन लौह-श्रृखलाओं7 को! यह मिथ्या ढ़ोग कोई नहीं सहेगा। तुम्हारा क्रुद्ध दुर्दैव8 भी नहीं।

रामगुप्त - (डॉटकर) महादेवी! चुप रहो!

ध्रुवस्वामिनी - (तेजस्विता से) कौन महादेवी! राजा, क्या अब भी मै महादेवी ही हूँ? जो, शकराज की शय्या के लिये क्रीतदासीकी तरह भेजी गया हो वह भी महादेवी! आश्रचर्य!

शिखरस्वामी - देवि, इस राजनीतिक चातुरी में जो सफलता‘‘‘।

ध्रुवस्वामिनी - (पैर पटक कर) चुप रहो। प्रवंचना के पुतले! स्वार्थ घृणित प्रपंच चुप रहो।

रामगुप्त - तो तूम महादेवी नहीं हो न?

ध्रुवस्वामिनी - नहीं! मनुष्य की दी हुई उपाधि मै लौटा देती हूँ।

रामगुप्त - और मेरी सहधर्मिणी?

ध्रुवस्वामिनी - धर्मही इसका निर्णय करेगा।

रामगुप्त - ऐं क्या इसमें भी सन्देह!

ध्रुवस्वामिनी - उसे अपने हृदय से पूछियेकि क्या मै वास्तव में सहधर्मिणी हूँ?

(पुरोहित का प्रवेश सामने सबको देखकर चौंक उठना है। शिखरस्वामी उसे चले जाने का संकेत करता है)

पुरोहित - नहीं, मै नहीं जाऊँगा। प्राणि- मात्र के अन्तराल में जाग्रत रहने वाले महान्रहने वाले महान विचारक धर्म की आज्ञा, मै न टाल सकूँगा। अभी जो प्रश्न अपनी गम्भीरता में भीषण होकर आप लोगो को विचलित कर रहा है, मै ही उसका उत्तर देने का अधिकारी हूँ। विवाह का धर्मशास्त्र से घनिष्ट सम्बन्धहै।

ध्रुवस्वामिनी - आप सत्यवादी ब्राह्मण है। कृपा करके बतलाइये.....।

शिखरस्वामी - (विनय से उसे रोककर) मै समझता हूँ कि यह विवाद अधिक बढ़ाने से कोई लाभ नहीं।

ध्रुवस्वामिनी - नहीं, मेंरी इच्छा इस विवाद का अन्त करने की है। आज यह निर्णय हो जाना चाहिये कि मै कौन हूँ।

रामगुप्त - ध्रुवस्वामिनी, निर्लज्जता की भी एक सीमा होती है।

ध्रुवस्वामिनी - मेरी निर्लज्जता का दायित्व क्लीव का पुरूष पर है। स्त्रीकी लजजा लूटने वाले दस्यु के लिये मै.....।

रामगुप्त - (रोककर) चुप रहो! तुम्हारा पर- पुरूष में अनुरक्त हृदय अत्यन्त कलुषित हो गया है। तुम काल- सर्पिणी-सी स्त्री! ओह, तुम्हें धर्म का तनिक भी भय नहीं। शिखर ! इसे भी बन्दी करो।

पुरोहित - ठहरिये! महाराज, ठहरिए! धर्म की ही बात मै सोच रहा था।

शिखरस्वामी - (क्रोध से) मै कहता हूँ कि तुम चूप न रहोगे, तो तुम्हारी भी यही दशा होगी।

(सैनिक आगे बढ़ता है)

मन्दाकिनी - (उसे रोक कर) महाराज, पुरूषार्थ का इतना बड़ा प्रहासन! टबला पर एंसा अत्याचार!!! यह गुप्त- सग्राट के लिए शोभा नहीं देता।

रामगुप्त - (सैनिक से) क्या देखते हो जो!

(सैनिक आगे बढ़ता है और चन्द्रगुप्त आवेश में आकर लौह-श्रृखला तोड़ डालता है। सब आश्चर्य और भय से देखते है।)

चन्द्रगुप्त - में भी आर्य समुन्द्रगुप्त का पुत्र हूँ। और शिखरस्वामी, तुम यह अच्छी तरह जानते हो कि मै ही उसके द्वारा निर्वाचित युवराज भी हूँ। तुम्हारी नीचता अब असह्य है। तुम अनपे राजा को लेकर अस दुर्ग से सकुशल बाहर चले जाओ। यहाँ अब में ही शकराज के समस्त अधिकारी का स्वामी हूँ।

रामगुप्त - (भयभीत होकर चारो ओर देखती हुआ) क्यों?

ध्रुवस्वामिनी - (चन्द्रगुप्त से) यही तो कुमार!

चन्द्रगुप्त - (सैनिको को डपट कर) इन सामन्त कुमारो को मुक्त करो!

(सैनिको वैसा ही करते है और शिखरस्वामी के संकेत से रामगुप्त धीरे- धीरे भव से पीछे हटता हुआ बाहर चला जाता है)

थ्षखरस्वामी - कुमार!इस कलाह को मिटाने के लिये हम लोगो को परिषद का निर्णय माननीय होंना चाहिये। मुझे आपके अधिपत्य से कोई विरोध नहीं है, किन्तु सब काम विधान के अनुकूल होना चाहिये। मै कुल-वृद्धो को और सामप्त को, जो यहाँ उपस्थित है, लिवा लाने जाता हूँ।

(प्रस्थान)

(सैनिक लोग और भी मंच ले आते है और सामन्त कुमार अपने खड्गों कों खीचकर चन्द्रगुप्त के पीछे खड़े हो जाते हें। ध्रुवस्वामिनी अबौर चन्द्रगुप्त परस्पर ऐ दूसरे को देखते हुये खड़े रहते है। परिषद के साथ रामगुप्त का प्रवेश। सब लोग मंच पर बैठतें है)

पुरोहित - कुमार! आसन ग्रहण कीजिये।

चन्द्रगुप्त - मै अभियुक्त हूँ।

शिखरस्वामी - बीती हूई बातो को भूल जाने में ही भलाई है। भाई- भाई की तरह बले से लग कर गुप्त-कुल का गौरव बढ़ाइये।

चन्द्रगुप्त - अमात्य, तुम गौरव किसको कहते हो? वह है कहीं? रोग-जर्जर शरीर पर अलंकारो की सजावट? मलिनता और कलुष की ढेरी पर बाहरी कुंकुम- केसर का लेप गौरव नहीं बढ़ता। कुटिलता की प्रतिमूर्ति बोलो! मेरी वाग्दत्त पत्नी और पिता- द्वारा दिये हुये मेरे सिंहासन का अपहरण किसके संकेत से हुआ? और छल से.....।

रामगुप्त - यह उन्मुक्त प्रलाप बन्द करो। चन्द्रगुप्त तुम मेरे भाई ही हो न! मै तुमको क्षमा करता हूँ।

चन्द्रगुप्त - मै उसे मांगता नहीं और क्षमा देने का अधिकार भी तुम्हारा नही रहा। आज तुम राजा नही हो। तुम्हार पाप प्रायश्चित की पुकार कर रहे है। न्यायपूर्ण निर्णय के लिये प्रतीक्षा करो और अभियुक्त बनकर अपने अपराधो को सुनो।

मन्दाकिनी - (ध्रुवस्वामिनी को आगे खींच कर) यह है गुप्तकाल की वधू।

रामगुप्त - मन्दा!

मन्दाकिनी - राजा का भयष् मन्दा का बला नहीं घोंट सकता। तुम लोगो को यदि कुछ भी बुद्धि होती, तो इस अपना कुल- मर्यादा, नारी को, शत्रु के दुर्ग में यो न भेजते। भगवान ने स्त्रियो को उन्पन्न करते ही अधिकारी से वंचित10 नहीं किया है। किन्तु तुम लोगो की दस्यु-वृत्ति11ने उन्हें लूटा है। इस परिषद में मेरी प्रार्थना है कि आर्य समुद्रगुप्त का विधान तोड़ कर जिन लोगो ने राज-किल्विष12 किया हो उन्हें दण्ड मिलना चाहिये।

शिखरस्वामी - तुम क्या कह रही हो?

मन्दाकिनी - मै तुम लोगो की नीचता की गाथा सुना रही हूँ। अनार्य! सुन नहीं सकते? तम्हारी प्रवंचनाओ पे जिस नरक की सृष्टि की है उसका अन्त समीप है। यह साम्राज्य किसका है? आर्य समुद्रगुप्त ने किसे युवराज बनाया था? चन्द्रगुप्त को या इस क्लीव रामगुप्त को जिसने छल और बल से विवाह करके भी इस नारी को अन्य पुरूष की अनुरागिनी बताकर दण्ड देने के लिए आज्ञा दी है। वहीं रामगुप्त, जिसने छल और बल से विवाह करके भी इस स्त्री को शत्रु के दुर्ग में बिना विरोध केये भेज दिया था, तुम्हारे गुप्त साम्राज्य का सम्राट है! और वह ध्रुवस्वामिी!न जिसे कुछ द दिनो तक तुम लोगों ने महादेवी कह कर सम्बोधित किया है, वह क्या है? कौन है? और उसका कैसा अस्तित्व है? कहीं धर्मशास्त्र13 हो तो उसका मुँह खुलना चाहिये।

पुरोहित - शिखर, मुझे अब भी बोलने दोगे या नहीं। मै राज्य के सम्बन्ध में कुछ नही कहना चाहता। वह तुम्हारी रानीति जाने। किन्तु इस विवाह के सम्बन्ध में तो मुझे कुछ कहना ही चाहिये।

गुप्तकाल का एक वृद्ध- कहिए देव, आप ही तो धर्मशास्त्र के मुख है।

पुरोहित - विवाह की विधि ने देवी ध्रुवस्वामिनी और रामगुप्त को एक भ्रान्तिपूर्ण बन्धन में बाँध दिया है। धर्म का उद्देश्य इस तरह पददलित14 नहीं किय जा सकता। माता और पिता के प्रमाण के कारण से धर्म- विवाह केवल परस्पर द्वेष से टुट नहीं सकते; परन्तु यह सम्बन्ध उन प्रमाणो से भी विहीन है। और भी (रामगुप्त को देखकर) यह रामगुप्त मृत और प्रव्रजित15 तो नहीं; पर गौरव से नष्ट, आचरण से पतित और कर्मो से राजाकिल्विषी क्लीव है। ऐसी अवस्था में रामगुप्त का ट पर कोई अधिकार नहीं।

रामगुप्त - (खड़ा होकर क्रोध से) मूर्ख! तुमको मृत्यु का भय नहीं!

पुरोहित- तनिक भी नहीं! ब्राह्मण केवल- धर्म- से भयभीत है। अन्य किसी भी शक्ति को वह तुच्छ समझता है। तुम्हारे बधिक मुझे धार्मिक सत्य कहने से रोक नहीं सकते। उन्हें बुलाओ, मै प्रस्तुतहूँ।

मन्दाकिनी- धन्य हो ब्रह्मदेव!

शिखरस्वामी- किन्तु निर्भीक पुरोहित, तुम क्लीव शब्द का प्रयोग कर रहं हो!

पुरोहित - (हँसकर) राजनीतिक दस्यु! तुम शास्त्रार्थ न करो। क्लीव! श्रीकृष्ण ने अर्जुन को क्लीव किसलिये कहा था? जिसे अपनी स्त्री को दूसरे की अंकगामिनी बनने के लिये भेजने में कुछ संकोच नही, वह क्लीव नही ंतो और क्या है? मै स्पष्ट कहता हूँ कि धर्मशास्त्र रामगुप्त से ध्रुवस्वामिनी के मोक्ष की आज्ञा देता है।

परिषद् के सब लोग - आनार्य, पतित1 और क्लीव रामगुप्त, गुप्त साम्राज्य के पवित्र राज्य-सिंहासन पर बैठने का अधिकारी नहीं।

रामगुप्त - (सशंक और भयभीत-सा इधर-उधर देखकर) तुम सब पाखण्डी हो, विद्रोही हो। मैं अपने न्यायपूर्ण अधिकार को तुम्हारे-जैसे-कुत्तों के भौंकने पर न छोड़ दूँगा।

शिखरस्वामी - किन्तु परिषद् का विचार तो मानना ही होगा।

रामगुप्त - (रोने के स्वर से) शिखर! तुम भी ऐसा कहते हो? नहीं, मैं यह न मानूँगा।

ध्रुवस्वामिनी - रामगुप्त तुम अभी इस दुर्ग के बाहर जाओ।

रामगुप्त - ऐं! यह परिवर्तन? तो मैं सचमुच क्लीव हूँ क्या?

(धीरे-धीरे हटता हुआ चन्द्रगुप्त के पीछे पहुँचकर उसे कटार निकाल कर मारना चाहता है चन्द्रगुप्त को विपत्र देखकर कुछ लोग चिल्ला उठते हैं। जब तक चन्द्रगुप्त घूमता है तब तक एक सामन्त कुमार रामगुप्त पर प्रहार2 करके चन्द्रगुप्त की रक्षा कर लेता है; रामगुप्त गिर पड़ता है)

सामन्त कुमार - राजाधिराज चन्द्रगुप्त की जय!

परिषद् - महादेवी ध्रुवस्वामिनी की जय!

3.5 धुरवस्वामिनीः आलोचना

3.5.1 कथावस्तु

ध्रुवस्वामिनी नाटक का कथासूत्र ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि में निर्मित हुआ है। समुद्रगुप्त के बड़े पुत्र रामगुप्त, उसकी पत्नी ध्रुवस्वामिनी व छोटे पुत्र चन्द्रगुप्त को आधार बनाकर 'धुरवास्वामिनी' नाटक की कथावस्तु का विकास किया गया है। इतिहास में यह घटना विवादित रही है कि ध्रुवस्वामिनी ने अपने पति रामगुप्त को छोड़कर चन्द्रगुप्त से विवाह किया था या नहीं? इस संदर्भ में संस्कृत नाटककार विशाखदŸा ने नाटक 'देशी चन्द्रगुप्त' का आधार भी जयशंकर प्रसाद ने ग्रहण किया है। इस संर्दर्भ में कथास्त्रोत के सूत्र राजेशखर और बाणभट्ट की टिप्पणियाँ, नारद स्मृति, पराशर स्मृति, कौटिल्य का अर्थशास्त्र इत्यादि, 'ध्रुवस्वामिनी ' नाटक के आधार बने हैं।

जयशंकर प्रसाद के सभी नाटकों में 'ध्रुवस्वामिनी ' रंगमंचीय वि?ाान की दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण नाटक है। नाटक तीन अंकों में विभक्त है। प्रत्येक अंक एक-एक अंकों में विभक्त है। पहले अंक में नाटक की पृष्ठभूमि निर्मित करने का प्रसाय किया गया है। द्वितीय अंक कथा का विस्तार है। तथा तृतीय अंक में संपूर्ण कथानक को समेट कर उसे पूर्णता तक पहुँचाया गया है। दृश्य और सूच्य घटनाओं के उचित तालमेल से कथानक को गति प्रदान की गई है। जयशंकर प्रसाद जी के नाटकों में सूच्य घटनाएँ जहाँ एक ओर कथानक को गति प्रदान करने के लिए लाई जाती है। वहीं दूसरी ओर इससे कौतूहल व नाटकीयता का उचित संतुलन भी स्थापित हो जाता है। 'ध्रुवस्वामिनी ' नाअक् में इसी प्रकार विविध नाटकीय युक्तियों का प्रयोग किया गया है। शकराज का प्रस्ताव, चन्द्रगुप्त का शक-दुर्ग में जाने का निर्णय, चन्द्रगुप्त का लौह-श्रृंखला तोड़ कर ध्रुवस्वामिनी की रक्षा करना, पुरोहित का क्रान्तिकारी निर्णय, चन्द्रगुप्त का भेष बदलकर शकराज के शिविर में जाना इत्यादि घटनाओं के माध्यम से नाटकीय की सृष्टि की गई है।

3.5.2 चरित्र-चित्रण

नाटक में कथानक को प्राण कहा गया है किन्तु इस प्राण में रक्त-संचार का कार्य उसके चरित्र करते हैं। नाटक में चरित्र-चित्रण की उपयोगिता इस बात से भल-भाँति समझी जाती है कि चरित्र के बिना परिस्थितियाँ और घटनाओं का कोई औचित्य नहीं होता । कहने का अर्थ है कि चरित्र कथानक को गति प्रदान करने वाले अव्यव माँग करता है, क्योंकि इसमें प्रत्यक्ष प्रस्तुति में ही दर्शकों के साथ अपने चरित्र को किसित करना होता है। इस प्रकार पात्र कथावस्तु को अभिव्यक्त करने वाले पात्र होते हैं। कथावस्तु और चरित्र-चित्रण की संगति इसलिए नाटक में किसी अन्य दूसरी विधाओं की अपेक्षा ज्यादा अनिवार्य होती है। दूसरी विधाओं जैसे उपन्यास में ढेरों पात्र होते हैं, जो अपने -अपने ढंग से महत्पूर्ण होते है, लेकिन कई पात्र ऐसे भी होते हैं जो उपन्यास की गति में उतनी महत्वपूर्ण भूमिका नहीं निभाते। इस दृष्टि से नाटक में आये सभी पात्रों को अपनी सार्थकता सिद्ध करनी पड़ती है।

किसी भी नाटक में मुख्य पात्र के अतिरिक्त भी अनेकों पात्रों की सृष्टि नाटकार को करनी पड़ती है, जिनका नाटक की गति में अपना अलग महत्व होता है। यहाँ धुरवस्वामिनि नाटक में आये प्रमुख पात्रों की चर्चा करना अपेक्षित होगा-'ध्रुवस्वामिनी ' नाटक जयशंकर प्रसाद का उनके अन्य नाटकों की अपेक्षा छोटा नाटक है, इसलिए इसमें पात्रों की संख्य भी अपेक्षाकृत कम है। रामगुप्त, चन्द्रगुप्त, शकराज,, शिखरस्वामी, निहिरिदेव, खिंगिल व पुरोहित प्रमुख पुरूष पात्र हैं। इसके अतिरिक्त हिजड़ा, बौना, कुबड़ा, प्रतिहारी, खड़गधारिणी सामंत कुमार, शक-सामंत जैसे अन्य पात्र भी चित्रित किए गये हैं। स्त्री पात्रों में ध्रुवस्वामिनी , मंदाकिनी और कोमा प्रमुख पात्र है। यहाँ हम प्रमुख पात्रों के चरित्र का संक्षेप में अध्ययन करेंगें.....
ध्रवस्वामिनी

ध्रुवस्वामिनी न केवल आलोच्य नाटक की नायिका है अपितु संपूर्ण नाटक का केन्द्र-बिन्दु भी है। आरम्भ से लेकर नाटक की सामाप्ति तक प्रमुख घटनाक्रमों के केन्द्र में वही है। उसका चरित्र-चित्रण करते हुए प्रसाद जी ने उसे द्वन्द्वशील पात्र के रूप में चित्रित किया है। उसे नाटककार ने एक ओर सहृदय प्रेमी के रूप में चित्रित किया है, दूसरी ओर अन्याय की प्रतिरोध करने वाली स्त्री के रूप में भी.....

''मैं केवल यही कहना चाहती हूँ कि पुरूषों ने स्त्रियों को अपनी पशु संपŸिा समझ कर उन पर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया है, वह मेरे साथ नहीं चल सकता''

× × ×

''मेरा स्त्रीत्व क्या इतने का भी अधिकारी नहीं कि अपने को स्वामी समझने वाला पुरूष उसके लिए प्राणों का पण लगा सके।''

× × ×

''निर्लज्ज! मद्यप!! क्लीव!!! ओह, तो मेरा कोई रक्षक वहीं? (ठहर कर), मैं अपनी रक्षा स्वंय करूँगी! मैं उपहार में देने की वस्तु, शीतलमणि नहीं हूँ। मुझ में रक्त की तरल लालिमा है। मेरा हृदय उष्ण है उसमें आत्म-सम्मान की ज्योति है। उसकी रक्षा में ही करूँगी।''

इस प्रकार सम्पूर्ण नाटक में ध्रवस्वामिनी को नाटककार ने परिस्थितियों से संघर्ष, प्ररिरोध करने वाले पात्र के रूप में चित्रित किया है। कुल मिलाकर ध्रवस्वामिनी का चरित्र अन्याय के खिलाफ आवाज उठा रही आधुनिक स्त्री का है जो अपनी नियति मानकर सब कुछ को स्वीकार करने से इंकार करती है। ध्रवस्वामिनी स्त्री-मन व आधुनिक चेतना के द्वन्द्व का प्रतिफल है।

चन्द्रगुप्त-

चन्द्रगुप्त नाटक का नायक तथा प्रधान पुरूष पात्र है। नाटक के महत्वपूर्ण घटना क्रमों का वह आधार है। भारतीय नायकत्व परम्परा में उसका विशिष्ट स्थान है। पद के प्रति निस्प्रह होना व अपने कर्त्तव्य के प्रति जागरूक होना उसके व्यक्तित्व की प्रधान विशेषता है। चन्द्रगुप्त पराक्रमी, त्यागी व प्रेमी व्यक्तित्व के रूप में नाटक में आया है। पराक्रम के साथ कर्त्तव्य व संयम उसके व्यक्तित्व को गंभीरता प्रदान करते हैं। ध्रुवस्वामिनी की तरह की अपने प्रेम व कर्त्तव्य-मर्यादा के बीच उसके मन में भी लगातार द्वन्द्व चलता रहता है। नाटक में प्रारम्भ में यद्यपि प्रसाद ने उसे संयमी रूप में चित्रित किया है, जिसके कारण वह अपने प्रेम व राज्य पर अधिकार छोड़ देता है, लेकिन क्रमशः वह दोनों को प्राप्त करने में सफल होता है।

रामगुप्त-

रामगुप्त, 'ध्रुवस्वामिनी ' नाटक का नायक तो नहीं है, किन्तु प्रधान पात्र अवश्य है। नाटक की समस्त घटनाएँ उसी के व्यक्तित्व के क्रिया- प्रतिक्रिया में जन्म लेती है। चन्द्रगुप्त के विपरीत उसके चरित्र में कई दुर्बलताएँ हमें देखने को मिलती हैं। अमानवीय, विलासी, कर्त्तव्यहीन, शंकालु, डरपोक, लिजलिजा, कायर, स्वार्थी रूप में उसका चरित्र गढ़ा गया है।

उसके स्वार्थ की चरम परिणति होती है ज बवह शकराज के प्रस्ताव के अनुसार अपनी पत्नी ध्रवस्वामिनी को शकराज के पास भेजने का निर्णय कर लेता है। ऐसा निर्णय वह अपने कायर व स्वार्थी चरित्र के कारण ही ले पाता है। वह ध्रुवस्वामिनी से कहता है- ''तुम्हारा नारीत्व-अमूल्य हो सकता है। फिर भी अपने लिए में स्वंय कितना आवश्यक हूँ, कदाचित तुम वह नहीं जानती हो।'' (यह वक्तव्य उसके स्वार्थी चरित्र का संकेत है) इसी प्रकार एक जगह वह निर्लज्जतापूर्वक कहता हैः '' तुम, मेरी रानी? नहीं, नहीं जाओ, तुमको जाना पड़ेगा। तुम उपहार की वस्तु हो। आज में तुम्हें किसी दूसरे को देना चाहता हूँ। इसमें तुम्हें आपत्ति हो?'' (क्लीवता व हकधर्मिक का संकेत)

3.5.3 देश-काल एवं परिवेश

देश-काल एवं परिवेश से तात्पर्य नाटक की कथावस्तु में चित्रित समय व स्थान से है। हर रचना किसी-न-किसी समय और स्थान पर लिखी जाती है। समय और स्थान कोई भी हो, उकस एक परिवेश अवश्य होता है। देश-काल एवं वातावरण का तात्पर्य ऐसे ही चित्रण से है। देश-काल भिन्न-भिन्न होते हैं, इसलिए उसका परिवेश भी भिन्न-भिन्न हो जाता है। अपनी सुबिधानुसार इसीलिए लेखक कभी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का चुनाव करता है तो कभी आधुनिक परिवेश को चुनता है। परिवेश का यह चुनाव कथ्य के अनुरूप भी होता है और रचनाकार की रूचि व व्यक्तित्व के अनुसार भी।

'ध्रुवस्वामिनी ' नाटक इतिहास पर आधारित है। इतिहास के उज्जवल अंश को अपनी कल्पना एवं संस्कृति के रंग से रंगकर जयशंकर प्रसाद उसे एक नवीन रूप दे देते है। यह नवीन रूप 'इतिहास की पूर्ति' के रूप में हमोरे सामने आता है। 'विशाख' की भूमिका में प्रसाद जी ने लिखा है-'' इतिहास का अनुशीलन किसी भी जाति को अपना आदर्श संगठित करने के लिए अत्यंत लाभदायक होता है..... मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में से उन प्रकांड घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है जिन्होंने कि हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया है। '' प्रसाद जी की यह दृष्टि संपूर्ण 'ध्रुवस्वामिनी ' नाटक में व्याप्त है। गुप्त युगीन परिस्थिति को प्रस्तुत करने के लिए प्रसाद जी ने उस युग के आचार-विचार, प्रयुक्त सामग्री, भाषा, युद्ध, राजमहल की आन्तरीक व्यवस्था व राजीति की घटना को ऐतिहासिक रूप से जोड़ा है।

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(क)-

1. गलत
2. गलत
3. सही
4. सही

5. सही

(ख)-

1. 1933
2. 1889
3. 1937
4. इंदु
5. 1936

3.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. स्वातन्त्रयोत्तर हिंन्दी नाटक संचयन (सं)- अंकुर, देवेंन्द्र राज, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया।
2. हिन्दी नाटक नई परख (सं)- गौतम, रमेश, स्वराज प्रकाशन।

3.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री

हिन्दी साहिय का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा,काशी
आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, बच्चन सिहं
हिन्दी नाटक नई परख (सं)- गौतम, रमेश, स्वराज प्रकाशन।

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. ध्रवस्वामिनी की नाट्य विशेषताओं पर प्रकाश डालिये।
2. ध्रुवस्वामिनी की पात्र संरचना पर प्रकाश डालिये।

इकाई 4 आधे अधूरे : पाठ एवं मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 पाठ का उद्देश्य
4.3 आधे-अधूरेः मूल पाठ
4.4 मोहन राकेश एवं आधे-अधूरे परिचय
4.4.1 मोहन राकेशः साहित्यिक परिचय
4.4.2 आधे-अधूरेः परिचय
4.5 आधे-अधूरेः मूल्यांकन
4.5.1 आधुनिक जीवन के पश्न
4.5.2 चरित्र और समाज
4.5.3 संवाद और देशकाल
4.5.4 नाटकीय- रंगमंचीय संदर्भ
4.6 सारांश
4.7 शब्दावली
4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
4.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.11 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

भारतीय नाटकों की समृद्ध परम्परा भारत में भी रही है और परिश्चम में भी संस्कृत नाटककारों में कालिदास, भवभूति, अश्वघोष, शूद्रक, माद्य जैसे नाटककार रहे हैं । इसी प्रकार पश्चिमी नाटककारों की प्ररम्परा में जॉर्ज बर्नाड शॉ, इलियट, शेक्सपियर, सैम्युअल बैकेट, इब्सन जैसे महत्वपूर्ण नाटकार रहे है। इस प्रकार संस्कृत एवं पश्चिमी नाटककारों की लम्बी परम्परा का धाय हिन्दी नाटककार ने स्वीकार किया। इस प्रकार हिन्दी नाटक में अपनी आत्मा संस्कृत नाटकों की परम्परा को बनाया तथा अपने शरीर को आकार पश्चिम की नाटक परम्परा से ग्रहण किया।

हिन्दी नाटकों की परम्प्रा गिरिधरदास, गोपालचन्द्र दास, लक्ष्मण सिंह से होते हुए भारतेन्दु जी के व्यक्तित्व के साथ प्रकट हुई। भारतेन्दु जी के नाटकों पर एक ओर जहाँ लोक परम्परा का प्रभाव है, वहीं दूसरी आरे पश्चिमी नाटकों की परम्परा का भी । भारतेन्दु जी की परम्परा में ही जयशंकर प्रसाद का आगमन हुआ। जयशंकर प्रसाद के नाटकों पर संस्कृत के क्लासिकल नाट्यों एवं शेक्सपियर के नटकों पर प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। इसी प्रकार भुवनेश्वर, रामकुमार वर्मा की एकांकीयों पर इब्सन और बैंकेट के प्रभाव को स्वीकार किया गया है। नाटकों की इसी समृद्ध परम्परा में मोहन राकेश का आगमन होता है।

मोहन राकेश के नाटकों में आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस व आधे-अधूरे प्रमुख हैं। प्रारंभिक दोनों नाटकों की तुलना में 'आधे-अधूरे' को मोहन राकेश जी ने आधुनिक जीवन समस्या पर केंद्रित किया है। प्रश्न यह है कि ' आधुनिक जीवन समस्या' क्या है? आधुनिक जीवन समस्या का अभिप्राय ऐसी समस्या से है, जो आधुनिकता की प्रक्रिया के दुष्परिणाम थे।

4.2 पाठ का उद्देश्य

एम0ए0एच0एल0-202 की यह चौथी इकाई है। यह इकाई आधे-अधूरे नाटक के माध्यम से आधुनिक जीवन प्रश्नों को खोजने का प्रयास है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- मोहन राकेश के जीवन परिचय को जान सकेंगें।
- मोहन राकेश के साहित्यिक कृतियों से परिचित हो सकेंगे।
- 'आधे-अधूरे' नाटक के मूल पाठ से परिचित हो सकेंगे।
- आधे-अधूरे' नाटक के माध्यम से आधुनिक जीवन विसंगति को समझ सकेंगे।
- नाटक की रंगमंचीय विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- कुछ नये-कठिन शब्दों के अर्थ व उनके प्रयोग की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।

आधे-अधूरे के माध्यम से हिन्दी नाटक परम्परा की विशेषताओं को भी समझ सकेंगे।

4.3 मोहन राकेश एवं आधे-अधूरे: परिचय

आधे-अधूरे मूल पाठ

मध्यमवर्गीय स्तर से ढहकर निम्न-मध्यमवर्गीय निम्न स्तर पर आया एक घर।

सब रूपों में इस्तेमाल होने वाल वह कमरा जिसमें घर के व्यतीत स्तर के कई टूटते अवशेष-सोफा-सेट, डानिंग टेबल, कबर्ड और डे°सिंग देबल आदि-किसी-न-किसी तरह अपने लिए नगह बनाए हैं। जो कुछ भी है, वह अपने अपेक्षाओं के अनुसार न होकर कमरे की सीमाओं के अनुसार एक और ही अनुपात से है। एक चीज का दूसरी चीज से शिता तात्कालिक सुविधा की मांग के कारण लगभग टूट चुका है। फिरभी लगता है कि वह सुविधा कई तरह की असुविधाओं से समझौता करके की गई है- बल्कि कुछ असुविधाओं में ही सुविधा खोजने की कोशिश की गई है। सामान मेंकही एक तिपाई, कहीं दो-एक मोढे, कही फटी-पुरानी किताओं का एक शेल्फ और कहीं पढ़ने की एक मेज-कुरसी भी है। गद्दे परदे, मेजपोश और पलंगोश अगर हैं, तो इस तरह घिसे, फटे या सिले हुए कि समझ में नहीं आता कि उनका न होना क्या होने से बेहतर नहीं था!

तीन दरवाजे तीन तरफ से कमरे में झांकते हैं एक दरवाजा कमरे को पिछल अहाते से जोड़ता है, एक अन्दर के कमरे से और एक बाहर की दुनिया से। बाहर का एक रास्ता अहाते से होकर भी है। रसोईघर में भी अहाते से हाकर जाना होता है। परदा उठने पर सबसे पहले चाय पीने के बाद डाइनिंग टेबल पर छोड़ा गया अधटूटा छी-सेट आलोकित होता है। फिर फटी किताओं और टूटी कुर्सियों आकद में से एक-एक। कुछ सेकंड बाद प्रकाश शोफे के उस भाग पर केंन्द्रित हो जाता है जहां बैठा काले सूट वाल आदमी सिगार केकश खींच रहा है। उसके सामने रहते प्रकाश उसी तक सीमित रहता है, पर बीच-बीच में कभी यह कोना और वह कोना साथ आलोकित हो उठता है।

का0सू0वा0: (कुछ अंतर्मुख भाव से सिगार की राख झाड़ता) फिर एक बार, फिर से वही शुरूआत.....।

जैसे कोशिश से अपने को एक दायित्व के लिए तैयार करके सोफे से उठ पड़ता है।

मै नहीं जानता आप क्या समझ रहे हैं मैं कौन हूँ, और क्या आशा कर रहे हैं मैं क्या कहने जा रहा हूं। आप शायद सोचते हों कि मैं इस नाटक में कोई एक निश्चित इकाई हूं- अभिनेता, प्रस्तुकर्ता, व्यवस्थापक या कुछ और। परन्तु मैं अपने संबंध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कह सकता-उसी तरह जैसे इस नाटक के संबंध में नहीं कह सकता, क्योंकि यह नाटक भी अपने में मेरी ही तरह अनिश्चित है। अतिश्चित होने का कारण यह है कि..... परन्तु कारण की बात करना बेकार है। कारण हर चीज का कुछ-नक-कुछ होता है, हालांकि यह आवश्यक नहीं कि जोकारण दिया जाए, वास्तविक कारण वही हो। और जब मैं अपने ही संबंध में निश्चित नहीं हूं, तो और किसी चीज के कारण-अकारण के संबंध में निश्चित कैसे हो सकता हूं?

सिगार के कश खींचता पल-भर सोचता-सा खड़ा रहाता है।

मैं वास्तव में कौन हूं?- यह एक ऐसा सवाल है जिसका सामना करना इधर आकर मैंने छोड़ दिया है। जो मैं इस स्टेज पर हूं, वह यहां से बाहर नहीं हूं और जो बाहर हूं.....खैर, इसमें आपकी क्या दिलचस्पी हो सकती है कि मैं यहां से बाहर क्या हूं? शायद अपने बारे में इतना कह देना ही काफी है कि सड़क के फुटपाथ पर चढ़ते आप अचानक जिस आदमी से टकरा जाते हैं, वह आदमी मैं हूं। आप सिर्फ घूमकर मुझे देख लेते हैं- इसके अलावा मुझसे कोई मतलब नहीं रखते कि मैं कहां रहता हूं, क्या काम करता हूं, किस-किस से मिलता हूं और किन'-किन परिस्थितियों में जीता हूं। आप मतलब नहीं रखते क्योंकि मैं भी आपसे मतलब नहीं रखता, और टकराने के क्षण में आप मेरे लिए वही होते हैं जो मैं आपके लिए होता हूं। इसलिए जहां इस समय मैं खड़ा हूं, वहां मेरी जगह आप भी हो कसते थे'-दो टकराने वाले व्यक्ति होने के नाते आपमें और मुझमें बहुत बड़ी समानता है। यही समानता आप में और उसमें, उसमें और उस दूसरे में, उस दूसरे में और मुझमें..... बहरहाल इस गणित की पहेली में कुछ नहीं रखा है। बात इतनी ही है कि विभाजित होकर मैं किसी-न-किसी अंश में आप में से हर एक व्यक्ति हूं और यही कारण है कि नाटक के बाहर हो या अंन्दर, मेरी कोई भी एक निश्चित भूमिका नहीं है।

कमरे के एक हिस्से से दूसरे हिस्से में टहलने लगता है।

मैंने कहा था, यह नाटक भी मेरी ही तरह अनिश्चित है। उसका कारण भी यही है कि मैं इसमें हूं और मेरे होने से ही सब-कुछ उसमें निर्धारित या अनिर्धारित है। एक विशेष परिवार, उसकी विशेष परिस्थितियां! परिवार दूसरा होने से परिस्थितियां बदल जातीं, मैं वही रहता। इसी तरह सब-कुछ निर्धारित करता। इस परिवार की स्त्री के स्थान पर कोई दूसरी स्त्री किसी दूसरी तरह से मुझे झेलती-या वह स्त्री मेरी भूमिका ले लेती और मैं उसकी भूमिका लेकर उसे झेलता। नाटक अंत तक फिर भी इतना ही अनिश्चित बना रहता और यह निर्णय करना इतना ही कठिन होता कि इसमें मुख्य भूमिका किसकी थी- मेरी, उस स्त्री की, परिस्थितियों की , या तीनों के बीच से उठते कुछ सवालों की?

फिर दर्शकों के सामने आकर खड़ा हो जाता है। सिगार मुंह में लिए पल-भर ऊपर की तरफ देखता है। फिर 'हंह' के स्वर साथ सिगार मुंह से निकालकर उसकी राख झाड़ता है।

पर हो सकता है, मैं एक अनिश्चित नाटक में एक अनिश्चित पात्र होने की सफाई-भर पेश कर रहा हूँ। हो सकता है, यह नाटक एक निश्चित रूप ले सकता हो-किन्हीं पात्रों को निकाल देने से, दो-एक पात्र और जोड़ देने से, कुछ भूमिकाएं बदल देने से, कुछ पंक्तियां हटा देने से, कुछ पंक्तियां बढा़ देने से, या परिस्थितियों में थोड़ा हेर-फेर कर देने से। हो सकात है, आप पूरा देखने के बाद, या उससे पहले ही, कुछ सुझाव दे सकें इस संबंध में। इस अनिश्चित पात्र से आपकी भेंट इस बीच कई बार होगी.....।

हलके अभिवादन के रूप में सिर हिलाता है जिसके साथ ही उसकी आकृति धीरे-धीरे धुंधलाकर अंधेरे में गुम हो जाती है। उसके बाद कमरे के अलग-अलग कोने एक-एक करके आलोकित होते हैं और एक आलोक-व्यवस्था में मिल जाते हैं। कमरा खाली है। तिपाई पर खुला हुआ हाईस्कूल का बैग पड़ा है जिसमें आधी कापियां और किताबें बाहर बिखरी हैं। सोफे पर दो-एक

पुराने मैगजीन, एक कैंची और कुछ कटी-अधकटी तसवीरें रखी हैं। एक कुरसी की पीठ पर उतरा हुआ पाजामा झूल रहा है। स्त्री कई-कुछ संभाले बाहर से आती है। कई-कुछ में कुछ घर का है, कुछ दफ्तर का, कुछ अपना। चेहरे पर दिन-भर के काम की थकान है और इतनी चीजों के साथ चलकर आने की उलझन। आकर सामान कुरसी पर रखती हुई वह पूरे कमरे पर एक नजर डाल लेती है।

स्त्रीः (थकान निकालने के स्वर में) ओह होह होह् होह् होह्! (कुछ हताश भाव से) फिर घर में कोई नहीं। (अन्दर के दरवाजे की तरफ देखकर) किन्नी!..... होगी ही नहीं, जवाब कहां से दे? (तिहाई पर पड़े बैग को देखकर) यह हाल है इसका! (बैग की एक किताब उठाकर) फिर फाड़ लाई एक और किताब! जरा शरम नहीं कि रोज-रोज कहां से पैसे आ सकते हैं नई किताबें के लिए! (सोफे के पास आकर) और अशोक बाबू यह कमाई करते रहे हैं दिन-भर! (तसवीरें उठाकर देखती) एलिजाबेथ टेलर.... आडे[a] हेबर्न..... शर्ले मैक्लेन! जिंदगी काट रहे हैं इन तसवीरों के साथ!

तसवीरें वापस रखकर बैठने ही लगती है कि नजर झूलते पाजामे पर जा पड़ती है।

(उस तरफ जाती) बड़े साहब वहां अपनी कारगुजारी कर गए हैं। पजामे को मरे जानवर की तरह उठाकर देखती है और कोने में फेंकने को होकर फिर एक झटके के साथ उसे तहाने लगती है। दिन-भर घर पर रहकर आदमी और कुछ नहीं, तो अपने कपड़े तो ठिकाने से रख ही सकता है।

पाजामा कबर्ड में रखने से पहले डाइनिंग टेबल पर पड़े चाय के सामान को देखकर और खीझ जाती है, पाजामें को कुरसी पर पटक देती और प्यालियां बगैरह ट्रेमें रखने लगती है। इतना तक नहीं कि चाय पी है, तो बरतन रसोईघर में छोड़ आएं। मैं ही आकर उठाऊं...।

ट्रेउठाकर अहाते के दरवाजे की तरफ बढ़ती ही है कि पुरूष एक उधर से आत जाता है। स्त्री ठिठककर सीधे उसकी आंखों में देखती है, पर वह उसमे आंखें बचाता वास से निकलकर थोड़ा आगे आ जाता है।

पुरूष एकः आ गई दफ्तर से? लगता है आज बस जल्दी मिल गई।

स्त्री (ट्रे वापस मेज पर रखती) यह अच्छा है कि दफ्तर से आओ, तो कोई घर पर दिखे ही नहीं। कहां चले गए थे तुम?

पुरूष एक: कहीं नहीं। यहीं बाहर था- मार्केट में।

स्त्री: (उसका पाजामा हाथ में लेकर) पता नहीं यह क्या तरीका है इस घर का? रोज आने पर पचास चीजें यहां-वहां बिखरी मिलती हैं।

पुरूष एकः (हाथ जोड़कर) लाओ, मुझे दे दो।

स्त्री: (पाजामे को झाड़कर फिर से तहाती हुई) अब क्यो दे दूं! पहले खुद भी तो देख सकते थे।

गुस्से से कबर्ड खोलकर पाजामे कोजैसे उसमें कैद कर देती है। पुरूष एक फालतू-सा-इधर-उधर देखता है, फिर एक कुरसी की पीठ पर हाथ रख लेता है।

: (कबर्ड के पास से आकर ट्रे उठाती) चाय किस-किस ने पी थी?

पुरूष एक: (अपराधी स्वर में) अकेले मैंने।

स्त्री: तो अकेले के लिए क्या जरूरी थी कि पूरी ट्रे की ट्रे ...किन्नी को देध दे दिया था?

पुरूष एक: वह मुझे दिखी नहीं अब तक।

स्त्रीः (ट्रे लेकर चलती) दिखे तब न जो घर पर रहे कोई।

अहाते के दरवाजे से हाकर पीछे रसोईघर में चली जाती है। पुरूष एक एक लंबी 'हूं' के साथ कुरसी को झुलाने लगता है। स्त्री पल्ले से हाथ पोंछती रसोईघर से वापस आती है।

पुरूष: मैं बस थोड़ी देर के लिए ही निकला था बाहर।

स्त्री: (और चीजों को समेटने में व्यस्त) मुझे क्या पता कितनी देर के लिए निकले थे। वह आज फिर आएगा अभी थोड़ी देर में। तब तो घर पर रहोगे तुम?

पुरूष: (हाथ रोककर) कौन आएगा? सिंघानिया?

स्त्री: उसे किसी के यहां खाना आना है इधर। पांच मिनट के लिए यहां भी आएगा।

पुरूष तक फिर उसी तरह 'हूं' के साथ कुरसी को झुलाने लगता है।

: मुझे यह आदत अच्दी नहीं लगती तुम्हारी। कितनी बार कह चुकी हूं।

पुरूष एक कुरसी से हाथ हटा लेता है।

पुरूष एक: तुम्हीं ने कहा होगा उससे आने के लिए?

स्त्रीः कहना फर्ज नहीं बनता मेरा? आखिर मेरा बॉस है।

पुरूष एकः बॉस का मतलब यह थोड़ी ही है न कि....?

स्त्री: तु ज्यादा जानते हो? काम तो मैं ही करती हूं उसके मातहत।

पुरूष एक फिर से कुरसी को झुलाने को हाकर एकाएक हाथ हटा लेता है।

पुरूष एकः किस वक्त आएगा?

स्त्री: पता नहीं। जब भी गुजरेगा इधर से।

पुरूष एक: (छिले हुए स्वर में) यह अच्छा है।

स्त्री: लोगों को तो ईर्ष्या है मुझसे, कि दो बार मेरे यहां आ चुका है। आज तीसरी बार आएगा।

कैंची, मैगजीन औश्र तसवीरें समेटकर पढ़ने की मेज की दराज में रख देती है। किताबें बैग में बंद करके उसे एक तरफ सीधा खड़ा कर देती है।

पुरूष एकः तो लोगों को भी पता है, वह आता है यहां?

स्त्री: (एक तीखी नजर उस पर डालकर) क्यों, बुरी बात है?

पुरूष एक: मैंने कहा है, बुरी बता है! मैं तो बल्कि कहता हूं, अच्छी बात है।

स्त्री: तुम जो कहते हो, उसका सब मतलब समझ में आता है मेरी।

पुरूष एक: तो अच्छा यही है कि मैं कुछ न कहकर चुप राह करूं। अगर चुप रहता हूं, तो..

स्त्री: तुम चुप रहते हो! और न कोई!

अपनी चीजे कुरसी से उठाकर उन्हें यथा-स्थान रखने लगती है।

पुरूष एक: पहले जब-जब आया है वह, मैंने कुछ कहा है तुमसे?

स्त्री: अपनी शरम के मारे! कि दोनों बार तुम घर पर नहीं रहे।

पुरूष एक: उसमें क्या है? आदमी को काम नहीं हो सकता बाहर?

स्त्री: (व्यस्त) वह तो आज भी हो जाएगा तुम्हें।

पुरूष एक: (ओछा पड़कर) जाना तो है आज भी मुझे..... पर तुम जरूरी समझो मेरा यहां रहना, तो...।

स्त्री: मेरे लिए रूकने की जरूरत नहीं। (यह देखती कि कमरे में और कुछ तो करने को शेष नहीं) तुम्हें और प्याली चाहिए चाय की? मैं बना रही हूं अपने लिए।

पुरूष एक: बना रही हो, तो बना लेना एक मेरे लिए भी।

(स्त्री अहाते के दरवाजे की तरफ जाने लगती है)

सुनो !

स्त्री रूककर उसकी तरफ देखती है।

उसका क्या हुआ.... वह जो हड़ताल होने वाली थी तुम्हारे दफ्तर में?

स्त्री: जब होगी, पता चल ही जाएगा तुम्हें।

पुरूष एक: पर होगी भी?

स्त्री: तुम उसी के इंतजार में हो क्या?

चली जाती है। पुरूष एक सिर हिलाकर इधर-इधर देखता है कि अब वह अपने को कैसे व्यस्त रख सकता है। फिर जैसे याद हो आने से शाम का अखबार जेब से निकालकर खोल लेता है। हर सुर्खी पढ़ने के साथ उसके चेहरे का भाव और तरह का हो जाता है- उत्साहपूण्र, व्यंग्यपूर्ण, तनाव-भरा या पस्त साथ मुंह से 'बहुत अच्छे!' 'मार दिया' 'लो' और 'अब?' जैसे शब्द निकल पड़ते हैं। स्त्री रसोईघर से लौटकर आती है।

पुरूष एक: (अखबार हटाकर स्त्री को देखता) हड़तालें तो आजकल सभी जगह हो रही हैं। इसमें देखो...

स्त्री: (उस ओर से विरक्त) तुम्हें सचमुच कहीं जाना है क्या? कहां जाने की बात कर रहे थे तुम?

पुरूष एक: सोच रहा था, जुनेजा के यहां हो आता।

स्त्री: ओऽऽ? जुनेजा के यहां! ...हो जाओ।

पुरूष एक: फिलहाल उसे देने के लिए पैसा नहीं है, जो कम-से -कम मुंह तो उसे दिखाते रहना चाहिए।

स्त्री: हांऽऽ, दिखा आओ मुंह जाकर।

पुरूष एक: वह छह महीने बाहर रहकर आया है। हो सकता है, कोई नया कारबार चलाने की सोच रहा हो जिसमें मेरे लिए....।

स्त्री: तुम्हारे लिए तो पता नहीं क्या-क्या करेगा वह जिंदगी में! पहले ही कुछ कम नहीं किया है।

झाड़न लेकर कुर्सियों वगैरह का झाड़ना शुरू कर देती है।

इतनी गर्द भरी रहती है हर वक्त इस घर में! पता नहीं कहां से चली आती है!

पुरूष एक: तुम नाहक कोसती रहती हो उस आदमी को। उसने तो अपनी तरफ से हमेशा मेरी मदद ही की है।

स्त्रीः न करता मदद, तो उतना नुकसान तो न होता जितना उसके मदद करने से हुआ है।

पुरूष एक: (कुढ़कर सोफे पर बैठता) तो नहीं जाता मैं! अपने अकेले के लिए जान है मुझे! अब तक तकदीर ने साथ नहीं दिया, तो इसका यह मतलब तो नहीं कि....।

स्त्री: यहां से उठ जाओ। मुझे झाड़ लेने दो जरा।

पुरूष एक उठकर फिर से बैठने की प्रतीक्षा में खड़ा रहाता है।

उस कुरसी पर चले जाओ, वह साफ हो गई है।

पुरूष एक गाली देती नजर से उसे देखकर उसी कुरसी पर जा बैठता हे।

(बड़बड़ती) पहली बार प्रेस में जो हुआ सो हुआ। दूसरी बार फिर क्या हो गया? वही पैसा जुनेजा ने लगाया, वही तुमने लगाया। एक ही फैक्टरी लगी, एक ही जगह जमा-खर्च। फिर भी तकदीर ने उसका साथ दे दियाप, तम्हारा नहीं दिया।

पुरूष एक: (गुस्से से उठता) तुम तो ऐसी बात करती हो जैसे...।

स्त्री: खड़े क्योंहो गए?

पुरूष एक: क्यों, मैं खड़ा नहीं हो सकता?

स्त्री: (हलका वकफा लेकर तिरस्कारपूर्ण स्वर में) हो तो सकते हो, पर घर के अन्दर ही।

पुरूष एक: (किसी तरह गुसा निगलता) मेरी जगह तु हिस्सेदार होतीं न फैक्टरी की, तो तुम्हें पता नहीं चल जाता किक...।

स्त्री: पता तो मुझे अब भी चल रहा है। नहीं चल रहा?

पुरूषः (बडबड़ाता) उन दिनों पैसा लिया कितना था फैक्टरी से! जो कुछ लगाया था, वह सारा तो शुरू में ही निकाल-निकालकर खा लिया और....।

स्त्री: किसने खा लिया? मैंने?

पुरूष एक: नहीं, मैंने! पता है कितना खर्च था उन दिनों इस घर का? चार सौ रूपए महीने का मकान था। टैक्सियों में आना-जाना होता था। किस्तों पर फ्रिज खरीदा गया था। लड़के-लड़की की कान्वेंट की फीसें जाती थीं....।

स्त्री: शराब आती थी। दावमें उड़ती थीं। उन सब पर पैसा तो खर्च होता ही था।

पुरूष एक: तुम लड़ना चाहती हो?

स्त्री: तुम लड़ सकेत हो एक वक्त, ताकि उसी बहाने चले जाओ घर से । वह आदमी आएगा, तो जाने क्या सोचेगा कि क्यों हर बार इसके आदमी को काई-न -कोई काम हो जाता है बाहर। शायद समझे कि मैं हो जान-बूझकर भेज देती हूँ।

पुरूष एक: वह तुझसे तय करके तो आता नहीं कि मैं उसके लिए मौजूद रहा करूं घर पर।

स्त्री: कह दूंगी, आगे से तय करके आया करो तुम। तुम इतने बिजी आमदी जो हो। पता नहीं कब किस बोर्ड की मीटिंग में जाना पड़ जाए।

पुरूष: (कुछ धीमा पड़कर पराजित भाव से) तुम तो बस..... आमादा की रहती हो हर वक्त।

स्त्री: अब जुनेजा आ गया है न लौटकर, तो रहा करना फिर तीन-तीन दिन घर से गायब।

पुरूष: (पूरी शक्ति समेटकर सामना करता) तुम फिर से वही बात उठाना चाहती हो? अगर रहा भी हूं कभी मैं तीन दिन घर से बाहर, तो आखिर किस वजह से?

स्त्रीः वजह का पता तुम्हें होगया या तुम्हारे लड़के को। वही भी तीन-तीन दिन दिखाइ्र नहीं देता घर पर।

पुरूष: तुम मेरा मुकाबला उससे करती हो?

स्त्री: नहीं, उसका मुकाबला तुमसे करती हूं। जिस तरह तुमने ख्वार की अपनी जिंदगी, उसी तरह वह भी....।

पुरूष: और लड़की तुम्हारी? उसने अपनी जिंदगी ख्वार करने की सीख किससे ली है? (अपने जाने भरी पड़ता) मैंने तो कभी किसी के साथ घर से भागने की बात नहीं सोची थी।

स्त्रीः (एकटक उसकी आंखों में देखती) तुक कहना क्या चाहते हो?

पुरूषः कहना क्या है..... जाकर चाय बना लो, पानी हो गया होग।

सोफे पर बैठकर अखबार खोल लेता है, पर ध्यान पढ़ने में लगा नहीं पाता।

स़्त्रीः मुझे भी पता है, पानी हो गया होगा। मैं जब किसी को बुलाती हूं यहां, मुझे पता होता है तुम यही सब बाते कारोगे।

पुरूष एक: (जैसे अखबार में कुछ पढ़ता हुआ) हूं-हूं-हूं-हूं-हूं।

स़्त्रीः वैसे हार बार कहोगे कि लड़के की नौकरी के लिए किसी से बात क्यों नही करतीं। और जब मैं मौका निकालती हूं उसके लिए, तो...।

पुरूष एकः हांऽऽ, सिंघानिया तो लगवा ही देगा जरूर। इसीलिए बेचारा आता है यहां चलकर।

स्त्री: शुक्र नहीं मानते कि एक इतना बड़ा आदमी, सिर्फ एक बार कहने-भर से।

पुरूष एकः मैं नहीं शुक्र मानता? जब-जब किसी जए आदमी का आना-जाना शुरू होता है यहं, मैं हमेशा शुक्र मनाता हूं। पहले जगमोहन आया करता था। फिर मनोज आने लगा था...।

स्त्रीः (स्थिर दृष्टि से उसे देखती) और क्या-'क्या बात रह गई है कहने को बाकी? वह भी कह डालो जल्दी से।

पुरूष एकः क्यों... जगमोहन का नाम मेरी जबान पर आया नहीं कि तुम्हारे हवास गम होने शुरू हुए?

स्त्रीः (गहरी वितृष्णा के साथ) जितने नाशुक्रे आदमी तुम हो, उससे तो मन करता है कि आज ही मैं...।

कहती हुई अहाते के दरवाजे की तरफ मुड़ती ही है कि बाहर से बड़ी लड़की की आवाज सुनाई देती है।

बड़ी लड़की:ममा!

स्त्री रूककर उस तरफ देखती है। चेहरा कुछ फीका पड़ जाता है।

स्त्री: बीना आई है बाहर।

पुरूष एक न चाहते मन से अखबार लपेटकर उठ खड़ा होता है।

पुरूष एक: फिर उसी तरह आई होगी।

स्त्री: जाकर देख लोगे, क्या चाहिऐ उसे?

बड़ी लड़की की आवाज फिर सुनाई देती है?

पुरूष एकः ममा, टूटे पचास पैसे देना जरा।

पुरूष एक किसी अनचाही स्थिति का सामना करने की तरह बाहर के दरवाजे की तरफ बढ़ता है।

स्त्री: पचास पैसे हैं न तुम्हारी जेब मैं? होंगे तो सही, दूध के पैसों में से बचे हुए।

पुरूष एक: मैंने सिर्फ पांच पैसे खर्च किए हैं अपने पर-इस अखबार के।

बाहर निकल जाता है। स्त्री पल-भर उधर देखती रहकर अहाते के दरवाजे से रसोई-घर में चली जाती है। बड़ी लड़की बाहर से आती है। पुरूष एक उसके पीछे-पीछे आकर इस तरह कमरे में नजर दौड़ता है जैसे स्त्री के उस समय कमरे में न होने से वह अपने गलत जगह पर अकेला पा रहा है।

पुरूष एकः (अपने अटपटेपन को ढंक पाने में असमर्थ, बड़ी लड़की से) बैठ तू।

स्त्री: ममा कहां है।

पुरूष एक: उधर होगी रसोईघर में।

बड़ी लड़की: (पुकारकर) ममा!

स्त्री दोनो हाथों में चाय की प्यालियां लिए अहाते के दरवाजे से आती है।

स्त्रीः क्या हाल है तेरे?

बड़ी लड़की: ठीक है।

पुरूष एक स्त्री को हाथों के इशारे से बतलाने की कोशिश करता है कि वह अपने साथ सामान कुछ भी नहीं लाई।

स्त्री: चाय लेगी?

बड़ी लड़की: अभी नहीं। पहले हाथ-मुंह धो लूं गुसलखाने में जाकर। सारा जिस्म इस तरह चिपपिपा रहा है कि बस...।

स्त्री: तेरी आंखें ऐसी क्यों हो रही हैं?

बड़ी लड़की: कैसी हो रही हैं?

स्त्रीः पता नहीं कैसी हो रही हैं।

बड़ी लड़की: तुम्हें ऐसे ही लग रहा है। मैं अभी आजी हूं हाथ-मुंह धोकर।

आहाते के दरवाजे से चली जाती है। पुरूष एक अर्थपूर्ण दृष्टि से स्त्री को देखता उसके पास जाता है।

पुरूष एक: मुझे तो यह उसी तरह आई लगती है।

स्त्री चाय की प्याली उसकी तरफ बढा़ देती है।

स़्त्री: चाय ले लो।

पुरूष एक: (चाय लेकर) इस बार कुछ सामान भी नहीं है साथ में।

स्त्री: हो सकता है, थोड़ी देर के लिए आई हो।

पुरूष एक: पर्स में सिर्फ एक ही रूपया था। स्कूटर-रिक्शा का पूरा किराया भी नहीं।

स्त्री: क्या पता कहीं और से आ रही हो?

पुरूष एकः तुम हमेशा बात को ढंकने की कोशिश क्यों करती हो? एक बार इससे पूछती क्यों नहीं खुलकर?

स्त्रीः क्या पूछूं?

पुरूष एक: यह मैं बताऊंगा तुम्हें?

स्त्री चाय के घूँट भरती एक कुरसी पर बैठ जाती है।

(पल-भर उस की प्रतीक्षा करने के बाद) मेरी उस आदमी के बारे में कभी अच्छी राय नहीं थी। तुम्हीं ने हवा बांध रखा थी कि मनोज यह है, वह है- जाने क्या है! तुम्हारी शह से उसका घर में आना-जाना न होता, तो क्या यह नौबत आती कि लड़की उसके साथ जाकर बाद में इस तरह?

स्त्री: (तंग पड़कर) तो तुम खुद ही क्यों नहीं पूछ लेते उससे जो पूछना चाहते हो?

पुरूष एक: मैं कैसे पूछ सकता हूं?

स्त्री: क्यों नहीं पूछ सकते?

पुरूष एक: मेरा पूछना इसलिए गलत है कि...।

स्त्री: तुम्हारा कुछ भी करना किसी-न-किसी वजह से गलत होता है। मुझे पता नहीं है?

बड़े-बड़े घूँट भरकर चाय प्याली खाली कर देती है।

पुरूष एक: तुम्हें सब पता है! अगर सक कुछ मेरे करने से होता इस घर में'.....।

स्त्री: (उठती हुई) तो पता नहीं और क्या बरबादी हुई होती! जो दो रोटी आज मिल जाती हैं मेरी नौकरी से , वह भी न मिल पातीं। लड़की भी घर में रहकर ही बुढ़ा जाती, पर यह न सोचा होता किसी न कि....।

पुरूष एक: (अहाते के दरवाजे की तरफ संकेत करके) वह आ रही है।

जल्दी-जल्दी अपनी प्याली खाली करके स्त्री को दे देता है। बड़ी-लड़की पहले से काफी संभली हुई वास आती है।

बड़ी लडकीः (आती हुई) ठंडे पानी के छींटें मुंह पर मारे, तो कुछ होश आया। आजकल के दिनों में तो बस..... (उन दोनों को स्थिर दृष्टि से अपनी ओर देखते पाकर) क्या बात है, ममा? आप लोग इस तरह क्या देख रहे हैं मुझे?

स्त्री: मैं प्यालियां रखकर आ रही हूं अंदर से।

अहाते के दरवाजे से चली जाती है। पुरूष एक भी आंखें हटाकर व्यस्त होने का बहाना खोजता है।

बड़ी लड़की: क्या बात है, डेडी?

पुरूष एक: बात?..... बात कुछ भी नहीं।

बडी लड़की: (कमजोर पड़ती) है तो सही कुछ-न-कुछ बात।

पुरूष एक: ऐसे ही तेरी ममा अभी कुछ कह रही थी...।

बडी लड़की: क्या कह रही थी?

पुरूष एक: मतलब वह नहीं, मैं कह रहा था उससे...।

बड़ी लड़कीः क्या कह रहे थे?

पुरूष एक: तेरे बारे में बात कर रहा था।

बड़ी लड़की: क्या बात कर रहे थे?

स्त्री लौटकर आ जाती है।

पुरूष एक: वह आ गई है, खुद ही बता देगी तुझे।

जैसे अपने को स्थिति से बाहर रखने के लिए थोड़ा परे चला जाता है।

बड़ी लड़की: (स्त्री से) डैडी मेरे बारे में क्या बात कर रहे थे, ममा?

स्त्री: उन्हीं से क्यों नहीं पूछती ?

बड़ी लड़की: वे कहते हैं तुम बतलाओगी और तुम कहती हो उन्हीं से क्यों नहीं पूछती!

स्त्री: तेरे डैडी तुझसे यह जानना चाहते हैं कि...।

पुरूष एक: (बीच में ही) अगर तुम अपनी तरफ से नहीं जानना चाहतीं, तो रहने दो बात को।

बडी लड़की: पर बात ऐसी है क्या जानने की?

स्त्री: बात सिर्फ इतनी हे कि जिस तरह से तू आजकल आती है वहां से, एससे इन्हे कहीं लगता है कि...।

पुरूष एक: तुम्हें जैसे नहीं लगता!

बड़ी लड़की: (जैसे कठघरे में खड़ी) क्या लगता है?

स्त्री: कि कुछ है जो तू अपने मन में छिपाए रखती है, हमें नहीं बतलाती।

बड़ी लड़की: मेरी किस बात से लगता है ऐसा?

स्त्री: (पुरूष एक से) अब कहो न इसके सामने वह सब जो मुझसे कह रहे थे।

पुरूष एक: तुमने शुरू की है बात, तुम्हीं पूरी कर डालो अब।

स्त्री: (बड़ी लड़की से) मैं तुझसे एक सीधा सवाल पूछ सकती हूं?

बड़ी लड़की: जरूर पूछ सकती हो।

स्त्रीः तू खुश है वहां पर ?

बड़ी लड़की: (बचते स्वर) हांऽऽ, बहुत खुश हूं।

स्त्री: सचमुच खुश है?

बड़ी लड़की: और क्या ऐसे ही कह रही हूं?

पुरूष एक: (बिलकुल दूसरी तरफ मुंह किए) यह तो कोई जवाब नहीं है।

बड़ी लड़की: (तुनककर) तो जवाब क्या तभी होता अगर मैं कहती कि मैं खुश नहीं हूं, बहुत दुखी हूं?

पुरूष एक: आदमी जो जवाब दे, वह उसके चेहरे से भी झलकना चाहिए।

बड़ी लड़की: मेरे चेहरे से क्या झलकता हे कि मुझे तपेदिक हो गया है? मैं घुल-घुलकर मरी जा रही हूं?

परूष एक: एक तपेदिक ही होता है बस आदमी को?

बड़ी लड़की: तो और क्या-क्या होता है? आंख से दिखाई देना बंद हो जाता है? नाक-कान तिरछे हो जाते है? होंठ झड़कर गिर जाते हैं? मेरे चेहरे से ऐसा क्य नजर आता है आपको?

पुरूष एक: (कुढ़कर लौटता) तेरी मां ने तुझसे पूछा है, तू उसी से बात कर। मैं इस मारे कभी पड़ता ही नहीं इन चीजो में।

सोफे पर जाकर अखबार खोल लेता है। पर पल-भर ध्यान हो आने से कि वह उसने उलटा पकड़ रखा है, उसे सीधा कर लेता है।

स्त्री: (बड़ी लड़की) अच्छा, छोड़ अब इस बात को। आगे से यह सवाल मैं नहीं पूछूंगी तुझसे।

बड़ी लड़की की आंखे छलछला आती है।

बड़ी लड़की: पूछने में रखा भी क्या है, ममा! जिंदगी किसी तरह कटती ही चलती है हर आदमी की।

पुरूष एक: (अखबार का पन्ना उलटता) यह हुआ कुछ जवाब!

स्त्री: (पुरूष एक से) तुम चुप नहीं रह सकते थोड़ी देर?

पुरूष एक: मैं क्या कह रहा हूं? चुप ही बैठा हूं यहां। (अखबार में पढ़ता) नाले का बांध पूरा करने के लिए बारह साल के लड़के की बलि। (अखबार से बाहर) आप चाहे जो कह लें, मेरे मुंह से एक लफ्ज भी न निकले। (फिर अखबार में से) उदयपुर में मड़ढा गांव में बांध के ठेकेदार का अमानुषिक कृत्य। (अखबार से बाहर) हद होती है हर चीज की।

स्त्री बड़ी लड़की के कंधे पर हाथ रखे उसे पढ़ने की मेज के पास ले जाती है।

स्त्री: यहां बैठ।

बड़ी लड़की पलकें झपकती वहां कुरसी पर बैठ जाती है।

सच-सच बता, तुझे वहां किसी चीज की शिकायत है।

बड़ी लड़की: शिकायत किसी चीज की नहीं....।

स्त्री: तो?

बड़ी लड़की: और हर चीज की है।

स्त्री: फिर भी कोई खास बात?

बड़ी लड़की: खास बात कोई भी नही...।

स्त्री: तो?

बड़ी लड़की: .....और सभी बातें खास हैं।

स्त्री: जैसे?

बड़ी लड़की: जैसे... सभी बातें।

स्त्री: तो मेरा मतलब है कि.....?

बड़ी लड़की: मेरा मतलब है... कि शादी से पहले मुझे लगता था कि मनोज को बहुत अच्छी तरह जानती हूं। पर अब आकर.... अब आकर लगने लगा है कि वह जानना बिलकुल जानना नहीं था।

स्त्री: (बात की गहराई तक जाने की तरह) हूं!....तो क्या उसके चरित्र में कुछ ऐसा है जो....?

बड़ी लड़की: नहीं। उसके चरित्र में ऐसा कुछ नहीं हे। इस लिहाज से बहुत साफ आदमी है वह।

स्त्री: तो फिर क्या उसके स्वभाव में कोई ऐसी बात है जिससे...?

बड़ी लड़की: नहीं। स्वभाव उसका हर आदमी जैसा है। बल्कि आम आदमी से ज्यादा खुशदिल कहना चाहिए उसे।

स्त्री: (और भी गहराई में जाकर कारण खोजती) तो फिर?

बडी लड़की: यही तो मैं भी नहीं समझ पाती। पता नहीं, कहां पर क्या है जो गलत है!

स़्त्री: उसकी आर्थिक स्थिति ठीक है?

बड़ी लड़की: ठीक है?

स्त्री: सेहत ?

बड़ी लड़की: बहुत अच्छी हैं

पुरूष एक: (बिना उधर देखे) सब -कुछ अच्दा ही अच्छा है फिर तो। शिकायत किस बात की है?

स्त्री: (पुरूष एक से) तुम बात को समझपने भी दोगे? (बडी लड़की से) जब इनमें से किसी चीज की शिकायत नहीं है तुझे, तब या तो कोई बहुत ही खास वजह होनी चाहिए या
।

बड़ी लड़की: या?

स्त्री: या...या... मैं अभी नहीं कह सकती ।

बड लड़की: वजही सिर्फ वह हवा है जो हम दोनों के बीच से गुजरती है।

पुरूष एक: (उस ओर देखकर) क्या कहा.... हवा?

बड़ी लड़की: हां, हवा।

पुरूष एक: (निराश भाव से सिर हिलाकर मुंह फिर दूसरी तरफ करता) यह वजह बताई है इसने ...हवा!

स्त्री: (बड़ी लड़की के चेहरे को आंखों से टटोलती) मैं तेरा मतलब नहीं समझी।

बड़ी लड़की: (उठती हुई) मैं शायद समझा नहीं सकती (अस्थिर भाव से कुछ कदम चलती) किसी दूसरे को तो क्या अपने को भी नहीं समझा सकती। (सहसा रूककर) ममा, ऐसा भी होता है क्या कि...?

स्त्रीः कि.?

बड़ी लड़की: कि दो आदमी जितना ज्यादा साथ रहें, एक हवा में सांसा लें, उतना ही ज्याद अपने को एक-दूसरे से अजनबी महसूस करें?

स्त्री: तुम दोनों ऐसा महसूस करते हो?

बड़ी लड़की: कम-से-कम अपने लिए तो मैं कह ही सकती हूं।

स्त्री: (पल-भर उसे देखती रहकर) नू बैठकर क्यों नहीं बात करती?

बड़ी लड़की: मैं ठीक हूं इसी तरह।

स्त्री: तूने जो बात कही है, वह अगर सच है, तो उसके पीछे क्या कोई-न-कोई ऐसी अड़चन नहीं है जो....?

बड़ी लड़की: पर कौन-सी अड़चन? ....उसके हाथ में छलक गई चाय की प्याली, या उसके दफ्तर से लौटने में आधा घंटे की देर-ये छोटी-छोटी बातें अड़चन नहीं होतीं,? मगर अड़चन बन जाती है। एक गुबार-सा है जो हर वक्त मेरे अंदर भरा रहता है और मे। इंतजार में रहती हूं जैसे कि कब कोई बहाना मिले उसे बाहर निकाल लूं। और आखिर....

स्त्री चुपचाप आगे सुनने की प्रतीक्षा करती है।

आखिर वह सीमा आ जाती है जहां पहुंचकर वह निढाल हो जाता है। ऐसे में वह एक ही बात कहता है।

स्त्री: क्या?

बड़ी लड़की: कि मैं इस घर से ही अपने अंदर कुछ ऐसी चीज लेकर गई हूं जो किसी भी स्थिति में मुझे स्वाभाविक नहीं रहने देती।

स्त्री: (जैसे किसी ने उसे तमाचा मार दिया हो) क्या चीज?

बड़ी लड़की: मैं पूछती हूं क्या चीज, जो उसका एक ही जवाब होता है।

स्त्री: वह क्या?

बड़ी लड़की: कि इसका पता मुझे अपने अंदर से, या इस घर के अंदर से चल सकता है। वह कुछ नहीं बता सकता।

पुरूष एक: (फिर उस तरफ मुड़कर) यह सब कहता है वह? और क्या-क्या कहता है?

स्त्री: वह इस वक्त तुमसे बात नहीं कर रही।

पुरूष एक: पर बात तो मेरे ही घर की हो रही है।

स्त्री: तुम्हारा घर! हंह!

पुरूष एक: तो मेरा घर नहीं है यह? कह दो, नहीं है!

स्त्रीः सचमुच तुम अपना घर समझते इसे, तो...।

पुरूष एक: कह दो, कह दो, जो कहना चाहती हो।

स्त्री: दस साल पहले कहना चाहिए था मुझे.... जो कहला चाहती हूं।

पुरूष एक: कह दो अब भी... इससे पहले कि दस साल ग्यारह साल हो जाएं।

स्त्री: नहीं होने पाएंगे ग्यारह साल.... इसी तरह चलता रहा सब-कुछ तो!

पुरूष एकः (एकटक उसे देखता, काट के साथ) नहीं होने पाएंगे सचमुच?..... काफी अच्छा आदमी है जगमोहन! और फिर से दिल्ली में उसका ट्रांसफर भी हो गया है। मिला था उस दिन कनॉट प्लेस में। कह रहा था, आएगा किसी दिन मिलने।

बड़ी लड़की: (धीरज खाकर) डैडी!

पुरूष एक: ऐसी क्या बात कही है मैंने? तारीफ ही की है उस आदमी की।

स्त्री: खूब करो तारीफ.... और भी जिस-जिस की हो कसे तुमसे। (बड़ी लड़की से) मनोज आज जो तुझसे कहता है यह सब, पहले जब खुद यहां आता रहा है, रात-दिन यहां रहता रहा है, तब क्या उसे नहीं पता चला कि...?

बड़ी लड़की: यह मैं उससे नहीं पूछती।

स्त्री: पर क्यों नही पूछती?

बड़ी लड़की: क्योंकि मुझे नहीं लगता है कि.... कैसे बताऊं, क्या लगता है? वह जितने विश्वास के साथ यह बात कहता है, उससे'... उससे मुझे अपने से एक अजब-सी चिढ़ होने लगती है। मन करता है... मन करता है, आसपास की हर चीज को तोड़'-फोड़ डालूं। कुछ ऐसा कर डालूं जिससे...।

स्त्री: जिससे?

बड़ी लड़की: जिससे उसके मन को कड़ी-से-कड़ी चोट पहुंचा सकूं। उसे मेरे लंबें बाल अच्छे लगते हैं। इसलिए सोचती हूं, इन्हें जाकर कटा आऊं। वह मेरे नौकरी करने के हम में नहीं है। इसलिए चाहती हूं कहीं भी कोई भी छोटी-मोटी नौकरी ढूंढकर कर लूँ। कुछ भी ऐसी बात जिससे एक बार तो वह अंदर से तिलमिला उठे। पर कर मैं कुछ भी नहीं पाती और जब नहीं कर पाती, तो खीझकर...।

स्त्री: यहां चली आती है?

बड़ी लड़की पल-भर चुप रहकर सिर हिला देती है।

बड़ी लड़की: नहीं।

स्त्री: तो?

बड़ी लड़की: कई-कई दिनों के लिए अपने को उससे काट लेती हूं। पर धीरे-धीरे हर चीज फिर उसी ढर्रे पर लौट आती है। सब-कुछ फिर उसी तरह होने लगता है जब तक कि हम.... जब तक कि हम नए सिर से उसी खाहे में नहीं पहुच जाते। मैं यहां आती हूं...यहां आती हूं तो सिर्फ इसीलिए कि...।

स्त्री: तेरा अपना घर है यह।

बड़ी लड़की: मेरा अपना घर ! ..... हां । और मैं आती हूं कि एक बार फिर खोजने की कोशिश कर देखूं कि क्या चीज है वह इस घर में जिसे लेकर बार-बार मुझे हीन किया जाता है!

(लगभग टूटते स्वर में) तुम बजता सकती हो ममा, कि क्या चीज है वह? और कहां है वह? इस घर की खिड़कियों दरवाजों में? छत में? दीवरों में? तुम में? डैडी में? किन्नी में? अशोक में? कहां छिपी है वह मनहूस चीज जो वह कहता है मैं इस घर से अपने अंदर लेकर गई हूं? (स्त्री की दोनों बाहें हाथों में लेकर) बताओ ममा, क्या हे वह चीज? कहां पर है वह इस घर में?

काफी लंबा वक्त । कुछ देर बड़ी लड़की के हाथ स्त्री की बांहों पर रूके रहते हैं और दोनों की आंखें लीन रहती हैं। धीरे-धीरे पुरूष एक की गरदन उनकी तरफ मुड़ती है। तभी स्त्री आहिस्ता से बड़ी लड़की के हाथ अपनी बांहों से हटा देती है। उसकी आंखें पुरूष एक से लिती हैं और वह जेसे उससे कुछ कहने के लिए कुछ कदम उसकी तरफ बढ़ाती है। बड़ी लड़की जैसे अब भी अपने सवाल का जवाब चाहती, अपनी जगह पर रूकी उन दोनों देख आंखें उधर से हटा लेता है और दो-एक पल असमंजस में रहले के बाद अनजाने में ही अखबार को गोल करके दोनों हाथों से उसकी रस्ससी बटने लगता है। स्त्री आधे रास्ते में ही कुछ कहने का विचार छोड़कर पल-भर अपने को सहेजती है। फिर बड़ी लड़की के पास वापस जाकर हल्के से उसके कंधे की छूती है। बड़ी लड़की पल-भर आंखें मूंदे रहकर अपने आवेग को दबाने का प्रयत्न करती है, फिर स्त्री का हाथ कंधे से हटाकर एक कुरसी का सहारा लिए उस पर बैठ जाती हे। उसकी आंखें फिर एक बार पुरूष एक से मिल जाती है और वह जेसे आंखों से ही उसका तिरस्कार कर अपने को एक मोढें की स्थिति बदलने में व्यस्त कर लेती है। पुरूष एक अपनी जगह से उठ पड़ता है। अखबार की रस्सी अपने हाथों में देखकर कुछ अटपटा महसूस करता है और कुछ देर अनिश्चित खड़ा रहने के बाद फिर से बैठकर उस रस्सी के टुकड़े करने लगता है। तभी छोटी लड़की बाहर के दरवाजे से आती है और उन तीनों को उस तरह देखकर अचानक ठिठक जाती है।

4.4 मोहन राकेश एवं आधे अधूरे परिचय

4.4.1 मोहन राकेशः साहित्यिक परिचय- मोहन राकेश हिंदी साहित्य के अत्यंत प्रतिष्ठित रचनाकार हैं। 'नई कहानी' के प्रवर्त्तकों में उनका नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है। यद्यपि उन्हें सर्वाधिक प्रसिद्धि उनके नाटकों से मिली, पर नाटकों के अलावा साहित्य की अन्य विधाओं (कहानी, उपन्यास, निबंध, संस्मरण, जीवनी, रिपोर्ताज, डायरी आदि) में भी उन्होंने सशक्त उपस्थिति दर्ज कराई। नई कहानी की वृहत्रयी का निर्माण उनके बिना अधूरा है। मोहन राकेश, कमलेश्वर व राजेन्द्र यादव इसके महत्त्वपूर्ण स्तंभ है। 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस', व आधे-अधूरे' जैसे नाटक इनकी शोहरत को बुलंदी तक पहुँचाने का कार्य करते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मोहन राकेश एक बहुमुखी रचनाकार हैं जिन्होंने किसी एक विधा तक अपने को सीमित नहीं रखा।

मोहन राकेश का जन्म 8 जनवरी, 1925 को अमृतसर में एक मध्यवर्गीय परिवार में हुआ। इनका मूल नाम मदनमोहन गुगलानी था। पिता श्री करमचंद गुगलानी पेशे से वकील थे जिनमें साहित्य व संगीत के प्रति गहरा आकर्षण था, जिसका प्रभाव बचपन में ही मोहन राकेश पर भी पड़ा। इनका बचपन अमृतसर में जंडीवाली गली में संयुक्त परिवार में बीता, जहाँ का

माहौल शोर-शराबे में भरा हुआ था। साथ ही घर में होने वाले कलह के चलते वचपन से ही ये अंतर्मुखी प्रकृति के थे। अल्पायु में ही पिता की मृत्यु से इन पर पारिवारिक भरण-पोषण का उत्तरदायित्व भी आ पड़ा। माँ का प्यार इनके जीवन को हर मोड़ पर सहारा देता रहा जो कि अत्यंत सहनशील, निश्छल, सौम्य व स्नेह से युक्त थी। माँ का प्रभाव इन पर इतना गहरा था कि ये आजीवन हर औरत में अपनी माँ के चेहरे की तलाश करते रहे। माँ का विश्वास इनके लिए सबसे बड़ा सम्बल था। माँ ही उनके जीवन में एक ऐसी व्यक्ति थी जिससे वह पूर्णतः संतुष्ट रहे। माँ की मृत्यु (16 अगस्त 1972) के तीन महीने पश्चात् ही मोहन राकेश (3 दिसम्बर 1973) ने भी दुनिया को अलविदा कह दिया। मानों माँ के बिना उनकी जिंदगी का कोई मतलब ही न हो। मोहन राकेश के व्यक्तित्व पर माँ की गहरी छाप थी।

राकेश की आरंभिक शिक्षा अमृतसर के हिन्दू कॉलेज में हुई। आगे चलकर लाहौर के ओरियंटल कॉलेज से उन्होंने 1941 में 16 साल की उम्र में शास्त्री की उपाधि ग्रहण की। इसके बाद अंग्रेजी में बी.ए. व सत्रह साल की उम्र में संस्कृत में एम.ए. की उपाधि प्राप्त की, जिसमें इन्हें स्वर्ण पदक प्राप्त हुआ। भारत विभाजन के बाद जालंधर से इन्होंने हिंदी में एम.ए. किया जिसमें इन्होंने प्रथम स्थान प्राप्त किया। पारिवारिक दुश्चिंताओं के बावजूद इन्होंने शिक्षा से अपना नाता नहीं तोड़ा। जीवनयापन के दौरान इन्होंने 1947 ई॰ में डी.ए.वी. कॉलेज जालन्धर में प्राध्यापक का कार्य किया। यहाँ से त्यागपत्र देने के बाद शिमला में 'विशप काटन स्कूल' में नौकरी की, पर यहाँ भी कुछ वर्ष रहने के उपरांत पुनः डी.ए.वी. कॉलेज, हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पद पर नियुक्त हुए। फिर त्यागपत्र देने के बाद सन् 1962-93 में 'सारिका' पत्रिका के संपादक रहे। 1964 में यहाँ से भी इस्तीफा देने के बाद कुछ समय तक दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य किया। अंत में इन्होंने स्वतंत्र लेखन को चुना। आपने उपरोक्त विवरण के दरम्यान देखा कि मोहन राकेश ताउम्र इधर से उधर भटकते रहे, कहीं भी टिककर नहीं रह पाये। समझौता भाव इनकी प्रकृति के विपरीत था, जो भी व्यवस्था पसंद नहीं आयी, वहाँ से इस्तीफा देकर चल देते थे। त्यागपत्र मानों हमेशा उनकी जेब में रहता हो। वे ताउम्र एक घर की तलाश करते रहे। जहाँ सुकून के पल बिता सकें, उनकी इसी खोज ने उन्हें खानाबदोश की हैसियत में ला खड़ा कर दिया। उनके सम्पूर्ण साहित्य में घर की इस तलाश को देखा जा सकता है।

मित्रों का भरा-पूरा संसार अपने में समेटे मोहन राकेश का रचना संसार भी व्यापक फलक धारण किए हुए है। उन्होंने साहित्य की सभी विधाओं को अपनी कलम से साधा और बाँधा। अनुवाद, संपादन, शोध-कार्य और पत्रकारिता में महत्वपूर्ण योगदान दिया। नाटकों ने इनकी प्रसिद्धि में बेतहाशा वृद्धि की। साथ ही मोहन राकेश नई कहानी आन्दोलन के प्रवर्तकों में से एक थे। इस आन्दोलन ने हिन्दी कहानी को एक नई दिशा प्रदान की। 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस', 'आधे-अधूरे' व 'पैर तले की जमीन' इनके बहुचर्चित नाटक है। 'अंडे के छिलके', 'सिपाही की माँ', 'प्यालियाँ टूटती हैं', 'बहुत बड़ा सवाल', 'शायद', 'रात बीतने तक', 'सुबह से पहले', 'उसकी रोटी', उनकी एकांकियों के नाम है। 'आखिरी चट्टान तक' इनका प्रसिद्ध यात्रा वृत्तांत है। इनके उपन्यास हैं 'अंधेरे बंद कमरे (1961), 'न आने वाला कल

(1968), और अंतराल (1972)। परिवेश (1967), 'बकलम खुद' (1974)। 'मोहन राकेश की साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि' (1975) इनके निबंधों का संग्रह है। डायरी व पत्र लेखन जैसी विधाओं पर भी इन्होंने साधिकार लिखा।

आपने उपरोक्त पंक्तियों में देखा कि मोहन राकेश की प्रसिद्धि का प्रमुख कारण उनके नाटक रहे। फिर भी तथ्य यह है कि वे कथा साहित्य और खासतौर पर नई कहानी के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। राकेश ने अपने लेखन की शुरुआत कहानी लेखन से की, जब सन् 1944 में 19 वर्ष की आयु में इन्होंने अपनी पहली कहानी 'नन्हीं' लिखी, जो मरणोपरांत प्रकाशित हुई। इनकी पहली प्रकाशित कहानी 'भिक्षु' (1946) को माना जता है। इनकी कहानियों का पहला संग्रह सन् 1956 में 'इन्सान के खंडहर' नाम से प्रकाशित हुआ। बहुचर्चित कहानियों में 'मिस पाल', 'आर्द्रा', 'दोराहा', 'छोटी सी चीज', 'धुँधला द्वीप', 'मरुस्थल', 'भूखे', 'फौलाद का आकाश', 'एक ठहरा हुआ चाकू', 'क्वार्टर', 'आदमी और दीवार', 'उर्मिल जीवन', 'सेफ्टी पिन', 'पाँचवे माले का फ्लैट', 'एक और जिंदगी', 'सोया हुआ शहर', 'परामात्मा का कुत्ता', 'फटा हुआ जूता', 'जानवर और जानवर', 'गुंझल', 'मवाली', 'बनिया बनाम इश्क', आदि ध्यातव्य हैं।

4.4.2 आधे अधूरेःपरिचय-

'आधे-अधूरे' आधुनिक हिन्दी साहित्य का प्रमुख नाटक है। इसकी रचना मोहन राकेश जी ने 1969 में की थी। अपने पूर्ण के नाटकों के विपरीत राकेश जी ने इसे आधुनिक जीवन समस्या पर केन्द्रित करके नाटक को लिखा। 'आधे-अधूरे' के केंन्द्र मेंएक परिवार है। और परिवार मात्र एक बहाना है, क्योंकि उस परिवार के बहाने निम्न मध्यमवर्गीय परिवार की जीवन समस्या पर प्रकाश डालना तथा उस पर हमें सोचने के लिए बाध्य करना ही नाटककार का उद्देश्य रहा है।

अभ्यास प्रश्न-

(क)- सही/गलत में जवाब दीजिए।

1. मोहन राकेश मूलतः पंजाब के रहने वाले थे। (सही/गलत)
2. आषाढ़ का एक दिन के रचनाकार जयशंकर प्रसाद है। (सही/गलत)
3. लहरों के राजहंस नाटक के रचनाकार भारतेन्दु हैं। (सही/गलत)
4. मोहन राकेश ने केवल नाटक लिखे हैं। (सही/गलत)
5. आधे आधरे नाटक के रचनाकार मोहन राकेश हैं। (सही/गलत)

(ख)- रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. आधे-अधूरे की स्त्री पात्र का नाम..... है। (बिन्नी/सावित्री/कमना)
2. पुरूष एक का नाम..... है। (महेन्द्रनाथ/ राकेश/जगमोहन)
3. आधे-अधूरे.....जीवन समस्या पर केंद्रित नाटक हैं।(सामंती/ कबीलाई/आधुनिक)
4. बड़ी लड़की का नाम ..... हैं। (निम्मी/बिन्नी/रचना)
5. ..... नाटक की मूल समस्या है। (धनाभाव/अधूरापन/ हिंसा)

4.5 आधे-अधूरेः मूल्यांकन

4.5.1 आधुनिक जीवन के प्रश्न

आधुनिकता ने सामंतवाद से आगे जाकर एक नवीन दृष्टि का प्रतिपादन किया है -जिसे मोटे रूप में आधुनिक जीवन मूल्य कहा गया है। आधुनिक जीवन मूल्य से तात्पर्य ऐसी विचारप्रणाली व जीवन पद्धति से है जो समता, समानता एवं विश्व बंधुत्व की बात करता हो। इस दृष्टि से जहाँ कहीं भी जीवत-पद्धति में असमानताएँ मिलने लगती है। वहाँ आधुनिक जीवन की विसंगति तीव्र गति से हमारे सामने दिखने लगती है। विसंगति, बिडम्बना, अंतर्विरोध, संत्रास जैसे पद आधुनिक जीवन की विसंगति ही है। 'आधे-अधूरे' नाटक आधुनिक जीवन विसंगति को केन्द्र में रख कर लिया गया नाटक है।

'आधे-आधूरे' की कथावस्तु के केन्द्र में नगरी-मध्यमवर्गीय परिवार व उनकी अतृप्त इच्छाएँ हैं। नाटक के केन्द्र मेंएक परिवार है। परिवार का प्रसार क्रमशः मध्यमवर्ग तक सिमट जाता है। मध्यमवर्गीय-पारिवारिक विघटन की सारी समस्याएँ जो 'नई कहानी' के केन्द्र में थीं, वह सब आधे-अधूरे में विस्तार-गहराई व तीव्रता से उठाई गई है। पारिवारिक विघटन नई कहानी के केन्द्र में था, आधे-अधूरे में वह विघटन और जटिल रूप धारण कर चुका है। यहाँ परिवार भी टूट राह है लेकिन साथ भी है। लगाव, प्रतिबद्धताएँ भी नहीं है, लेकिन मजबूरी भी है। यानी सामाजिक जीवन की जटिलता अपने अधूरेपन में व्यंग्यात्मक रूप से व्यक्त हुई है। सभी पात्र आधे-अधूरे हैं। अधूरेपन का एहसास व उसकी नियति आधुनिक जीवन समस्या है। अधूरेपन को व्यक्त करने के लिए नाटककार ने वर्व्य विषय व वात्र चयन सब में प्रयोग किया है। सावित्री अधुरेपन का केन्द्रीय प्रतीक है। नाटक में अधूरेपन को व्यक्त करता संवाद देखिये- ''पुरूष चारः असल बात इतनी ही है कि महेन्द्र की जगह इनमें से कोई भी आदमी होता तुम्हारी जिन्दगी में, तो साल-दो साल बाद, तुम यही महसूस करती कि तुमने गलत आदमी से शादी कर ली है।..... क्योंकि तुम्हारे लिए जीने का मतलब रहा है- कितना कुछ एक साथ होकर कितना-कुछ एक साथ पाकर और कितना- कुछ एक साथ ओढ़कर जीना। वह उतना-कुछ कभी तुम्हें किसी एक जगह न मिल पाता, इसलिए जिस-किसी के साथ भी जिंदगी शुरू करती, तु हमेंशा इतनी ही खाली, इतनी ही वेचैन बनी रहतीं।.....'' कह सकते हैं कि सावित्री का अधूरापन 'प्रक्षेपण' के माध्यम से व्यक्त किया गया है। सभी पात्र आधे- अधूरे हैं। इसलिए वे अपनी पूर्णता को दूसरों में खोजने का प्रयास कर रहा है।

4.5.2 चरित्र और समाज-

किसी भी समाज की गति-परिवर्तन का संकेत उसके चरित्रों के माध्यम से मिलता है। चरित्र निर्माण की रात इसीलिए किसी भी समान में काम्य होती है, क्योंकि उसके बिना न तो समाज ऊपर उठ सकता है और न संस्कृति का संरक्षण ही हो सकता है। दूसरे शब्दों में चरित्र और समाज का संबंध अनिवार्य और परस्पर अन्योन्याश्रित है। इसी समझ के अनुसार साहित्य में चरित्रों की सृष्टि होती रही है। आदर्शवादी युग तक तो 'महनीय चरित्र' ही काम्य रहे लेकिन

आधुनिकता केआगमन के पश्चात यथार्थवादी चरित्रों की सृष्टि पर बल दिया जाने लगा। यर्थाथवादी चरित्र अपने मूल रूप में 'आम आदमी' के करीब के चरित्र होते थे, जो प्रायः मनुष्य की मूल वृत्तियों से संचालित होते थे। क्रमशः इस प्रकार के चित्रण में भी क्रमशः दो वर्ग हो गये। एक प्रकार का चित्रण मनुष्य की संभावना और गतिशीलता को स्वीकार करता था तो दूसरे प्रकार का वर्ग मनुष्य के अवचेतन, मन, अतृप्ति यानी कुल मिलाकर सामाजिक दबाव तले जी रहे मनुष्य और उसकी क्रिया-प्रतिक्रियाओं का ही चित्रण करता था। प्रथम प्रकार के वर्ग को प्रगतिशील या मार्क्सवादी पद्धति कहा गया तो दूसरे प्रकार के वर्ग को अस्तित्ववादी, व्यक्तिवादी या मनोविश्लेषणवादी। समझ की दृष्टि से किया गया विश्लेषण ही इस संदर्भ में हमारी मदद कर सकता है क्योंकि ये वर्गीकरण स्थूल रूप से किए गये हैं। इसके अतिरिक्त भी कई वर्गीकरण रहे हैं और कुछ ऐसे भी रहे हैं जिनमें परस्पर एक-दूसरे का मिश्रण भी हो गया है। नाटकीय चरित्र चित्रण विचारधारात्मक दबाव के बावजूद अपनी नाटकीय शर्तों की पूर्ति क्रम में अलग ही स्वरूप प्राप्त कर लेता है। नाटकीय चरित्र-चित्रण में इसीलिए एक ओर जहाँ पात्र अपने व्यक्तित्व के प्रकटीकरण के लिए विचार का आश्रय लेता है कहीं दूसरी ओर नाटकीय भंगिमाओं का भी.....। आधे-अधूरे नाटक की पात्र संख्या सीमित है। पात्रों में काले सूट वाला व्यक्ति, पुरूष एक, पुरूष दो, पुरूष तीन, पुरूष चार, स्त्री (सावित्री), बड़ी लड़की, छोटी लड़की, लड़का इत्यादि पात्र ही है। इस नाटक का मुख्य पात्र कौन है? नाटक की प्रस्तावना में नाटककार ने लिखा है- ''नापटक अंत तक फिर भी इतना ही अनिश्चित बना रहता और यह निर्णय करना इतना ही कठिन होता है कि इसमें मुख्य भूमिका किसकी थी- मेरी, उस स्त्री की, परिस्थितियों की , या तीनों के बीच से उठते हुए कुछ सवालों की? ''स्पष्ट है यह नाटक परिस्थिति केंन्द्रित है, पात्र केन्द्रित नहीं। पात्र इस नाटक में केंन्द्रित नहीं है, यह नाटककार के पात्र संयोजन से भी स्पष्ट हो जाता है। पुरूष एक (महेन्द्रनाथ), पुरूष दो (सिंघानिया) पुरूष तीन (जुनेजा), पुरूष चार (जगमोहन) के नाम से ही संबोधन है, हय व्यक्तित्वहीनता का चरम है। चरित्रों की प्रधानता की दृष्टि से बात करें तो सावित्री नाटक की प्रधान पात्र गहरती है क्योंकि अन्या सारे पात्र उसी की क्रिया- प्रतिक्रिया में विकसित होते हैं।

4.5.3 संवाद और देशकाल-

4.5.3.1 संवाद

नाटकीय संवादों की सर्वप्रमुख विशेषता यह होती है वह परिस्थितियों के दावपेंच को अभिव्यक्त कर पाने में सक्षम हो। दूसरी विशेषता नाटकीय संवाद की यह होती है कि वह चरित्रों के व्यक्तित्व- प्रकाशन में हमारी मदद कर पा रहा है या नहीं? जैसे महेन्द्रनाथ का संवाद उसके व्यक्तित्व को उजागर करता है। उकसे व्यक्तित्व की दिशाहीनता, ऊलजूलुलपन, निष्क्रिमता और बेबसी को उसके संवादों के माध्यम से व्यक्त किया गया है। जैसे- '' पुरूष एकः (कुढ़कर

लौटता) तेरी मां ने तुझसे पूछा है, तू उसी से बात कर। मैं इस मारे कभी पढ़ता ही नहीं इन चीजों में।

सोफे पर जाकर अखबार खोल लेता है। पर पल-भर ध्यान हो आने से कि वह उसने उलटा पकड़ रखा है, उसे सीधा कर लेता है।''

इसी प्रकार सावित्री या चरित्र उसके संवादों में बखूबी व्यक्त हुआ है। एक उदाहरण देखें-

''स्त्री: (थकान निकालने के स्वर में) ओह होह होह होह होह्! (कुछ हताश भाव से) फिर घ में कोई नहीं। (अन्दर के दरवाजे की तरफ देखकर) किन्नी!..... होगी ही नहीं, जवाब कहाँ से दे? (तिपाई पर पड़े बैग को देखकर) यह हाल है इसका! (बैग की एक किताब उठाकर) फिर फाड़ लाई एक और किताब! जरा शरम नहीं कि रोज- रोज कहाँ से पौसे आ सकते है नई किताबों के लिए! (सोफे के पास आकर) और अशोक बाबू यह कमाई करते रहे हैं दिन-भर!.....

नाटक के संवादों की एक प्रमुख विशेषता उसकी संक्षिप्तता होती है। इस ढंग से नाटक के अधिकांश संवाद छोटे हैं..... छोटे संवादों के कारण नाटक ज्यादा व्यक्तित्व व देशकाल के गठन में सहायक हो सका है।

4.5.3.2 देशकाल-

नाटक के प्रारम्भ में ही देशकाल, परिवेश का संकेत कर दिया गया हे। ''मध्यवर्गीय स्तर से ठहकर निम्न-मध्यवर्गीय स्तर पर आया एक घर।'' इस एक वाक्य से ही कथ्य- परिवार की आर्थिक स्थिति का संकेत कर दिया गया है। नाटक के निम्न- मध्यमवर्गीय स्थिति की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए नाटककार ने लिखा है- ''सब रूपों में इस्तेमाल होने वाला वह कमरा जिसमें उस घर के व्यतीत स्तर के कई टूटते अवशेष- सोफा-सेट, डाइनिंग टेबल, कबर्ड और डेªसिंग टेबल आदि-किसी-न-किसी तरह अपने लिए जगह बनाए हैं। जो कुछ भी है, वह अपनी अपेक्षाओं के अनुसार न होकर कमरे की सीमाओं के अनुसार एक और ही अनुपात से है। एक चीज का दूसरी चीज से रिश्ता तात्कालिक सुबिधा की माँग के कारण लगभग टूट चुका है। फिर भी लगत हे कि वह सुविधा कई तरह की असुविधाओं से समझौता करके की गई है- बल्कि कुछ असुविधाओं में ही सुविधा खेजने की कोशिश की गई है। सामान में कहीं एक तिपाई, कहीं दो-एक मोढे, कहीं फटी- पुरानी किताबों का एक शेल्फ और कहीं पढ़ने की एक मेज-कुरसी भी है। गद्दे, परदे, मेजपोश और पलंगपोश अगर है, तो इस तरह घिसे, फटे या सिले हुए कि समझ में नहीं आता कि उनका न होना क्या होने से बेहतर नहीं था। '' लम्बे उद्धरण को प्रस्तुत करने का कारण यही था की इस बहाने पूरे नाटक की संरचना, व्यंग्य और परिवेश पर प्रकाश पड़ता है और नाटककार ने उसका संकेत पूर्ण में ही कर दिया है। नाटक के बीच-बीच में निम्न मध्यमवर्गीय परिवार की विसंगति और बिडम्बना पर प्रकाश पड़ता रहाता है। कामकाजी स्त्री का परिवार और नौकरी से संबंध, बेरोजगार पुरूष की समस्या, परिवार का विघटन, लड़के की दिशाहीनता और बच्चियों का भटकाव, स्त्री-पुरूष संबंध में तनाव व विखराव, आधे-अधूरे व्यक्तित्व व समाज की समस्या पर प्रकाश डाला गया है। नाटक में विखराव तो दिखाया गया है।

अधूरेपन, टूटन-विखराव को इस युग की नियति के रूप में नाटककार ने अपनी स्वीकारोक्ति दे दी है, लेकिन उसके मूल कारणों की ओर संकेत करके उसने अपने लेखकीय दायित्व का निर्वहन भी कर दिया है।

4.5.4 नाटकीय- रंगमंचीय संदर्भ

'आधे-अधूरे' नाटक अपने कथ्य की नवीनता एवं रंगमंचीय प्रयोग दोनों दृष्टियों से चर्चित व लोकप्रिय हुआ था। हिन्दी नाटकीय परम्परा में एक ही व्यक्ति चार रोल करेगा(फिल्मी पात्रों की तरह), यह परिकल्पना पहली बार मोहन राकेश ने प्रस्तुत की थी। आधे-अधूरे के बाद कुछ प्रयोगशील नाटकारों (सुरेन्द्र वर्मा जैसे) ने इस प्रयोग को बखूबी निभाया। एक ही व्यक्ति कई रोल करेगा, यह तो फिल्मों में भी होता है, लेकिन एक ही व्यक्ति दूसरे के रोल क्यों करेगा? आधे-अधूरे में इस प्रश्न को उठाया गया है। काले सूट वाला आदमी, पुरूष एक पुरूष दो, पुरूष तीन एंव पुरूष चार जैसे निर्देश इसीलिए रखे गये हैं क्योंकि उनके नाम होने से भी कुछ फर्क पड़नेवाला नहीं था। क्योंकि व्यक्तित्व की दृष्टि से उनमें कोई अंन्तर नहीं हैं .....सभी आधे अधूरे हैं।

नाटकार ने प्रारम्भ में ही रंग-निर्देश व नाट्य निर्देश दे दिये हैं। पूरा नाटक एक कमरे को आधार बना करके मंचित हुआ है। इस संदर्भ में आवश्यक निर्देश नाटककार ने नाटक के प्रारम्भ में ही दे दिये हैं। इसी प्रकार बीच-बीच में नाटककार रंगमंचीय निर्देश देते चलता है जैसे रंग निर्देश का एक उदाहरण देखें- '' हलके अभिवादन के रूप में सिर हिलाता है जिसके साथ ही उकसी आकृति धीरे-धीरे धुंधलाकर कमरे में गुम हो जाती है। उकसे बाद कमरे के अलग-अलग कोने एक-एक करके आलोकित होते हैं और एक आलोक-व्यवस्था में मिल जाते हैं.....'' इसी प्रकार नाटक के अंत में नाटककार द्वारा दिये गय रंग-निर्देश देखें- ''' प्रकाश खंडित होकर स्त्री और बड़ी लड़की तक सीमित रह जाता है। स्त्री स्थिर आँखों से बाहर लड़की की तरफ देखती आहिस्ता से कुरसी पर बैइ जाती है। बड़ी लड़की एक बार उकसी तरफ देखती है, फिर बाहर की तरफ। हल्का मातमी संगीत उभरता है , जिसको साथ उन दोनों पर भी प्रकाश मद्धिम पड़ने लगता है। तभी, लगभग अंधेरे में लड़के की बांह थामे पुरूष एक की धुंधली आकृती अंदर आती दिखाई देती है।

लड़काः (जेसे बैठे गले से) देखकर डैडी, देखकर.....।

उन दोनों के आगे बढ़ने के साथ संगीत

अधिक स्पष्ट और अंधेरा अधिक गहरा होता जाता है।

अभ्यास प्रश्न

4.6 सारांश

'आधे-अधूरे' आधुनिक जीवन की बिडम्बना एंव संत्रास पर केन्द्रित नाटक है। इस नाटक में समकालीन जीवन की टूटन, हताशा, पीड़ा को केन्द्र में रखकर देशकाल एवं परिवेश का निर्माण किया गया है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि-

- आधुनिक जीवन स्थितियाँ क्या है और उनका स्वरूप क्या है?
- मोहन राकेश की नाट्य कला से परिचय प्राप्त किया।
- आधुनिक मनुष्य के ऊपर परिस्थितियाँ कैसे प्रभावी होती जा रही है, इसको आप ने जाना।
- कामकाजी महिलाओं की समस्याओं से आपने परचिय प्राप्त किया।
- आधुनिक जीवन परिवेश को आपने जाना।

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(क)-

1. सही
2. गलत
3. गलत
4. गलत
5. सही

(ख)-

1. सावित्री
2. महेन्द्रनाथ
3. आधुनिक
4. बिन्नी
5. अधूरापन

4.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी नाटक संचयन (सं)- अंकुर, देवेन्द्र राज, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया।
2. हिन्दी नाटक नई परख (सं)- गौतम, रमेश, स्वराज प्रकाशन

4.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री

4.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. मोहन राकेश की नाट्यकला पर निबंध लिखिए।
2. 'आधे-अधूरे' नाटक में चित्रित समस्या पर प्रकाश डालिये।

इकाई 5 पृथ्वीराज की आँखें : पाठ एवं मूल्यांकन

इकाई की रूप रेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 पाठ का उद्देश्य
5.3 लेखक एवं रचना परिचय
5.3.1 लेखक परिचय
5.3.2 रचना परिचय
5.4 पृथ्वीराज की आँखे: मूल पाठ
5.5 पृथ्वीराज की आँखे: मूल्यांकन
5.5.1 कथ्य विश्लेषण
5.5.2 पात्र संरचना और समाज
5.5.3 संवाद की कीमियागिरी
5.5.4 परिवेश और देशकाल का संदर्भ
5.6 सारांश
5.7 शब्दावली
5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
5.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.11 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

एकांकी नाटक जाति की विधा है। एक अंक के नाटक संस्कृत शास्त्रों में भी मिलते है, लेकिन एकांकी अपने मूल रूप में पश्चिमी साहित्य से होकर भारत में आया। समाचार पत्रों के बीच मची होड़ ने एकांकी विधा को जन्म दिया था। एक अंक वाले संक्षिप्त नाटक को ही बाद में एकांकी कहा जाने लगा। एक अंक के साथ ही सीमित पात्र, एक दृश्य इसकी अन्य विशेषता है। एक दृश्य होगा तो स्वाभाविक है कि मूल घटना भी एक ही होगी। अतः एकांकी की मूल शर्तों को ध्यान में रखकर एकांकी की सफलता-विफलता का मूल्यांकन किया जा सकता है।

रामकुमार वर्मा को हिंदी एकांकी का जनक कहा जाता है। इसका कारण क्या है? सर्वप्रथम तो इसका कारण यह है कि आप ने हिंदी साहित्य में एकांकी लेखन की विधिवत परम्परा प्राप्त की और दूसरे प्रमुख कारण यह कि आप की एकांकी का वर्ण्य-विषय क्षेत्र अन्य एकांकीकारों से व्यापक व बहुविध रहा है। वर्मा जी के एंकाकी पर टिप्पणी करते हुए चन्द्रिका प्रसाद शर्मा ने टिप्पणी है: ''डॉ. रामकुमार वर्मा ने अपने एकांकियों में देशकाल और कार्य का संयोजन बड़ी कुशलतापूर्वक किया है। उन्होंने संकलनत्तय की ओर बराबर ध्यान दिया है। उनके पात्र अपने युग विशेष के अनुकूल रहते हैं। उनके एकांकी पात्र मनोरंजन के लिए नहीं हैं। वे सोद्देश्य हैं। वे भारत के नवयुवकों और नवयुवतियों के समक्ष अपने देश के अतीत की गौरव-गाथाएँ प्रस्तुत कर उनको राष्ट्र-निर्माण की ओर उन्मुख करते हैं। उन्होंने 'दीपदान' की भूमिका में इस संदर्भ में लिखा है- ''यदि आप मेरे नाटकों पर दृष्टि डालें तो आपकों ज्ञात होगा कि मैंने सामाजिक नाटकों की अपेक्षा ऐतिहासिक नाटक अधिक लिखे हैं। इसका कारण एक राष्ट्र की संस्कृति में मेरा विश्वास है जिसका विकास करने में हमारे ऐतिहासिक महापुरूषों का विशेष हाथ रहा है। हमारे ऐतिहासिक तथ्यनिरूपण में हमारे वर्तमान जीवन को एक नैतिक धरातल मिलता है।''

5.2 पाठ का उद्देश्य

एम.ए.एच.एल- 202 की यह पॉचवीं इकाई है। यह इकाई ऐतिहासिक घटनाक्रम पर आधारित है। इस एंकाकी को पढ़कर आप इतिहास को नये ढ़ंग से पढ़ना सीख सकते हैं। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- एकांकी विधा की विशेषताओं को जान सकेंगे।
- नाटक और एकांकी के भेद को समझ सकेंगे।
- रामकुमार वर्मा के जीवन से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- रामकुमार वर्मा के कृतित्व के बारे में जान सकेंगे।
- पृथ्वीराज की आँखे एकांकी के मूल पाठ से परिचित हो सकेंगे।
- इतिहास और साहित्य के अंतर्सम्बन्ध को समझ सकेंगे।

- आलोच्य एकांकी के बहाने इतिहास की एक बड़ी पूर्ति को एंकाकी पूरा करता है।
- इतिहास में कल्पना का प्रवेश कराके संवेदना पैदा कराने का एकांकीकार का उद्देश्य रहा है।

14.3 लेखक एवं रचना परिचय

14.3.1 लेखक परिचय

डॉ. रामकुमार वर्मा जी का जन्म सन् 1904 ई. में सागर में हुआ था। कुमार नाम उनके बचपन का था। वर्मा जी के पिता की नौकरी में हमेशा स्थानान्तरण होता रहा, जिसके कारण आप के ऊपर विभिन्न संस्कृतियों का प्रभाव पड़ता रहा। बालकाल से ही आप बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। विभिन्न कलाओं और खेल-कूद में आप प्रारम्भ से ही अव्वल रहे। रामकुमार वर्मा जी की प्रारंभिक शिक्षा महाराष्ट्र, नरसिंहपुर और जबलपुर में हुई। प्रारंभिक काल में ही आपके ऊपर राष्ट्र प्रेम एवं संस्कृति औदात्य की भावना ने जन्म ले लिया था। राष्ट्रीय आन्दोलन में भी आप सक्रिय रूप से हिस्सेदारी करते रहे। इसी बीच आपका कास्य संस्कार भी जाग्रत होने लगा था। 1921 में आपकी प्रथम कविता प्रकाशित हुई थी। सन् 1925 में इण्टर की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् आपने प्रभाग विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। सन् 27 में आपने बी.ए. और 1929 में आपने एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् 1929 में ही आपका विवाह लक्ष्मी देवी जी के साथ संम्पन्न हुआ। 18 अगस्त, 1929 में डॉ. रामकुमार वर्मा प्रयाग विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में प्राध्यापक पद पर नियुक्त हुए। सन् 30-31 तक वर्मा जी की कई रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी थीं। इस समय तक हिंदी साहित्य में आप लेखक के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे।

सन् 1938 में वर्मा जी का प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थ 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात् आपकी रचनाएँ क्रमशः प्रकाशित होती रहीं। हिंदी के कई प्रतिष्ठित पुरस्कार प्राप्त आपको प्राप्त हुए। सन् 1991 में आपकी मृत्यु हुई। तब तक आपने हिंदी साहित्य की महत्वपूर्ण सेवा की।

14.3.2 रचना परिचय

डॉ. रामकुमार वर्मा का साहित्य संसार विस्तृत है। कविता, नाटक, एकांकी, इतिहास एवं आलोचना कई विधाओं में आपका लेखन रहा है। साहित्य की बहुविध प्रतिभा का परिचय हम उनके कृतित्व विस्तार से सहज ही देख सकते हैं। आइए हम उनकी प्रमुख रचनाओं का परिचय प्राप्त करें-

काव्य

1.	वीर हम्मीर	- 1933
2.	चित्तौड़ की चिता	- 1929
3.	अभिशप	- 1930
4.	अंजलि	- 1930

5.	निशीथ	- 1932
6.	रूपराथि	- 1933
7.	चित्ररेखा	- 1935
8.	चन्द्रकिरण	- 1937
9.	आधुनिक कवि	- 1939
10.	संकेत	- 1948
11.	आकाशगंगा	- 1949
12.	एकलव्य	- 1957
13.	कृतिका	- 1966
14.	ये गजरे तारों वाले	- 1935
15.	उत्तरायण	- 1967
16.	संत रैदास	- 1978
17.	ओ अहल्या	- 1985
18.	बलिबध	- 1990

नाटक

1.	शिवाजी	- 1945
2.	कोमुदी महोत्सव	- 1949
3.	विजय-पर्व	- 1954
4.	कला और कृपाण	- 1958
5.	अशोक का शोक	- 1967
6.	जौहर की ज्योति	- 1967
7.	सत्य का स्वप्न	- 1967
8.	महाराणा प्रताप	- 1967
9.	नाना फड़नवीस	- 1969
10.	सारंग-स्वर	- 1948
11.	पृथ्वी का स्वर्ग	- 1971
12.	जय बाड़्ला	- 1971
13.	अग्नि शिक्षा	- 1971
14.	संत तुलसीदास	- 1973
15.	जय आदित्य	- 1973
16.	जय वर्धमान	- 1974
17.	जय भारत	- 1975
18.	भगवान बुद्ध	- 1975
19.	समुन्द्रगुप्त पराक्रमांक	- 1978

20.	सम्राट कनिष्क	- 1978
21.	देवी श्री अहिल्याबाई	- 1980
22.	स्वयंवरा	- 1980
23.	अनुशासन-पर्व	- 1980
24.	मालव कुमार भोज	- 1981
25.	कुन्ती का परितोष	- 1983
26.	सरजा शिवाजी	- 1985
27.	कर्मवीर	- 1985
28.	वत्सराज उद्यन	-

एकांकी

1.	पृथ्वीराज की आँखे	- 1935
2.	रेशमी टाई	- 1941
3.	चारूमित्रा	- 1942
4.	शिवाजी	- 1942
5.	सप्त किरण	- 1947
6.	रूपरंग	- 1948
7.	कौमुदी महोत्सव	- 1949
8.	ध्रुवतारिका	- 1950
9.	रम्यदास	- 1950
10.	ऋतुराज	- 1951
11.	रजत रश्मि	- 1952
12.	दीपदान	- 1953
13.	रिमझिम	- 1955
14.	पांजजन्य	- 1957
15.	साहित्य एकांकी	- 1958
16.	मेरे सर्वश्रेष्ठ एकांकी	- 1958
17.	मयूर पंख	- 1965
18.	ललित एकांकी	- 1966
19.	इतिहास के स्वर	- 1969
20.	अमृत की खोज	- 1971
21.	खट्टे-मीठे एकांकी	- 1973
22.	बहुरंगी एकांकी	- 1982
23.	चित्र एकांकी	- 1983
24.	समाज के स्वर	- 1984

25. विचित्र एकांकी - 1987

आलोचनात्मक ग्रन्थ

1. साहित्य-समालोचनात्मक - 1930
2. हिंदी साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन - 1941
3. विचार दर्शन - 1948
4. समालोचना समुच्चय - 1949
5. एकांकी कला - 1952
6. अनुशीलन - 1957
7. साहित्य चिंतन - 1965
8. कबीर एक अनुशीलन - 1963
9. कबीर बायोग्रैफी एण्ड फिलासफी (अंग्रेजी)

शोध-ग्रन्थ/इतिहास

1. कबीर का रहस्यवाद - 1931
2. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - 1938
3. संत कबीर - 1947
4. साहित्यशास्त्र - 1957
5. रीतिकालीन साहित्य का पुनर्मूल्यांकन - 1984

संस्मरण

1. हिम-हास - 1936
2. स्मृति के अंकुर - 1930
3. संस्मरणों के सुमन - 1982

संपादन कार्य

1. हिंदी गीत काव्य - 1932
2. कबीर पदावली - 1937
3. गद्य परिचय - 1942
4. आधुनिक काव्य संग्रह - 1945
5. आधुनिक हिंदी काव्य - 1945
6. गद्य गौरव - 1955
7. काव्यांजलि - 1955
8. काव्य कुसुम - 1965

9. सरज एकांकी नाटक - 1964
10. आक एकांकी नाटक - 1964
11. वरवै रामायण - 1967
12. हस्तलिखित हिंदी ग्रन्थों
की विवरणात्मक सूची - 1953
13. संक्षिप्त सन्त कबीर - 1971

अभ्यास कार्य

क. रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए

1. डॉ. रामकुमार वर्मा का जन्म ---------- ई. में हुआ था।(1900/1904/1907)
2. डॉ. रामकुमार वर्मा का जन्म ---------में हुआ था। (कलकत्ता/दिल्ली/सागर)
3. रामकुमार वर्मा --------- विश्वविद्यालय मेंप्राध्यापकथे। (दिल्ली/प्रयाग/हिन्दू)
4. रामकुमार वर्मा की मृत्यु ------ हुई। (1991/2000/1980)
5. ''हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास'' का प्रकाशन ----------
में हुआ था। (1938/1940/1955)

ख. सही (√)/गलत (ग) का चुनाव कीजिए।

1. चित्ररेखा रामकुमार वर्मा का प्रसिद्ध एकांकी है। ( )
2. कौमुदी-महोत्सव की रचना विधा नाटक है। ( )
3. रामकुमार वर्मा की ज्यादातर रचनाएँ ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर रचित है। ( )
4. पृथ्वीराज की आँखे वर्मा जी का प्रथम एकांकी है। ( )
5. कबीर का रहस्यवाद का प्रकाशन 1931 ई. में हुआ था। ( )

5.4 पृथ्वीराज की आँखें: मूल पाठ

पृथ्वीराज की आँखे

महाकवि चंद ने अपने ग्रंथ 'पृथ्वीराज-रासो' के छियासठ समयो (बड़ी लड़ाई समयो) में पृथ्वीराज का कैद होकर गौर जाना लिखा है। सरसठ समयो (बान-बेध समयो) में पृथ्वीराज की धनुर्विद्या का वर्णन और अंत में पृथ्वीराज के शब्द बेधी बाण को शहाबुद्दीन गोरी का बध होना लिखा है। इसी दृष्टिकोण को सामने रखकर इस नाटक की रचना की गई हैं, पर ये सब बातें ऐतिहासिक सत्य से परे हैं।,

पात्र-परिचय

पृथ्वीराज चौहान: दिल्ली और अजमेर का राजा

चंद: महाकवि और पृथ्वीराज का मित्र

शहाबुद्दीन गोरी: गोर का सुलतान (सन् 1992)

अख्तर: सिपाही

काल: तराइन के युद्ध के उपरांत

सन्ध्या का समय। गोर के किले में पृथ्वीराज कैद हैं। वह पैतालीस वर्ष के प्रौढ़ व्यक्ति हैं। उनके शरीर से शौर्य अब भी फूट रहा हैं। चढ़ी हुई मूँछे और रोबीला चेहरा। उनके हाथ साँकलों से बँधे हैं। अब वह अपने घुटनों पर दोनों हाथ रक्खे हुए सिर झुकाए बैठे हैं। साँकल का एक छोर उनके पैरों तक लटक रहा है, जो हाथों के संचालन-मात्र से ही झूलकर शब्द करने लगता है। उनके बाल बिखरे हुए हैं। डाढ़ी बढ़ आई है। वस्त्र बहुत मैले हो गए हैं। कहीं-कहीं जलने के निशान भी पड़ गए हैं। घुटनों के पास फटा हुआ चूड़ीदार पाजामा है, जिस पर रक्त के धब्बे दिखाई पड़ रहे हैं, पैर में पुराना जूता है, जिस पर गर्द छा रही है। पृथ्वीराज आँखें बंद किए हैं। सामने खिड़की से हवा आ रही है, जिससे उनके बाल हिल रहे हैं। कुछ समय पहले थोड़ा पानी बरस चुका है, इसलिए वायु में कुछ शीतलता आ गई है।

दाहिनी ओर महाकवि चंद बैठा हुआ है। उसकी आयु पृथ्वीराज की आयु के लगभग है। उसके कपड़े साफ-सुथरे हैं। वेश में सादगी है, पर मुख पर दुःख की रेखाएँ अंकित हैं। वह पृथ्वीराज को करूणापूर्ण आँखों से देख रहा है। कुछ क्षणों तक दोनों स्थिर बैठे रहते हैं। फिर वेदना से सिहरकर पृथ्वीराज नीचे मुख किए ही, व्यथित स्वर में बोलता हैं। बोलने के साथ-साथ हिलने से साँकल बज उठती हैं।,

पृथ्वीराज: मत पूछो। कुछ मत पूछो। जिस क्षण ने पृथ्वीराज को पृथ्वीराज न रहने दिया, उसकी-उस निर्दय क्षण की-बात मत पूछो। बड़ी कठिनाई से उस कष्ट को भूला सका हूँ। चंद! आखेट करते समय व्याघ्र के पंजे भी मुझे इस तीक्ष्णता से नहीं लगे। आह!(सिर झुकाकर सोचता हैं।)

चंद: (दयार्द्र होकर) महाराज, यह आपका शरीर, जिससे शौर्य पसीना बनकर बहा करता था, आज इतना निस्तेज है! क्या गोर के आदमी इतने निर्दय होते है! एक शक्तिशाली राजा के साथ इतना पशुत्व!

पृथ्वीराज: पशुत्व ! ओह, चंद ! यदि उस समय तुम होते, तो काँप् जाते ! तुम्हारी लेखनी कुंठित हो जाती। मनुष्यता थर्रा उठती। आश्चर्य है, माता वसंुधरा यह सब कृत्य देखती रही ! और, इस पृथ्वीराज के शरीर पर इतना अत्याचार देख लेने पर भी वह माता कहला सकती है? कवि, घोषणा कर दो कि यह वसुन्धरा माता नहीं, पिशाचिनी है !! (भावोन्मेष में काँपता है।)

चंद: महाराज !

पृथ्वीराज: (उसी भवावेश में) और यह हवा ! इस समय शरीर से लगकर सुख देना चाहती है, पर उस पर समय? पापिनी ! (घृणा-प्रदर्शन)

चंद: यह उन्माद !

पृथ्वीराज: (तीव्रता से) चुप रहो, चंद ! इतना कहने के बाद भी मैं जीवित हूँ, आश्चर्य है। भयंकर रात थी। प्रेयसी संयोगिता के बिना वह रात हब्शिन बन गई थी। अंधकार जैसे मेरी ओर घूर रहा था, मेरी आँखों में घुसकर। इतने में चार मशालें दिखलाई दीं। उनकी लौ इधर-उधर झूम रही थी। जैसे अंधकार-रूपी काले दैत्य की जिह्वाएँ हों। (सोचते हुए) पाँच आदमी सामने आए। चार मशालची और एक उनका सरदार। सरदार के हाथ में एक छुरा थां वह बोला-कैदी, तेरी आँखें निकाली जाएँगी ! (शैथिल्य-प्रदर्शन)

चंद: यह धृष्टता ! (भौंहे सिकोड़ता है।)

पृथ्वीराज: (उसी स्वर से) मैंने कहा, कैद करने के बाद यह जुल्म ? मनुष्यता से रहना सीाखो, खुदा के बंदो ! जान से मार डालो, पर एक राजा की इज्जत रहने दो। चंद, उसने कहा, चुप रह! (गहरी साँस लेता है।)

चंद: (तड़पकर) क्या कहा ? चुप रह ?

पृथ्वीराज: हाँ, यही कहा। दिल्ली और अजमेर को भौंह के संकेत से नचानेवाले चौहान को ये शब्द भी सुनने पड़े ! यदि दिल्ली में ये शब्द मेरे कानों में पड़ते, तो ..... तो ..... हाय, जवान लड़खड़ा रही है। बोला भी नहीं जाता।

चंद: (दुःख से) आह, आज महाराज पृथ्वीराज चौहान की यह दशा !

पृथ्वीराज: (अपने ही विचारों से) फिर ..... फिर सबने मिलकर मुझे जोर से पकड़ लिया ! मेरे हाथ-पैर बँधे थे। मैं बिल्कुल असहाय था। चंद, उस समय जीवन में पहली बार-केवल पहली बार-मैंने अपनी आँखों को आँसुओं से भरा पाया!

चंद: (करूणा से) महाराज, आपका गला सूख रहा है, पानी पी लीजिए।

पृथ्वीराज: (चंद की बात सुनकर अपने ही विचारों में, मानों वह दृश्य उसकी आँखों में झूल रहा हो) दो गरम सूजे मेरी आँखों के पास लाए गए। मुझे उनकी गर्मी धीरे-धीरे पास आती हुई जान पड़ी। उस समय मुझे याद आया..... मुझे याद आया संयोगिता ने एक बार इसी प्रकार धीरे-धीरे अपने मुख को समीप लाते हुए इन्हीं आँखों का चुबंन लिया था। उस समय उन अधरों की मादकता मेरे पास इसी प्रकार धीरे-धीरे आती हुई जान पड़ी थी !

चंद: (चंचल होकर) अब आगे मत कहिए, मैं नहीं सुन सकूँगा .....

पृथ्वीराज: एक क्षण में उन्होंने उन गरम सूजों से मेरी पलकों को छेद डाला और मेरी पुतलियों को जलाकर .....

चंद: (अधीर होकर) अब न सुन सकूँगा यह क्रूरतापूर्ण अत्याचार !

पृथ्वीराज: (शांत होकर) अच्छा, मत सुनो। पर इतना जान लो कि जिन आँखों में संयोगिता की मूर्ति अंकित थी, वे आँख अब नहीं रहीं। जिन अतृप्त आँखों में सौंदर्य-सुधा-पान की मादकता थी, वे आँखें अब नहीं रहीं।

चंद: (दृढ़ता से) और जिन आँखों ने क्रूर दृष्टि से कितने ही राजाओं को निस्तेज कर दिया, जिन आँखों ने रक्त-वर्ण होकर रण-क्षेत्र में लोहा बरसा दिया, वे आँखे ?

पृथ्वीराज: वे आँखे ? उफ्, वे आँखे तो जयचंद के विश्वासघात की आग में जल गई। कवि, क्या रेवा-तट के सत्ताईसवें समयो की याद दिलाना चाहते हो ? इस समय मेरे सामने तुम्हारा 'रासो' कवि की कल्पना का साधारण अभ्यास-मात्र हैं। अब तो यह शरीर वहा पृथ्वीराज चौहान नहीं रह गया।

चंद: महाराज .....

पृथ्वीराज: (क्रोध से) बार-बार मुझे महाराज क्यों कह रहे हो ? मैं एक कैदी हूँ।

ख्साँकल बज उठती है।,

चंद: पर, मेर लिए नहीं। फिर आपका शरीर कैदी है, आत्मा ? मुझे विश्वास है, आपकी आत्मा कैद नहीं हो सकती। आप वही पृथ्वीराज चौहान है। उस समय आप भारत में थे, इस समय यहाँ शेर पिंजड़े में बंद रहने पर भी शेर ही कहलाता है। (गर्व की मुद्रा)

पृथ्वीराज: यदि शेर का शेर ही रखना चाहते हो, तो चंद, कहाँ है तुम्हारी तलवार ? फाड़ दो मेरा यह वृक्षःस्थल। पृथ्वीराज के गौरव से धिरे हुए इस प्राणी को अब प्राण की आवश्यकता नहीं। इस जीवन का एक-एक क्षण तुम्हारी तलवार की धार से बहुत पैना है। (साँकल का शब्द) लाओ, अपनी तलवार !

चंद: तलवार ? वह तो मुहम्मद गोरी के हुक्म से दरवाजे पर ही मेरे हाथों से ले ली गई। मुझसे कहा गया कि मैं भीतर नहीं ले जा सकतां वह तो दरवाजे पर ही ले ली गई।

पृथ्वीराज: (दाँत पीसकर) ले ली गई? और हाथ ? वे भी गौरी ने नहीं काट लिए ? नीच ! नारकी ! (ठहरकर) चंद, तुम प्राण-हीन होकर मेरे पास आए हो। जानते हो, वीरों के प्राण का नाम है तलवार !

चंद: जानता हूँ, पर सुलतान का हुक्म।

पृथ्वीराज: सुलतान का हुक्म ? गोरी का ? और तुम उस हुक्म के आज्ञाकारी सेवक हो ?

चंद: (संभलकर) किंतु, किंतु यह कटार (छिपी हुई कटार निकालकर) मैंने अपनी आत्मा की तरह छाती में छिपाकर रक्खी है। मैं इससे अपना काम कर सकता हूँ। (तनकर खड़ा हो जाता है।)

पृथ्वीराज: (बड़ी प्रसन्नता से) मेरे अच्छे चंद महाकवि, मित्र प्यारे ! आओ ! मेरे जीवन की श्मशान के समान भयानक आग शांत कर दो। लाओ, तुम्हारा माथा चूमूँ हाय, मैं देख भी नहीं सकता, तुम्हारा माथा कहाँ है !

चंद: महाराज ! विचलित न होइए। मैं चौहान की इस दैन्यावस्था में नहीं देख सकता, मैं अभी मृत्यु .....

पृथ्वीराज: (बात काटकर) हाँ, देर न करो। देर न करो। मेरे चंद, महाकवि,

चंद: महाराज, मैं देर न करूँगा। यह छुरी छाती में घुसकर शीघ्र ही इस दुःख से मुक्त कर देगी। लीजिए, चूमता हूँ यह कटार। (कटार चूमता है) लाइए, अंतिम बार आपके चरण स्पर्श कर लूँ। (चरण स्पर्श करता है) प्रणाम। मैं आप पर नहीं, अपने ही शरीर पर आघात करूँगा, क्योंकि मैं आपकी यह दशा नहीं देख सकता।

ख्कटार ऊपर तानता है।,

पृथ्वीराज: (विचलित होकर) नहीं, नहीं।

ख्जंजीर बज उठती है।,

मेरे चंद, यह नहीं हो .....

ख्चंद आत्मघात करना ही चाहता है कि पीछे से मोहम्मद गोरी निकलकर, हाथ रोककर, कटार छीन लेता है। गोरी पैंतीस वर्ष का युवक है। शरीर गठा हुआ। मूँछें तनी हुई। वह फौजी वेश में है। कमर में तलवार है।,

गोरी: (हँसकर) हँअ्, सरदार, जिंदगी इतनी नाचीज है ? यह दुनिया इसी तरह चलती है, और चलती रहेगी। तुम इतने मायूस क्यों होते हो ? और भोले सरदार ! क्या तुम जानते हो कि मेरे घर में क्या हो रहा है, इसका पता मुझे नहीं ? गोर का सुलतान दीवारों में अपनी दृष्टि रखता है।

चंद मलिन दृष्टि से गोरी को देखता है।,

गोरी: (उत्साह से) पर वाह ! तुम कितने वफादार हो ! अपने मालिक की यह हालत न देख सकनेवाले सरदार ! अपनी वफादारी का इनाम माँगो।

ख्चंद चुप रहता है।,

गोरी: कुछ नहीं ? बोलो ! अभी तो बोल रहे थे। अंधे का पैर चूम रहे थे। उसकी आँखे नहीं चूमते ? अहा, कैसी खूबसूरत हैं। (व्यंग-दृष्टि)

चंद: खूबसूरत ? उस शेर की आँखे उसके दिल में हैं।

गोरी: दिल में ? बहुत अच्छां यह शेर तुम्हें शायद उन्हीं आँखों से देख रहा है।

पृथ्वीराज, तू मुझे किन आँखों से देख रहा है ?

पृथ्वीराज: (स्थिर भाव से) गोरी, तू देखने लायक भी नहीं है। अपनी इन अंधी आँखों से अगर मैं देख सकता, तो भी मैं तुझे देखना पसंद न करता। अच्छा हुआ, तूने इनका उलेला ले लियां (ठहरकर) मैं तुझे क्या देखूँ ? तू भूल गया, उस बार मेरे तीरों से तेरी टोपी उड़ी थी ! उस वक्त मैंने तुझे पूरी नजर से देखा था। जब तू मेरे सामने भागा था, तब मैंने तुझे पूरी नजर से देखा था। तू भूल गया ? मुझे दुःख है, सरदारों के कहने में आकर मैंने तेरा पीछा नहीं किया। मेरे तीर तेरे शरीर को न बेध सके ! (निराशा)

गोरी: (लापरवाही से) खैर, तेरे तीर न सही, मेरे मामूली सूजे तेरी आँखों को बेध सके। एक ही बात है, पर मेरे तीर

चंद: (बीच ही में) सुलतान, पृथ्वीराज के तीर-पृथ्वीराज आवाज पर तीर मारता है।

गोरी: (आश्चर्य से) आवाज पर ! मारता होगा, पर अब तो वह अंधा है।

चंद: सुलतान, आवाज पर तीर मारने के लिए आँख की जरूरत नहीं होती।

गोरी: (आश्चर्यपूर्वक) सच ?

चंद: बिलकुल सच। कल अपने अंधे वीर का यही तमाशा देखिएगा। यही मेरा इनाम समझें।

गोरी: (पृथ्वीराज की ओर देखकर) शाबाश कैदी, (चंद से) अच्छा चंद ! कल तुम्हारी खातिर इस अंधे की तीरंदाजी भी देख लूँगा। अच्छा, अब देर हो रही है। तुम मेरे साथ चल सकते हो। खुदखुशी पर तुमसे एक कहानी कहनी है। कैदी से मिलने का वक्त अब पूरा हो गया। अब एक मिनट भी नहीं।

चंद: यह बतलाना तो सिपाही का काम है, आपका नहीं। आप तो सुलतान हैं।

गोरी: तुम हमेशा मुझे सुलतान के बजाय सिपाही ही समझो, सिर्फ सिपाही। (दृढ़ता से खड़ा होता है।)

चंद: (पृथ्वीराज से) अच्छा, अब चलता हूँ। प्रणाम महाराज पृथ्वीराज ! (प्रणाम करता है।)

गोरी: (व्यंग्य से) महाराज ('महा' पर जोर देकर) पृथ्वीराज ! (अट्टहास करता है) हा हा हा ! (जोर से) अख्तर !

ख्अख्तर सिपाही का मुस्तैदी से प्रवेश। पूरी वर्दी में तीस वर्ष का जवान ज्ञात होता है। आकर सलाम करता है।,

गोरी: महाराज ('महा' पर जोर देकर) पृथ्वीराज की आँखों में आज रात को नींबू और मिर्च पड़ेगा। रात के ग्यारह बजे। कितने बजे ?

अख्तर: ग्यारह बजे।

गोरी: क्या ?

अख्तर: नींबू और मिर्च।

गोरी: हाँ, नींबू और मिर्च पड़ेगा। समझे ?

पृथ्वीराज: (दृढ़ता से उसी स्वर में) नींबू के रस में नमक मिलाना होगा, समझे !

गोरी: (मुस्कराकर सिपाही से) अच्छा, इसकी मुराद पूरी करो (पृथ्वीराज से) कैदी ! कल सुबह मिलूँगा। रात को अपनी आँखों में नमक-मिर्च डालकर आराम से सोना।

(तनकर खड़ा होता हे।)

पृथ्वीराज: (व्यंग्य से मुस्कराकर) बहुत अच्छा बादशाह ! सलाम।

गोरी: चंद को साथ लेकर गोरी का गर्व से प्रस्थान। पृथ्वीराज स्थिर भाव से बैठा रहता है।,

5.5 पृथ्वीराज की आँखें: मूल्यांकन

5.5.1 कथ्य विश्लेषण

डॉ. रामकुमार वर्मा जी की एकांकियों का कथ्य विषय प्रग्यः ऐतिहासिक भूमि बनी है। इस संदर्भ में उनके समकालीन जयशंकर प्रसाद जी की तरह ही वर्मा जी ने इतिहास और कल्पना के अंतसंबंध का सृजनात्मक प्रयोग किया है। इतिहास पर लिखकर भी वर्मा जी ने इतिहास के ज्ञात प्रकाश में छेड़छाड़ नहीं की है, उन्होंने इतिहास के अज्ञात अंशों को अपनी कल्पना और सृजन तत्व से पूर्ण किया है। आपके इस प्रकार के एकांकी हैं- सम्राट उदयन पर अभियोग, रात का रहस्य, मर्यादा की वेदी पर, कौमुदी महोत्सव, सोने का वरदान, चारूमित्रा, वासवदत्ता, स्वर्णश्री, विक्रमादित्य, समुद्रगुप्त पराक्रमांक, कृपाण की धार, कादम्ब या वित्र, समयचक्र, राज्यश्री, भाग्य-नक्षत्र, पृथ्वीराज की आँखें, तैमूर की हार, दीपदान, दुर्गावती, दीने इलाही, शिवाजी, अभिषेक, ध्रुवतारिका, औरंगजेब की आखिरी रात, सरजा शिवाजी, पानीपत की हार, नाना फड़नवीस, कलंक रेखा, वाजिद अली शाह इत्यादि।

'पृथ्वीराज की आँखें' एकांकी, महाकवि, चंद के ग्रन्थ 'पृथ्वीराज-रासो' के छियासठ समयों के आधार पर रचित है। सरसठ समयो में पृथ्वीराज कही धनुर्विद्या का वर्णन और अंत में पृथ्वीराज के शब्द बेधी बाण से शहाबुद्दीन गोरी का वध होना लिखा है। इसी दृष्टिकोण को सामने रखकर इस नाटक की रचना की गई। पृथ्वीराज की मृत्यु, गोरी की मृत्यु के संदर्भ में ऐतिहासिक साक्ष्य का अभाव है। पृथ्वीराज के शब्द वेधी बाण से गोरी की मृत्यु हुई थी या नहीं ? स्पष्टतया इसे हम

नहीं कह सकते। एकांकी की भूमिका में हीं एकांकी का समय निर्देश कर दिया गया है (तराइन के युद्ध के उपरांत)। स्पष्ट है कि युद्ध में पृथ्वीराज की हार तो इतिहास प्रसिद्ध है, किन्तु उसकी मृत्यु के संदर्भ में इतिहास मौन हैं हाँ साहित्य इस संदर्भ में हमें अवश्य संकेत करता है, जिस आधार पर आलोच्य एकांकी की रचना हुई है। विस्तार को ध्यान में रखते हुए 'पृथ्वीराज की आँखें' को छोटी एकांकी ही कहा जा सकता हैं इसमें गोरी की कैद में पृथ्वीराज की विवशता का वर्णन प्रमुखता से चित्रित हुआ है। पूर्वदीप्ति शैली में पृथ्वीराज का चन्द को अपनी आँख निकाले जाने की घटना का वर्णन है। चंद का गोरी से अपने ईनाम के रूप में पृथ्वीराज की शर-कुशलता का प्रदर्शन कराने को कहना भावी घटना का संकेत मात्र है। इस प्रकार पूर्व और भविष्य की घटनाओं के आधार पर एकांकी का कथ्य निर्मित किया गया है।

5.5.2 पात्र संरचना और समाज

प्रेमचन्द ने नहीं लिखा था कि कल्पना से गढ़े हुए पात्र में शक्ति नहीं होती है। यानी जीवन की उष्मा और ऊर्जा को धारण करने की योग्यता सजीव पात्रों में ही होती है। सांस्कृतिक-ऐतिहासिक पात्रों में सम्प्रेषण की अतिरिक्त ऊर्जा होती है, इसीलिए वे दीर्धजीवी बन पाते हैं। एकांकी का पात्र परिचय देते हुए लिखा गया हैः

पात्र परिचय

पृथ्वीराज चौहान: दिल्ली और अजमेर का राजा

चंद: महाकवि और पृथ्वीराज का मित्र

शहाबुद्दीन गोरी: गोर का सुलतान (सन् 1992)

अरन्तर: सिपाही

काल: तराइन के युद्ध के उपरान्त

पात्र संरचना की दृष्टि से दो ही पात्र मुख्य रूप से हमारे सामने आते हैं। पृथ्वीराज और चंद माध्यम से एकांकी को संरचना प्रदान की गई है। पृथ्वीराज को एक वीर, प्रेमी युवक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। विगत काल की स्मृति और आधुनिक जीवन की पीड़ा के द्वन्द्व से उसके व्यक्तित्व का गठन किया गया है। पृथ्वीराज के इस चरित्र को निम्नलिखित संवाद के प्रस्तुत किया गया हैः-

''पृथ्वीराज: मत पूछो। कुछ मत पूछो। जिस क्षण ने पृथ्वीराज को पृथ्वीराज न रहने दिया, उसकी-उस निर्दय क्षण की-बात मत पूछो। बड़ी कठिनाई से उस कष्ट को भूला सका हूँ।''

इसी प्रकार पृथ्वीराज चौहान के वीरत्व का संकेत करती पंक्ति देखें-

''पृथ्वीराज: यदि शेर को शेर ही रखना चाहते हो, तो चंद, कहाँ है तुम्हारी तलवार ? फाड़ दो मेरा यह वक्षःस्थल। पृथ्वीराज के गौरव से घिरे हुए इस प्राणी को अब प्राण की आवश्यकता नहीं।''

इसी प्रकार चंद को एकांकी में कवि, सहृदय, वीर एवं चतुर के रूप में प्रस्तुत किया गया है। 'प्रणाम' । मैं आप पर नहीं, अपने ही शरीर पर आघात करूँगा, क्योंकि मैं आपकी यह दशा देख

नहीं सकता। ''इस प्रकार चंद के कवि रूप का संकेत भी लेखक ने एंकाकी के प्रारम्भ में ही कर दिया है। एकांकी के एक अन्य पात्र गोरी को क्रूर, आतत्ययी के रूप में चित्रित किया गया है।

5.5.3 संवाद की कीमियागिरी

नाटक संवाद चरित्र, देशकाल और व्यक्तित्व को प्रकट करने की क्षमता से युक्त होने चाहिए। इस दृष्टि 'पृथ्वीराज की आँखें' अपनी संवाद-शैली के कारण नाटकीय गठन को अपने में लिए हुए है। जैसे एकांकी का प्रारंभिक संवाद देखिए-

''पृथ्वीराज: मूल पूछो। कुछ मत पूछो। जिस क्षण ने पृथ्वीराज को पृथ्वीराज न रहने दिया, उसकी-उस निर्दय क्षण की-बात मत पूछो। ''इस पर चन्द्र का प्रतिउत्तर देखें-

चंद्र: (दयाई होकर) महाराज, यह आपका शरीर, जिससे शौर्य पसीना बहकर बहा करता था, आज इतना निस्तेज है ! क्या गोर के आदमी इतने निर्दय होते हैं ! एक शक्तिशाली राजा के साथ इतना पशुत्व ! ''

उपरोक्त संवाद में एक और जहाँ पूर्व में पृथ्वीराज का शौर्य, उसकी परिस्थिति, गोरी की निर्दयता, पुथ्वीराज पर हो रहे अत्याचार इन सब का वर्णन लेखक ने कुछ-एक पंक्तियों में ही कर दिया है।

5.5.4 परिवेश और देशकाल का संदर्भ

डॉ. रामकुमार वर्मा जी ने काल का संदर्भ देते हुए लिखा है- 'तराइन के युद्ध के उपरांत' स्पष्ट है कि तराइन का द्धितीय युद्ध (जिसमें मुहम्मद गोरी की विजय और पृथ्वीराज चौहान की पराजय हुई थी) सन् 1992 में हुआ था। देशकाल-परिवेश का संकेत करते हुए एकांकीकार ने लिखा है:

''ख्सन्ध्या का समय। गोर के किले में पृथ्वीराज कैद हैं। वह पैंतालिस वर्ष के प्रौढ़ व्यक्ति हैं। उनके शरीर से शौर्य अब भी फूट रहा है। चढ़ी हुई मूंछें और रोबीला चेहरा। उनके हाथ साकलों से बँधे हैं अ बवह घुटनों पर दोनों हाथ रक्खे हुए सिर झुकाए बैठे हैं। सांकल का एक छोर उनके पैरों तक लटक रहा है, जो हाथों के संचालन-मात्र से ही झूलकर शब्द करने लगता है। उनके बाल बिखरे हुए हैं। डाढ़ी बढ़ आई है। वस्त्र बहुत मैले हो गए हैं। कहीं-कहीं जलने के निशान भी पड़ गए हैं। घुटनों के पास फटा हुआ चूड़ीदार पाजामा है, जिस पर रक्त के धब्बे दिखाई पड़ रहे हैं, पैर में पुराना जूता है, जिस पर गर्द छा रही है। पृथ्वीराज आँखें बंद किए हैं। सामने खिड़की से हवा आ रही है, जिससे उनके बाल हिल रहे हैं। कुछ समय पहले थोड़ा पानी बरस चुका है, इसलिए वायु में कुछ शीतलता आ गई है।

दाहिनी ओर महाकवि चंद बैठा हुआ हैं उसकी आयु पृथ्वीराज की आयु के लगभग है। उसके कपड़े साफ-सुथरे हैं। वेश में सादगी है, पर मुख दुःख की रेखाएँ अंकित हैं। वह पृथ्वीराज को करूणापूर्ण आँखों से देख रहा है। कुछ क्षणों तक दोनों स्थिर बैठे रहते हैं। फिर वेदना से सिहरकर पृथ्वीराज नीचे मुख किए ही, व्यथित स्वर में बोलता है। बोलने को साथ-साथ हिलने से साँकल बज उठती है।,

5.6 सारांश

'पृथ्वीराज की आँखें' एकांकी का अध्ययन करने के पश्चात् आपने जाना कि-

- तराइन का युद्ध और उसका परिणाम क्या था।
- पृथ्वीराज चौहान के जीवन और उसके शौर्य से आप परिचित हुए।
- मुहम्मद गोरी के क्रूर व्यक्तित्व से आप परिचित हुए।
- इतिहास के परिवेश से आप परिचित हुए।
- एक विशेष कालखण्ड के इतिहास को आप समझ सकें

5.7 शब्दावली

तीक्ष्णता - तीव्रता
शैथिल्य - सुस्ती
सुधा - अमृत
मायूस - निराशा का भाव
शौर्य - वीरता का भाव
सॉकल - जंजीर
धृष्टता - दुस्साहस
अतृप्त - अधूरापन
निस्तेज - बिना तेज के

5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1) क -
1- 1904
2- सागर
3- प्रयाग
4- 1991
5- 1938
ख -
1- गलत
2- सही
3- सही
4- सही
5- सही

5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. रामकुमार वर्मा एकांकी रचनावली - (सं) शर्मा, डॉ. चंद्रिका
खण्ड - एक
प्रसाद, किताब घर, नई दिल्ली।

5.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. डॉ. रामकुमार वर्मा की एकांकी कला का विश्लेषण प्रस्तुत कीजिए।
2. 'पृथ्वीराज की आँखें' की समीक्षा कीजिए।

इकाई 6 हिन्दी निबन्ध साहित्य का स्वरूप एवं तात्त्विक विवेचन

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 निबन्ध का अर्थ, तात्पर्य और स्वरूप
6.4 निबन्ध के प्रकार
6.5 निबन्ध : तात्त्विक विवेचन
6.6 सारांश
6.7 शब्दावली
6.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
6.9 अभ्यासों के उत्तर
6.10 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में आप जानेंगे कि 'निबन्ध' शब्द का अर्थ एवं तात्पर्य क्या है ? इसका स्वरूप कैसा होता है? निबन्ध के तत्त्व कौन-कौन से हैं, तथा उनकी विवेचना कैसे की जाती है। इसके साथ ही आप यह भी जान सकेंगे कि निबन्ध लेखन, साहित्य की अन्य विधाओं से किस तरह भिन्न है।

'निबन्ध' साहित्य की एक ऐसी विधा है, जिसमें लेखक अपने मौलिक चिंतन तथा गम्भीर विचारों को तार्किकता के साथ कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करता है। फ्रांसीसी विद्वान मॉन्तेन ने 1580 में व्यक्तिगत दशाओं को अभिव्यक्त करते हुए जिस विधा में लिखा था, उसे 'ऐस्साइ' की संज्ञा दी।

मॉन्तेन को आधुनिक निबन्ध का जन्मदाता माना जाता है; वे निबन्ध को विचारों, उद्धरणों और कथाओं का सम्मिश्रण मानते थे। भारत में हिन्दी 'निबन्ध' लेखन की परम्परा का आरम्भ उन्नीसवीं शताब्दी में भारतेन्दु हरिश्चंद्र से माना जाता है।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप जान सकेंगे -

निबन्ध का अर्थ, तात्पर्य क्या है ?
निबन्ध का स्वरूप कैसा होता है ?
निबन्ध कितने प्रकार के होते हैं ?
निबन्ध के प्रमुख तत्त्व कौन से हैं ?
निबन्ध साहित्य अन्य विधाओं से भिन्न क्यों है।

6.3 निबन्ध का अर्थ, तात्पर्य एवं स्वरूप

शब्दिक अर्थ में 'निबन्ध' का अर्थ है- पूर्ण रूप से बँधा हुआ, अर्थात् एक ऐसी साहित्यिक विधा जिसमें लेखक द्वारा अपने मनोभावों एवं विचारों को सम्यक् रूप से एकत्र करके कलात्मक शैली में स्वछन्दतापूर्वक अभिव्यक्त किया जाता है। संस्कृत साहित्य में स्मृतियों की व्याख्याओं, तथा भोजपत्रों में लिखित मौलिक रचनाओं को सँवारकर ग्रथित करने या बाँधने के लिए 'निबन्ध' शब्द का प्रयोग मिलता है; किन्तु हिन्दी में इस अर्थ की दृष्टि से 'निबन्ध' शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता। यद्यपि हिन्दी में निबन्ध शब्द परम्परा से आया; किन्तु अर्थ की दृष्टि से वह अंग्रेजी के 'एस्से' का पर्यायवाची है। अंग्रेजी का 'एस्से' शब्द, प्राचीन फ्रांस के 'एस्साइ' से बना; जो मूलतः लैटिन में 'एग्जाजियर' से व्युत्पन्न है; जिसका अर्थ है- निश्चिततापूर्वक परीक्षण करना।

विभिन्न विद्वानों के मत

यह तो आप जानते ही हैं कि किसी भी व्यक्ति, वस्तु अथवा विषय के संबंध में प्रत्येक व्यक्ति के अपने विचार और अपना दृष्टिकोण होता है, जो दूसरे से कुछ भिन्न होता है; यही कारण है कि निबन्ध के संबंध में भी विभिन्न भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने अपने-अपने मत प्रस्तुत किए हैं। आइये जानें , किसकी दृष्टि में निबन्ध क्या है- फ्रेंच विद्वान मॉन्तेन ने निबन्ध के लिए 'ऐस्साइ' शब्द का प्रयोग किया है; उनके लिए यह निष्छल आत्माभिव्यक्ति का पर्याय है। वे कहते हैं- "मेरी इच्छा है कि मुझे सच्चे सीधे, सहज, साधारण रूप में ही जाना जाए; उसमें कोई लाग-लपेट, दिखावा-बनाना, छल-छंद, नकलीपन ना हो, क्योंकि अपने निबंधों में मैं स्वयं को चित्रित करता हूँ अथवा मैं स्वयं ही पुस्तक का विषय हूँ।" भारतीय विद्वान जयनाथ 'नलिन' ने निबन्ध को परिभाषित करते हुए लिखा है- "निबन्ध स्वाधीन चिन्तन और निष्छल अनुभूतियों का सरस, सजीव और मर्यादित गद्यात्मक प्रकाशन है।"

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल निबन्ध को गद्य की कसौटी मानते हैं। पाश्चात्य विद्वानों द्वारा 'एस्से' के बताए गए लक्षणों के आधार पर वे, निबन्ध के विषय में कहते हैं- ''निबन्ध उसी को कहना चाहिये, जिसमें व्यक्तित्त्व अर्थात् व्यक्तिगत विषेषता हो।''

जॉनसन का मत है- "एस्से स्वछन्द मन की तरंग है, जिसमें विश्रृंखलता का प्राधान्य होता है।

बाबू गुलाबराय निबन्ध को परिभाषित करते हुए कहते हैं- "निबन्ध उस गद्य रचना को कहना चाहिये, जिसमें एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विषेष निजीपन, स्वछन्दता, सौष्ठव एवं सजीवता तथा आवश्यक संगति और सम्बद्धता के साथ किया गया हो।

उपर्युक्त परिभाषाएं को पढ़कर आप यह जान ही चुके होंगे कि सभी विद्वानों ने निबन्ध के विषय में कुछ-न-कुछ विषेष बात अवश्य कही है। आइये, अब यह भी जानें कि हिन्दी साहित्य में निबन्ध लेखन का शुभारम्भ कब से हुआ, और हिन्दी के प्रमुख निबन्धकार कौन-कौन हैं।

अट्ठारहवीं शताब्दी के मध्य में जब भारत का संपर्क अंग्रेज़ी ज्ञान-विज्ञान से बढ़ने लगा, तब पाश्चात्य साहित्य की विविध विधाओं से प्रभावित होकर, अनेक भारतीय भाषाओं के साहित्यकारों ने उनमें साहित्य सृजन करना प्रारम्भ किया। इन्हीं विधाओं में से एक विधा थी- निबन्ध; जो आज भी हिन्दी गद्य साहित्य का अभिन्न अंग है। हिन्दी 'निबन्ध' लेखन की परम्परा का आरम्भ उन्नीसवीं शताब्दी में 'भारतेन्दु हरिष्चन्द्र' से माना जाता है। उनके समकालीन लेखकों में पंड़ित बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र तथा बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' का नाम उल्लेखनीय है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, बाबू गुलाबराय, वासुदेवशरण अग्रवाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ.नगेन्द्र, कुबेरनाथ राय, महादेवी वर्मा आदि साहित्यकारों ने हिन्दी निबन्ध लेखन को उत्कर्ष पर पहुंचाया। हिन्दी साहित्य जगत में शुक्ल युग को गद्य साहित्य के सर्वांगीण विकास का युग माना जाता है, इस युग के प्रवर्तक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल थे। हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य इतिहासकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में 'निबन्ध' लेखन के

लिए चिंतन एवं विचार गाम्भीय एवं बोधगम्यता को आवश्यक तत्त्व मानकर, निबन्ध को परिभाषित करते हुए लिखा है- ''यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है, तो निबन्ध गद्य की कसौटी है।...आधुनिक पाष्चात्य लक्षणों के अनुसार निबन्ध उसी को कहना चाहिए, जिसमें व्यक्तित्व अर्थात् व्यक्तिगत विषेषता हो। बात तो ठीक है, यदि ठीक तरह से समझी जाय। व्यक्तिगत विषेषता का यह मतलब नहीं कि उनके प्रदर्षन के लिए विचारों के श्रंखला रखी ही न जाए, या जान-बूझकर जगह-जगह से तोड़ दी जाए; भावों की विचित्रता दिखाने के लिए ऐसी अर्थयोजना की जाए, जो उसकी अनुभूति के प्रकृत या लोकसामान्य रूप से कोई सम्बन्ध ही ना रखे, अथवा भाषा से सरकस वालों की-सी कसरतें या हठयोगियों के से आसान कराए जाएँ, जिनका लक्ष्य तमाशा दिखाने के सिवा और कुछ न हो।

अभ्यास प्रश्न

1. किसका कथन है-

"एस्से स्वछन्द मन की तरंग है, जिसमें विश्रृंखलता का प्राधान्य होता है।"

"यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है, तो निबन्ध गद्य की कसौटी है।"

"निबन्ध स्वाधीन चिन्तन और निश्छल अनुभूतियों का सरस, सजीव और मर्यादित गद्यात्मक प्रकशन है।"

2. आइये, एक बार दोहराएँ -

1. हिन्दी निबन्ध लेखन का प्रारम्भ कब से माना जाता है ?
2. आचार्य शुक्ल निबन्ध का आवश्यक तत्त्व किसे मानते थे ?
3. भारतीय साहित्य में निबन्ध का प्रयोग किस अर्थ में मिलता है ?
4. एस्से शब्द की व्युत्पत्ति किस शब्द किस से मानी जाती है ?
5. हिन्दी गद्य साहित्य के सर्वांगीण विकास का युग किसे कहा जाता है ?

6.4 निबन्ध के प्रकार

वर्तमान समय में निबन्ध आत्मनिष्ठता से वस्तुनिष्ठता की ओर उन्मुख हुए हैं; यही कारण है कि आज वे केवल आत्माभिव्यक्ति का माध्यम नहीं रह गए हैं, वरन् उसका फलक अत्यन्त विस्तृत हो गया है। इस आधार पर निबन्धों को मुख्यतः तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है -

1. व्यक्तिप्रधान निबन्ध
2. विषयप्रधान निबन्ध
3. ललित निबन्ध

1. व्यक्ति-प्रधान निबन्ध - निबन्ध का प्रमुख तत्त्व है- आत्मीयता; इसलिए व्यक्ति प्रधान निबन्धों में 'निज' अर्थात आत्मतत्त्व की प्रधानता होना स्वाभाविक है। जब लेखक अपनी स्मृति में अंकित किसी भाव, घटना या बातचीत के किसी प्रसंग को श्रृंखलाबद्ध करके, उसे वैचारिक, अथवा भावात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करता है, तब व्यक्ति प्रधान निबन्ध का जन्म होता है। इस

प्रकार के निबन्धों में हमें लेखक के व्यक्तित्त्व की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। किसी भी व्यक्ति में भाव एवं विचार दोनों तत्त्व विद्यमान रहते हैं, इस आधार पर व्यक्ति प्रधान निबन्धों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है-

अ. भावात्मक

आ. विचारात्मक

इ. आत्मपरक

अ. भावात्मक निबन्ध -

जिनमें हृदय की प्रधानता रहती है, उन्हें भावात्मक निबन्ध कहते हैं। भावात्मक निबन्धों में हमें- कल्पना के विस्तृत आकाष में हृदय की उन्मुक्त उड़ान, भावनाओं की तीव्रता के साथ दिखाई देती है। हर्ष-विषाद, अनुरक्ति-विरक्ति, आकर्षण-विकषर्ण हृदय के विविध उद्गार प्रयुक्त होते हैं। जब लेखक किसी परिस्थिति विशेष, घटना विषेष, अथवा अनुभव विशेष को भावावेग में कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करता है, तब ऐसी स्थिति में भावात्मक निबन्ध का जन्म होता है। भावात्मक निबन्धों में वाक्य छोटे, अनुभूति की गहनता तथा भावों की तीव्रता होती है। माधव प्रसाद मिश्र, पूर्ण सिंह, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, डॉ. रघुवीर सिंह, गुलाबराय, आदि की गणना श्रेष्ठ भावात्मक निबन्धकारों में की जाती है। भावात्मक निबन्धों का चरम विकास हमें पूर्णसिंह जी के निबन्धों में दिखाई देता है। 'आचरण की सभ्यता' में वे मौन की अभिव्यक्ति करते हुए कहते हैं- "प्रेम की भाषा शब्द रहित है। नेत्रों की, कपोलों की, मस्तक की भाषा भी शब्द रहित है। जीवन का तत्व भी शब्द से परे हैं। सच्चा आचरण-प्रभाव, शील, अचल-स्थित-संयुक्त आचरण न तो साहित्य के लम्बे व्याख्यानों से गठा जा सकता है, न वेद की श्रुतियों के मीठे उपदेश से, न अंजील से, न कुरान से, न धर्म-चर्चा से न केवल सत्संग से।"

आ. विचारात्मक निबन्ध-

जिन निबन्धों में चिन्तन-पक्ष की प्रधानता रहती है, उन्हें विचारात्मक निबन्ध कहते है। वैचारिक पक्ष की महत्ता के कारण विचारात्मक निबन्धों में हमें तार्किकता तथा विश्लेष्णात्मकता दिखाई देती है; जिससे हमें लेखक की अन्तःदृष्टि, चिंतन-मंथन के साथ ही उसके दृष्किोण की नवीनता, तथा विष्लेषण करने की क्षमता का भी ज्ञान होता है। निबन्ध के विचारात्मक होने का तात्पर्य यह नहीं है कि उसमें भावों की उपेक्षा की जाती हो, इसका अर्थ यह है कि विचारात्क निबन्धों में भाव, विचारों के अनुवर्ती बनकर रहते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने हिन्दी साहित्य का इतिहास में विचारात्मक निबन्धों को श्रेष्ठ एवं महत्वपूर्ण माना है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, श्यामसुन्दर दास, नन्द दुलारे वाजपेयी, डॉ॰ नगेन्द्र, डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल आदि के निबन्ध विचारात्मक निबन्धों के उत्कृष्ट उदाहरण है । आधुनिक युग के निबन्धकारों में प्रमुख, शुक्ल जी के शिष्य डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने अपने प्रसिद्ध निबन्ध 'गाँधी और कबीर' में उन्होंने गाँधी जी के प्रति अपने चिंतन को कौन-सी दिषा प्रदान की है, एक उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है- "प्रार्थना में गाँधी जी का ध्यान निराकार सर्वव्यापी प्रभु की ओर रहता हैं। राम जिनको वो पूजते हैं, उनकी कल्पना

का है न तुलसी-रामायण का ना वाल्मीकि का। ईश्वर अवतार लेता है अवश्य, परन्तु उसी अर्थ में जिसमें प्रत्येक मनुष्य ईश्वर का अवतार है। कबीर का अनुसरण करते हुए गांधी सबके हृदयस्थ परमात्मा की ओर संकेत कर जन समाज के सामने महत्व का अभिनव मार्ग खोल रहे है।"

इ. आत्मपरक निबन्ध-

जिनमें भावात्मक एवं विचारात्मक दोनों प्रकार के निबन्धों की विशेषताएँ विद्यमान रहती हैं, उन निबन्धों को आत्मपरक निबन्ध कहते हैं। आत्मपरक निबन्धों में लेखक के निज में विष्व को अपनी निजता का अनुभव होता है; क्योंकि इनमें लेखक अपने व्यंग्य-विनोद, सहज-सरल भाषा, मनमौजी व्यक्तित्त्व के साथ, पाठक को संवाद करता प्रतीत होता है। शान्तिप्रिय द्विवेदी, पंड़ित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी और हजारी प्रसाद द्विवेदी, विद्यानिवास निवास मिश्र आदि के निबन्ध आत्मपरक निबन्धों के सशक्त उदाहरण हैं।

2. विषय-प्रधान निबन्ध - विषय-प्रधान निबन्धों में 'परात्मकता' को अधिक महत्त्व दिया जाता है, अर्थात् विषय-प्रधान निबन्धों में वर्ण्यविषय की प्रधानता रहती है। निबन्ध की विषयवस्तु चाहे सामाजिक हो, अथवा राजनीतिक; आर्थिक हो या फिर सांस्कृतिक, साहित्यक, मनोवैज्ञानिक आदि कुछ भी हो, किन्तु अच्छे निबन्ध के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है - उसकी प्रस्तुति। जब किसी विशिष्ट विषय की केवल शुष्क एवं वैचारिक विवेचना की जाती है तो वह निबन्ध न होकर, लेख बनकर रह जाता है; इसके विपरीत यदि लेखक किसी सामान्य विषय पर लिखते समय उसमें अपने मौलिक विचारों को अनुभवों से सजीवता व जीवन्तता प्रदान करता है, तो सहज ही वह निबन्ध बन जाता है। विषयप्रधान निबन्धों को हम दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं-

(क) वर्णनात्मक

(ख) विवरणात्मक

क. वर्णनात्मक निबन्ध -

जब निबन्धकार अनुभूति, विचार, कल्पनातत्त्व तथा अभिव्यंजना कौषल के सहारे किसी व्यक्ति, वस्तु, स्थान, अथवा प्रकृति आदि के स्थिर रूप का वर्णन करता है, तब वर्णनात्मक निबन्धों का जन्म होता है। वर्णनात्मक निबन्धों में विषयवस्तु का विस्तारपूर्वक वर्णन किया जाता है; किन्तु उसकी व्याख्या नहीं की जाती। माधव प्रसाद मिश्र का 'रामलीला' महावीर प्रसाद द्विवेदी का 'प्रभात', बालकृष्ण भट्ट का 'महाकवि माघ का प्रभात वर्णान' राहुल सांकृत्यायन का 'गोमती की उपत्यका में बिखरे मंदिर' आदि में हम वर्णनात्मक निबन्ध की विशेषताएँ देख सकते हैं। कलात्मक अभिव्यंजना, प्रवाहमयी भाषा; वर्णनात्मक निबन्धों को जीवन्तता प्रदान करती है। वर्णनात्मक निबन्धों में कल्पना-तत्त्व का भी समावेश रहता है, और चिंतन-पक्ष प्रायः गौण दिखाई देता है।

ख. विवरणात्मक निबन्ध-

इन्हें आख्यात्मक अथवा कथात्मक निबन्ध भी कहा जाता है; क्योंकि इस प्रकार के निबन्धों में लेखक किसी ऐतिहासिक घटना, काल्पनिक इतिवृत्त, पौराणिक आख्यान, उत्सव-मेले, पर्वतारोहण, अथवा दुर्गम प्रदेश की यात्रा का आश्रय लेकर निबन्ध लिखता है। विवरणात्मक निबन्धों में वर्ण्यविषय का रूप गतिशील दिखाई देता है; जिसे लेखक अपनी कल्पना से रंजित करके प्रस्तुत करता है। इस प्रकार के निबन्धों में व्यंजनापूर्ण भाषा, तथा सामासिक शैली का प्रयोग मिलता है। राहुल सांकृत्यायन, रामधारी सिंह 'दिनकर' गुलाबराय आदि द्वारा लिखित इस प्रकार के अनेक निबन्ध मिलते हैं। गुलाबराय के निबन्ध 'आत्म-विष्लेषण' से एक उदाहरण दृष्टव्य है- ''तुलसीदास की भाँति न तो मैं कभी छाछी को ललचाता रहा और न बड़े होने पर सौंधे दूध की मलाई को नखरे और नाराजगी से खाया - 'छाछी को ललात जे ते राम नाम के प्रसाद , खाद खुनसात सौंधे दूध की मलाई है ।' मैंने दूध का हर एक रूप में स्वागत किया है (सपरेटा को छोड़कर) । दूध मैंने गरम ही पीना चाहा है । असावधानी मेरा जन्मगत दोष है; क्योंकि बसंत से एक दिन पूर्व ही मैं इस संसार में आया, किंतु मैं उससे (दूध से) जला नहीं हूँ , इसलिए छाछ को फूंक-फूंक कर पीने की आवश्यकता नहीं पड़ी। जीवन में पर्याप्त लापरवाही रही।''

3. ललित निबन्ध-

ललित निबन्धों की सुदीर्घ परम्परा रही है। यूँ तो स्वतन्त्रता से पूर्व भी ललित निबन्ध लिखे गए, किन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात हमें ललित निबन्धों का एक स्वतन्त्र एवं सुव्यवस्थित रूप दिखलाई देता है। जब निबन्धकार आत्मीयता और खुलेपन से कथ्य में निहित सौंदर्य को निखारता है, अर्थात् किसी भी मनःस्थिति अथवा भाव को अभिव्यक्त करने के लिए वह अपनी अनुभूतियों को निष्छलता एवं सरसता से पाठक के समक्ष रख देता है, तब ललित निबन्ध का जन्म होता है। आधुनिक युग के महत्त्वपूर्ण निबन्धकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने ललित निबन्धों के माध्यम से सर्जनात्मक साहित्य की सरसता एवं सौंदर्य को अत्यन्त प्रभावशाली ढ़ंग से प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत है 'अशोक के फूल' से एक उदाहरण- ''कहते हैं, दुनियाँ बड़ी भुलक्कड़ है। केवल उतना ही याद रखती है जितने में उसका स्वार्थ सधता है बाकी को फेंककर आगे बढ़ जाती है। शायद अशोक ने उसका स्वार्थ नहीं साधा। क्यों उसे वह याद रखती ? सारा संसार स्वार्थ का अखाड़ा ही तो है।'' व्यंग्यात्मकता, कोमलकान्त पदावली, माधुर्य गुणयुक्त भाषा तथा गद्यात्मक लालित्य जैसी विलक्षणता से युक्त होने के कारण, इन्हें ललित निबन्ध कहा जाता है। ललित निबन्धकारों में हजारी प्रसाद द्विवेदी, बालमुकुन्द गुप्त, सरदार पूर्णसिंह, सच्चिदानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', बनासीदास चतुर्वेदी, माखनलाल चतुर्वेदी, प्रभाकर माचवे, विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथराय आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। रामविलास शर्मा, अमृतराय नागर, गोपाल प्रसाद व्यास, हरिष्कर परसाई, शरद जोषी आदि हास्य-व्यंग्यकारों का भी ललित निबन्धों की विकासयात्रा में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। डा. नगेन्द्र ने ललित निबन्धों के विषय में लिखा है- ''ललित निबंध का प्राणतत्त्व व्यक्तित्व का अभिव्यंजन ही है। रचना में

व्यक्तित्व की खोज, आत्मानुभूति की विवृति, और वैयक्तिकता का रागमय संस्पर्ष पाठक और विवेचक, दोनों जरूरी समझने लगे है।"

ललित निबन्धों का पल्लवन भावात्मक निबन्धों से बताते हुए डा. हरिमोहन ने लिखा है- "ललित निबंध का पल्लवन भावात्मक निबंधों से हुआ है। भावात्मक निबंधों की ही भाँति भावात्मकता, कल्पना प्रणवता, सरसता, रोचकता, पाण्डित्य और व्यापक ज्ञानस्रोत- ललित निबंध के लिए भी अनिवार्य है। ललित निबंध 'व्यक्तिप्रधान' व्यक्तित्व प्रधान अथवा व्यक्तिगत आत्मपरक लघु गद्यखण्ड है, जिसमें काव्यात्मक भाषा का प्रयोग होता है।"

आइये, अब हम एक निबन्धों के प्रकार एवं उनकी पहचान दोहराएँ -

अभ्यास प्रश्न

3. रिक्त स्थान की पूर्ति करें-

1. .....आख्यात्मक अथवा कथात्मक निबन्ध भी कहा जाता है।
2. आत्मपरक निबन्धों में.....दोनों प्रकार के निबन्धों की विशेषताएँ विद्यमान रहती हैं।
3. ..... परात्मकता को अधिक महत्त्व दिया जाता है।
4. ..... लेखक के व्यक्तित्त्व की स्पष्ट छाप दिखाई देती है।
5. ललित निबंध का पल्लवन ..... निबन्धों से हुआ है।

4. अपने शब्दों में लिखिये-

1. 'निबन्ध' किस भाषा का पर्यायवाची शब्द हैं ?
2. व्यक्ति-प्रधान निबन्ध से आप क्या समझते हैं ?
3. भावात्मक और विचारात्मक निबन्ध में क्या अंतर है ?
4. वर्णनात्मक और विवरणात्मक निबन्ध में क्या अंतर है ?
5. ललित निबन्ध की प्रमुख विशेषताएँ क्या हैं ?

6.5 निबन्ध : तात्त्विक विवेचन

स्वछन्दता,आत्मनिष्ठता, वैचारिकता, भावात्मकता, तार्किकता, विषयनिष्ठता, शृंखलाबद्धता, व्यंग्यात्मकता, कलात्मकता, जीवन्तता तथा संक्षिप्तता निबन्ध के प्रमुख तत्त्व हैं।

स्वच्छन्दता - वैयक्तिक्ता के कारण निबन्ध लेखन में स्वच्छन्दता आना स्वाभाविक है; किन्तु स्वच्छन्दता का आशय विश्रृंखलता नहीं है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार - ''निबन्ध लेखक अपने मन की प्रवृत्ति के अनुसार स्वच्छन्द गति से इधर-उधर फूटी हुई सूत्र शाखाओं पर विचरता हुआ चलता है, यही उसकी अर्थ सम्बन्धी व्यक्तिगत विशेषता है।.....निबंध लेखक जिधर चलता है, उधर अपनी संपूर्ण मानसिकता सत्ता के साथ अर्थात् बुद्धि तथा भावात्मक हृदय दोनों लिए हुए। जो करुण प्रकृति के हैं उनका मन किसी बात को लेकर अर्थ-सम्बन्ध-सूत्र

पकड़े हुए करूण स्थलों की ओर झुकता और गम्भीर वेदना का अनुभव करता चलता है। जो विनोदशील हैं उसकी दृष्टि उसी बात को लेकर उसके ऐसे पक्षों की ओर दौड़ती है, जिन्हें सामने पाकर कोई हँसे बिना नहीं रह सकता।"

आत्मनिष्ठता - निबन्ध में लेखक अपने व्यक्तिगत विचारों एवं हृदयगत भावों की अभिव्यक्ति करता है। यह सत्य है कि निबन्ध की यात्रा आत्मीयता से प्रारम्भ हुई; किन्तु उसकी विकास-यात्रा विषयवस्तु की प्रेरणा से वैचारिक धरातल का आश्रय लेकर चलती रही। गद्य की अन्य विधाओं में लेखक अपने व्यक्तित्त्व को छिपा सकता है, परन्तु निबन्ध में वह चाहकर भी ऐसा नहीं कर सकता; क्योंकि आत्मनिष्ठता निबन्ध का एक अनिवार्य तत्त्व है। यही कारण है कि निबन्ध में लेखक का व्यक्तित्त्व इस प्रकार भासित होता है- जैसे निर्मल जलाशय में आकाश।

वैचारिकता - गद्य की अन्य विधाओं- कहानी, उपन्यास, नाटक, संस्मरण, जीवनी आदि की अपेक्षा निबन्ध में बौद्धिकता की अधिक प्रधानता होती है। डॉ.शिव प्रसाद मिश्र लिखते हैं- ''निबन्ध वही कहा जा सकता है जो विचारों को उत्तेजना दे।'' यद्यपि व्यक्ति के अनुरूप निबन्धों में मनोविकारों का गुम्फन होता है किन्तु लेखक का ध्यान मात्र समरसता पर केन्द्रित नहीं होता। वह अपनी वैचारिक-शक्ति के माध्यम से, पाठक की ज्ञान पिपासा को भी जाग्रत करता है। निबन्ध लेखन के लिए वैचारिक क्षमता का होना नितान्त आवश्यकता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल विचारात्मकता को निबन्ध का आवश्यक तत्त्व मानते थे, यही कारण है कि उन्होंने अधिकांश निबन्ध विश्लेषणात्मक शैली में लिखे है। उदाहरणार्थ उनके 'भय' निबन्ध की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं- "भय की इस वासना का परिहार क्रमश: होता चलता है। ज्यों-ज्यों वह नाना रूपों में अभ्यस्थ होता जाता है, त्यों-त्यों उसकी धड़क खुलती जाती है। इस प्रकार अपने ज्ञान बल, हृदय बल और शरीर बल की वृद्धि के साथ वह दु:ख की छाया मानो हटाता चलता है। समस्त मनुष्य-जाति की सभ्यता के विकास का भी यही क्रम रहा है।"

भावात्मकता - निबन्ध का एक प्रमुख तत्त्व है आत्मीयता; अर्थात् लेखक का व्यक्तिगत व्यक्तित्त्व। निबन्ध लेखन के लिए बुद्धितत्त्व के साथभावतत्त्व का होना नितान्त आवश्यक है, भावतत्त्व के अभाव में निबन्ध लेख बनकर रह जाता है। निबंध में विचार होते हैं, किन्तु वे मस्तिष्क के शुष्क चिन्तन पर ही आधारित नहीं होते, उनके पीछे हृदय की तरल रागात्मकता भी होती है। मनोवैज्ञानिकता तथा गीतात्मकता के कारण निबन्धों में जिस सजीवता एवं सरसता के दर्शन होते हैं, वह भावात्मकता का ही परिणाम है। निबन्ध के भावात्मकता के विषय में डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त का कथन है- "निबंध में विचारों का प्रतिपादन करते हुए भी उसमें भावोत्तेजन की क्षमता होनी आवश्यक है। निबंध में भावोत्तेजना का यह गुण तभी आ सकता है, जब कि इनमें रचयिता के व्यक्तित्व का जीवित स्पर्श हो।"

संक्षिप्तता - आज के व्यस्तम जीवन में व्यक्ति के पास इतना समय भी नहीं है कि वह स्वयं को समझ सके। ऐसी स्थिति में विस्तृत निबन्धों को पढ़ने के लिए समय निकालना असंभव प्रतीत होता है। यही कारण है कि वर्तमान काल में संक्षिप्तता निबन्ध का आवश्यक गुण प्रतीत होता है। निबन्ध में वैचारिक गहनता के साथ, सरसता एवं सारगर्भितता भी होनी चाहिये, जिससे कि

प्रतिपाद्य विषय को सहज ही पाठक तक पहुँचाया जा सके। संक्षिप्तता को निबन्ध का महत्त्वपूर्ण तत्त्व मानते हुए बाबू गुलाबराय ने कहा है- "निबन्ध उस गद्य रचना को कहना चाहिये, जिसमें एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विषेष निजीपन, स्वछन्दता, सौष्ठव एवं सजीवता तथा आवश्यक संगति और सम्बद्धता के साथ किया गया हो।"

तार्किकता - निबन्ध में विषयवस्तु के माध्यम से लेखक अपना दृष्टिकोण प्रकट करता है, इसे प्रकट करते हुए वह जिस शृंखलाबद्धता का सहारा लेता है वही निबन्ध की तार्किकता है। तार्किकता द्वारा लेखक अपने मौलिक विचारों को ऐसे प्रस्तुत करता है कि उसके विचारों से पाठक अभिभूत हो उठे। तार्किकता के अभाव में विषयगाम्भीर्य समाप्त हो जाएगा, और निबन्ध अपरिपक्व रचना बनकर रह जाएगी। इसके अतिरिक्त अपनी बात को पुष्ट करने के लिए, मीमांसा तथा दार्शनिक विषयों को स्पष्ट करने के लिए भी तार्किकता की आवश्यक ता पड़ती है। अतः तार्किकता निबन्ध का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है।

कलात्मकता - कलात्मकता से तात्पर्य है - उसके प्रस्तुतिकरण से; प्रस्तुतिकरण, अर्थात् ऐसी भाषा एवं शैली का प्रयोग करना जो निबन्ध को सर्वग्राह्य बनाने के साथ, अपनी उत्कृष्टता, सरसता, प्रौढ़ता तथा लालित्य से पाठक को आदि से अन्त तक पढ़ने के लिए उसे विवश कर दे। उत्कृष्ट निबन्ध के लिए आवश्यक है कि उसकी भाषा-शैली अर्थात् उसका प्रस्तुतिकरण कलात्मक होना चाहिए, ताकि वह पाठक को अपने आकर्षणपाश में बाँधे रखे। कलात्मकता साधारण विषय को भी सुरूचिपूर्ण आकार प्रदान कर देती है। निबन्ध की श्रेष्ठता उसके अनुभूति पक्ष तथा अभिव्यक्ति पक्ष पर निर्भर करती है। अभिव्यक्ति पक्ष का संबंध रचनात्मक कला के सौंदर्य से है; और कलात्मक पक्ष के मुख्यतः चार अंग हैं - भाषा-शैली , अलंकार, ध्वनि, और औचित्य।

तारतम्यता - जब लेखक अपनी हृदयानुभूति को अथवा अपने विचारों को किसी एक विषय के माध्यम से शीर्षक, प्रस्तावना, विस्तार, तथा परिणाम के आधार पर विकसित करता है, तो उसमें आदि से अन्त तक तारतम्यता बनी रहती है। यदि निबन्ध में आरम्भ, मध्य और अन्त में संगति नहीं होगी तो वह मात्र प्रलाप बनकर रह जाएगा। निबन्ध का प्रारम्भ भूमिका द्वारा होता है; जिसमें लेखक विषय का संकेतात्मक परिचय देता है। निबन्ध के मध्य भाग में लेखक, विषय को अपने बौद्धिक विवेचन, भावनाओं, अनुभवों, व्यंग्यों तथा विवरण आदि के माध्यम से विस्तार देता है; तथा अन्ततः प्रभावोत्पादक भाषा-षैली के माध्यम से सम्पूर्ण विवेचन का निचोड़ प्रस्तुत करता है।

भाषा - सामान्यतः भाषा संप्रेषणीयता , अर्थात् अपनी बात को दूसरे तक पहुँचाने का सहज माध्यम है, किन्तु निबन्ध लेखन में भाषा का महत्त्व इससे कुछ अधिक है; क्योंकि इसमें निबंधकार के लिए भाषा, केवल अपने भावों एवं विचारों को पाठक तक पहुँचाने का साधन मात्र नहीं होती। इसमें लेखक विषय को प्रभावषाली बनाने के लिए शब्द-चयन, वाक्य-रचना तथा भाषा में नवीनता लाकर निबन्ध को निखारने का प्रयास भी करता है। यही कारण है कि निबन्ध में हमें, कहीं सरल शब्द और छोटे वाक्य दिखाई देते हैं; तो कहीं कठिन शब्दों तथा

अनेक उपवाक्यों से मिलकर बने लम्बे वाक्यों का प्रयोग मिलता है। यह सत्य है कि निबन्ध की भाषा और शैली के माध्यम से ही हम, निबन्ध-लेखक के व्यक्तित्त्व से भी परिचित होते हैं; किन्तु निबन्ध की लोकप्रियता के लिए आवश्यक है कि उसकी भाषा ऐसी हो, जो विषयवस्तु को सहजग्राह्य बनाने में सफल हो सके।

शैली - प्रत्येक रचनाकार का व्यक्तित्त्व दूसरे से भिन्न होता है, यही कारण है कि एक लेखक की निबन्ध-शैली दूसरे से भिन्न होती है। इसके अतिरिक्त निबन्धकार अपने भावों एवं विचारों को जिस रूप में प्रस्तुत करता है, अभिव्यक्ति के उस तरीक़े को ही निबन्ध की शैली कहा जाता है। कुछ लोग अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए किसी लोकोक्ति-मुहावरे, दोहे-चौपाई, श्लोक, अथवा जीवन-अनुभवों के उदाहरणों का सहारा लेते हैं, तो कुछ सीधे-सपाट तरीक़े से अपनी बात कहते हैं; कुछ अपनी बात इतनी आत्मीयता से कहते हैं कि पाठक भी उस भाव-प्रवाह में बहता चला जाता है, और कुछ लेखक इतना गहन वैचारिक-विष्लेषण प्रस्तुत करते हैं कि हम उनके चिंतन-मंथन और अंतर्दृष्टि का लोहा माने बिना नहीं रहते। निबन्ध बोधगम्य बन सके इसके लिए आवश्यक है कि निबन्धकार शब्द-चयन करते समय, तथा वाक्य-संरचना समय इस बात ध्यान रखे कि वे दुरूह व जटिल न हों; क्योंकि भाषा-शैली ही वह संजीवनी है जो निबन्ध को जीवन्तता प्रदान करती है।

गद्यात्मकता - उपर्युक्त तत्त्वों के अतिरिक्त निबन्ध का सर्वाधिक प्रमुख तत्त्व है - गद्यात्मकता; किन्तु केवल गद्यात्मक शैली में लिखे जाने से ही कोई रचना निबन्ध नहीं कही जा सकती। यद्यपि निबन्धों में उदाहरण स्वरूप किसी व्यक्ति के जीवन का उल्लेख हो सकता है, किन्तु लेखक का उद्देश्य उस व्यक्ति का जीवनचरित्र प्रस्तुत करना नहीं होता, इसलिए यह जीवनी से भिन्न है; निबन्ध में किसी स्थान विशेष की यात्रा का ज़िक्र भी हो सकता है, किन्तु यात्रावृत्तान्त प्रस्तुत करना लेखक का उद्देश्य नहीं होता; इसी तरह निबन्धों में कहानी की रंजकता, नाटक की रमणीयता, संस्मरण की मधुरता तथा रेखाचित्र की चित्रात्मकता हो सकती है; किन्तु लेखक का उद्देष्य न कथा कहना, और न नाटक, संस्मरण या रेखाचित्र आदि लिखना ही होता है।

निबन्ध के जनक मोंतेन एवं सभी पाश्चात्य समीक्षकों, तथा हिन्दी के ग्रंथकारों- हजारीप्रसाद द्विवेदी बाबू गुलाबराय, जयनाथ नलिन आदि ने निबन्ध में व्यक्तित्त्व की प्रधानता को स्वीकार किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल निबन्ध में आत्मनिष्ठता के साथ, विचार गाम्भीर्य और भाषा की सामासिकता को अधिक महत्त्व देते हैं। निबन्ध का उद्देश्य एक ओर मनोरंजन के साथ जनजागृति लाना या समसामयिक समस्याओं का उद्घाटन करना है, तो दूसरी और भाव एवं कल्पना का प्राधान्य होने के कारण कलात्मकता पाठक को आद्योपान्त पढ़ने के लिए विवश कर भी देती है। निबन्धकारों के एक वर्ग ने राचन्द्र शुक्ल की भाँति निबन्ध को गम्भीर विचार-प्रकाशक माना तो दूसरे वर्ग ने 'विनोदी तत्वों' को भी निबन्ध के लिए आवश्यक माना। बाबू गुलाबराय ने 'काव्य के रूप' में निबंध के अनेक तत्त्वों को समेटते हुए निबंध की एक सन्तुलित परिभाषा देते हुए लिखा है- "निबंध उस गद्य रचना को कहते हैं जिनमें एक सीमित आकार के

भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विषेष निजीपन, स्वच्छता, सौष्ठव और सजीवता तथा आवश्यक संगति और सम्बद्धता के साथ किया गया हो।"

डॉ. नलिन ने निबंध विषयक उपर्युक्त सभी परिभाषाओं का निचोड़ प्रस्तुत करते हुए 'हिन्दी निबन्धकार' में लिखा है- "किसी विषय पर स्वाधीन चिन्तन और निष्छल अनुभूतियों का सरस , सजीव और मर्यादित गद्यात्मक प्रकाषन ही निबन्ध है।"

अभ्यास प्रश्न

4. नीचे लिखे कथनों में से सही और ग़लत को छाँटिये -

(क) निबन्ध का जनक मांतेन को माना जाता है। (सही/ग़लत)

(ख) एस्से और निबन्ध के अर्थ में अन्तर होता है। (सही/ग़लत)

(ग) निबन्ध में व्यक्ति की आत्मकथा होती है। (सही/ग़लत)

(घ) निबन्ध गद्य-पद्य दोनों शैलियों में लिखे जाते हैं। (सही/ग़लत)

(ङ) आत्मनिष्ठता निबन्ध का अनिवार्य तत्त्व है।(सही/ग़लत)

6. निबन्ध शब्द का अर्थ एवं स्वरूप स्पष्ट कीजिये।

.....

.....

.....

.....

7. निबन्ध कितने प्रकार के होते हैं ?

.....

.....

.....

.....

8. निबन्ध के प्रमुख तत्त्व कौन-कौन से हैं ?

.....

.....

.....

.....

9. निबन्ध के तत्त्वों से आप क्या समझते हैं, तथा उनका क्या महत्व है ? (दस पंक्तियों में उत्तर दीजिये)

.....

.....

.....

.....

.....

.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....

6.6 सारांश

इस इकाई को पढ़कर आप जान चुके हैं कि निबन्ध का अर्थ क्या है . साथ ही साथ आप ये भी जान चुके होंगें कि निबंध का तात्पर्य और उसकी प्रमुख परिभाषाएं क्या हैं । इसके साथ ही आपने यह भी जाना कि निबन्ध कितने प्रकार के हो सकते हैं, निबंध का स्वरूप क्या है तथा निबन्ध के तत्त्व कौन-कौन से हैं। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप हिन्दी साहित्य के अंतर्गत निबंध विधा का सम्पूर्ण परिचय भी प्राप्त कर चुके हैं

6.7 शब्दावली

1.	आत्मनिष्ठ	-	अपने में लगा रहने वाला।
2.	बोधगम्यता	-	समझ में अपने लायक या जिसे आसानी से समझा जा सके।
3.	आकर्षणपाश	-	खिंचाव से बाँधकर रखना,
4.	विवरणात्मक	-	व्याख्या संबंधी
5.	वैयक्तिक	-	व्यक्तिगत अर्थात जिसमें अपना सोच-विचार चिंतन दिखाई दे।
6.	विशृंखलता	-	बिखरा हुआ
7.	विश्लेषणात्मकता	-	छान-बीन संबंधी
8.	लालित्य	-	रमणीयता
9.	आद्योपान्त	-	प्रारम्भ से अन्त तक
10.	दुरूह	-	कठिन
11.	आत्माभिव्यक्ति	-	अपने मनोभावों को प्रकट करना
12.	जटिल	-	उलझा हुआ
13.	सहजग्राह्य	-	आसानी से समझ आने वाला
14.	शृखंलाबद्धता	-	क्रम युक्त
15.	प्रभावोत्पादक	-	प्रभाव डालने वाला
16.	तारतम्यता	-	क्रमबद्धता
17.	तार्किकता	-	सुविचारित बात, चमत्कारपूर्ण कथन

18. तात्त्विक विवेचन - परीक्षण के आधार पर किसी तत्त्व के विषय में विस्तार से बताना

6.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धान्त, गणपतिचन्द्र गुप्त
3. साहित्य सहचर, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
4. साहित्य शास्त्र, डॉ. रामशरण दास गुप्ता, प्रो. राजकुमार शर्मा
5. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास,बच्चन सिंह
6. हिन्दी साहित्य कोश, धीरेन्द्र वर्मा

6.9 अभ्यास प्रश्न के उत्तर

1. **किसका कथन हैः-**

जॉनसन

रामचन्द्र शुक्ल

जयनाथ 'नलिन'

2. **आइये दोहराएँ -**

अ. उन्नीसवीं शताब्दी से।

आ. चिंतन, विचारगाम्भीर्य एवं बोधगम्यता।

इ. मौलिक रचनाओं को ग्रथित करने या बाँधने के लिए।

ई. लैटिन के एग्जाजियर से।

उ. शुक्ल युग से।

3. **रिक्त स्थानों की पूर्ति:-**

क. विवरणात्मक

ख. भावात्मक और विचारात्मक

ग. विषय-प्रधान

घ. व्यक्ति-प्रधान

ङ. भावात्मक

4. **अपने शब्दों में लिखिये-**

(क) अंग्रेजी के 'एस्से'।

(ख) जिन निबन्धों में व्यक्ति की अर्थात् आत्मतत्त्व की प्रधानता होती है।

(ग) भावात्मक निबन्धों में भावों की प्रधानता होती है। वाक्य छोटे, तथा भाषा काव्यात्मक होती हैं। विचारात्मक निबन्धों में चिंतन की प्रधानता होती है, तथा भाव विचारों के अनुवर्ती बनकर रहते हैं।

(घ) वर्णनात्मक निबन्धों में वर्ण्यविषय का रूप स्थिर, तथा विवर्णनात्मक निबन्धों में गतिषील दिखाई जाता है। वर्णनात्मक निबन्धों में विषयवस्तु का वर्णन विस्तारपूर्वक किया जाता है, और विवर्णनात्मक निबन्धों में उसकी व्याख्या की जाती है।

(ङ) ललित निबन्धों में लेखक अपने भावों एवं विचारों को निश्छलता एवं सरसतापूर्वक पाठक के समक्ष रख देता है। आत्मीयता के कारण इसकी भाषा में काव्यात्मक-सौंदर्य दिखाई देता है।

5. सही-ग़लत:-

(क) सही, (ख) सही, (ग) ग़लत, (घ) ग़लत, (ङ) सही

6. निबन्ध का शाब्दिक अर्थ है- भलीभाँति बाँधना। निबन्ध एक ऐसी गद्य रचना है- जिसमें निबन्धकार किसी साधारण अथवा विशेष विषय पर अपने मौलिक चिंतन तथा गम्भीर विचारों को सोद्श्य, कलात्मक ढ़ंग से प्रस्तुत करता है।

7. निबन्ध मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं- 1. व्यक्ति-प्रधान, और 2. विषय-प्रधान।

6.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1 . निबन्ध का अर्थ बताते हुए, उसका तात्विक विवेचन कीजिये ?

2 . हिन्दी साहित्य के अंतर्गत निबंध विधा का संक्षिप्त विवेचन कीजिए तथा निबंध का महत्त्व भी स्पष्ट कीजिए ?

इकाई 7 अन्य गद्य विधाओं का स्वरूप एवं तात्त्विक विवेचन - भाग 1

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 गद्य साहित्यः अर्थ एवं उसके विविध रूप
7.3.1 साहित्य का अर्थ एवं स्वरूप
7.3.2 परिभाषाएँ
7.4 विविध विधाओं का विश्लेशण
7.4.1 आत्मकथा
7.4.2 जीवनी
7.4.3 आलोचना
7.4.4 व्यंग्य
7.6 सारांश
7.7 शब्दावली
7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
7.10 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाई में आपने जाना कि 'निबन्ध' शब्द का अर्थ एवं तात्पर्य क्या है? उसका स्वरूप कैसा होता है? निबन्ध के तत्त्व कौन-कौन से हैं, उनकी विवेचना कैसे की जाती है; तथा निबन्ध लेखन, साहित्य की अन्य विधाओं से किस तरह भिन्न है।

आप जानते ही होंगे कि साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है; लेकिन क्यों, क्या कभी सोचा है? आइये हम आपको बताते हैं- मनुष्य स्वभावतः जिज्ञासु प्राणी है; यही कारण है कि पाषाण युग से विकास करते-करते आज वह उद्योग के क्षेत्र में भी निरन्तर विकास करता चला जा रहा है। विकास न कोई चमत्कार है, और न अनायास होने वाली कोई घटना; बल्कि आज वह एक प्रक्रिया है, जो मानव के बौद्धिक विकास का परिणाम है। यही कारण है कि धीरे-धीरे लेखक और पाठक दोनों की मनोवृत्तियाँ परिवर्तित हुईं, और नवीन प्रयोगों के प्रति उनकी अभिरुचि जाग्रत होने लगी। बौद्धिक और सामाजिक परिवर्तन के साथ ही, साहित्य का पारम्परिक स्वरूप भी परिवर्तित होता चला गया। यही कारण था कि कथासाहित्य के गर्भ में छिपे स्मारक साहित्य के बीज अपना स्वतन्त्र अस्तित्त्व तलाशने लगे; परिणामस्वरूप स्मारक साहित्य का जन्म हुआ और उसकी विविध शाखाएँ- संस्मरण, आत्मकथा, यात्रावृत्तान्त, व्यंग्य, रेखाचित्र आदि विकसित होकर फलने-फूलने लगीं।

इस खण्ड की अगली इकाई में आप, हिन्दी गद्यसाहित्य की अन्य विधाओं- डायरी, पत्र, यात्रावृत्तान्त, संस्मरण तथा रेखाचित्र का स्वरूप एवं इनके तात्त्विक विवेचन का अध्ययन करेंगे।

7.2 उद्देश्य

निबन्ध एवं अन्य गद्य विधाएँ, यह स्नातक प्रथम वर्ष, गद्य साहित्य का द्वितीय प्रश्न पत्र है। इसमें हम आपको गद्य साहित्य की अन्य विधाओं के स्वरूप, तथा उनके तात्त्विक विवेचन से परिचित कराएँगे। इस इकाई को पढ़कर आप जान सकेंगे :-

- गद्य साहित्य की प्रमुख विधाएँ कौन-कौन सी हैं।
- गद्य की अन्य विधाओं से क्या तात्पर्य है, तथा उनके नाम क्या हैं।
- आत्मकथा किसे कहते है।
- आत्मकथा का स्वरूप और उसका तात्त्विक विवेचन।
- जीवनी का अर्थ, स्वरूप और उसका तात्त्विक विवेचन।
- जीवनी और आत्मकथा में अन्तर; (हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा, तथा शरतचन्द्र की जीवनी के अंश के माध्यम से)।
- आलोचना का अर्थ; प्रमुख आलोचक और उनकी रचनाएँ।
- आलोचना का स्वरूप, और उसका तात्त्विक विवेचन।
- व्यंग्य का अर्थ; प्रमुख व्यंग्यकार और उनकी रचनाएँ।

अब तक आप हिन्दी गद्य साहित्य की विशिष्ट विधा निबन्ध के विशय में भलीभाँति जान गए होंगे। गद्य साहित्य की अन्य विधाओं के विशय में जानने से पहले आइये, यह भी समझ लें कि साहित्य शब्द का क्या अर्थ है, साहित्य हमें किस-किस रूप में उपलब्ध होता है, तथा गद्यात्मक साहित्य कितने प्रकार का होता है।

7.3 गद्य साहित्यः अर्थ एवं उसके विविध रूप

7.3.1 साहित्य का अर्थ एवं स्वरूप

सामान्यतः किसी भी विशय की जानकारी प्रदान करने वाली लिखित सामग्री को 'लिट्रेचर' कहा जाता है; और 'साहित्य' शब्द का प्रयोग हम अंग्रेज़ी के 'लिट्रेचर' शब्द के रूप में करते हैं। ऐसे में अक़्सर हमारे मस्तिष्क में यह प्रश्न आता है कि आखिर साहित्य है क्या?

तो आइये, हम आपको बताते हैं- ऐसा लेखन जो जनहित के उद्देश्य से लिखा गया हो, जिसमें स्थायित्त्व हो, अर्थात् कृति का महत्त्व स्थायी बना रहे; जिसमें रचनाकार के व्यक्तित्त्व का प्रतिफलन हो अर्थात् उसकी विचारधारा, अनुभूति आदि का प्रकाशन हो, और जिसमें रागात्मकता हो अर्थात् लेखक अपने भाव, कल्पना, बुद्धि तथा रचनात्मक कौशल से पाठक के हृदय को आन्दोलित एवं आनन्दित करने में सफल हो जाए; उसे साहित्य कहा जाता है। साहित्य के विशय में अनेक भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने अपने-अपने मत प्रकट किए हैं, उनमें से प्रमुख लोगों की साहित्य संबंधी कथन इस प्रकार हैं-

संस्कृत साहित्य में 'साहित्य' की व्युत्पत्ति संबंधी दो मत मिलते हैं, पहला- 'हितेन सहितं साहित्यमं' अर्थात् जिसमें हित भाव निहित हो; और दूसरा- 'सहितस्य भावं इति साहित्यम्' अर्थात् जिसमें सहित का भाव निहित हो। हिन्दी-साहित्य-कोश' में 'साहित्य' शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा गया है- 'साहित्य' शब्द 'सहित' शब्द में यत् प्रत्यय के योग से बना है; जिसका अर्थ होता है- शब्द और अर्थ का सहभाव अर्थात् साथ होना।

7.3.2 परिभाषाएँ

'साहित्य-विज्ञान' में साहित्य कि सामान्य परिभाषा इस प्रकार निर्धारित की गयी है- "साहित्य भाषा के माध्यम से रचित वह सौन्दर्य या आकर्षण से युक्त रचना है, जिसके अर्थ-बोध से सामान्य पाठक को आनन्द की अनुभूति होती है।"

अरस्तु का कथन है- "शब्दों के माध्यम से प्रस्तुत अनुकृति ही काव्य या साहित्य है।"

शैली के विचार से- "काव्य सर्वाधिक सुखी एवं हृदयों के श्रेष्ठतम क्षणों का लेखा-जोखा है।"

सिडनी का मत है- "काव्य या साहित्य वह अनुकरणात्मक कला है, जिसका लक्ष्य शिक्षा एवं आनन्द प्रदान करना है।"

कालरिज के अनुसार- "काव्य, रचना का वह विशिष्ट प्रकार है जिसका तात्कालिक लक्ष्य प्रसन्नता प्रदान करना होता है।"

साहित्य लेखन की मुख्यतः दो विधाएँ प्रचलन में हैं, पहली- पद्य; इसके अन्तर्गत- कविता, गीत, मुक्तक, खण्डकाव्य और महाकाव्य आते हैं; और दूसरी- गद्य, इसके अन्तर्गत-

कहानी, उपन्यास, निबन्ध तथा स्मारक साहित्य आते हैं। इनके अतिरिक्त एक और विधा भी है- जिसे मिश्रित साहित्य कहा जाता है अर्थात् ऐसा साहित्य जिसमें पद्य एवं गद्य दोनों का प्रयोग मिलता है, जैसे- नाटक, और चम्पू (संस्कृत साहित्य की विधा)।

हिन्दी में, गद्यात्मक साहित्य प्रमुखतः तीन रूपों का मिलता है- आख्यानात्मक, निबन्धात्मक और विश्लेशणात्मक। उपन्यास और कहानी आख्यात्मक साहित्य के अन्तर्गत आते हैं; निबन्धात्मक साहित्य के अन्तर्गत- भावात्मक, विचारात्मक, वैयक्तिक तथा वर्णनात्मक निबन्ध आदि, तथा यात्रा साहित्य, डायरी, पत्राचार, रिपोतार्ज, संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा, शब्दचित्र, एकांकी आदि आते हैं। विश्लेषणात्मक साहित्य के अन्तर्गत दो प्रकार का साहित्य आता है- पहला- समालोचनात्मक अर्थात् आलोचना साहित्य; और दूसरा- इनके अतिरिक्त गद्य में जो भी शेश रह जाता है, वह सब इसी के अन्तर्गत आता है।

अभ्यास प्रश्न 1

क) रिक्त स्थानों की पूर्तिः-

1. हिन्दी में, गद्यात्मक साहित्य प्रमुखतः ..... रूपों का मिलता है।
2. उपन्यास और कहानी .....साहित्य के अन्तर्गत आते हैं।
3. समालोचनात्मक साहित्य.....साहित्य के अन्तर्गत आता है।
4. संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा.....साहित्य के अन्तर्गत आते हैं।
5. कहानी, उपन्यास, निबन्ध तथा स्मारक साहित्य..... के अन्तर्गत आते हैं।
6. जिस साहित्य में ..... दोनों का प्रयोग मिलता है उसे.....कहते हैं।
7.....संस्कृत साहित्य की विधा है।

7.4 विविध विधाओं का विश्लेशण

7.4.1 आत्मकथा

जब किसी रचना में साहित्यकार द्वारा अपने व्यक्तित्त्व का विवेचन-विश्लेशण किया जाता है, तब उसे आत्मकथा कहा जाता है। आत्मकथा में साहित्यकार अपने सम्पूर्ण जीवन की कथा को साहित्यक रूप में प्रस्तुत करता है। इसमें लेखक अपने जीवन में घटित घटनाओं को इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि वह संस्कृति, इतिहास और साहित्य का अनूठा संगम बन जाती है। हिन्दी साहित्य-कोश में आत्मकथा को परिभाषित करते हुए लिखा है- "आत्मकथा लेखक के अपने जीवन से सम्बद्ध वर्णन हैं। आत्मकथा के द्वारा अपने बीते हुए जीवन का सिंहावलोकन और एक व्यापक पृष्ठभूमि में अपने जीवन का महत्त्व दिखलाया जाना सम्भव है।"

आलोचक शिप्ले ने आत्म-कथा का स्वरूप स्पष्ट करते हुए लिखा है- "यद्यपि आत्म-कथा और संस्मरण देखने में समान साहित्य स्वरूप मालूम पड़ते हैं, किन्तु दोनों में अन्तर है। यह अन्तर बल सम्बन्धी है। एक में चरित्र में बल दिया जाता है और दूसरे में बाह्य घटनाओं और वस्तु आदि वर्णनों पर ही लेखक की दृष्टि रहती है। संस्मरण में लेखक उन अपने से भिन्न

व्यक्तियों, वस्तुओं, क्रियाकलापों आदि के विशय में संस्मरणात्मक चित्रण करता है, जिनका उसे अपने जीवन में समय-समय पर साक्षात्कार हो जाता है।.....आत्म-कथा विशाल जीवन सामग्री की पृष्ठभूमि में से कुछ महत्वपूर्ण बातों को लेकर उनको व्यवस्थित ढंग से पाठकों के समक्ष रखता है या फिर अपनी अर्न्तदृष्टि से उनको संस्मरण रूप में प्रस्तुत करता है।"

हिन्दी साहित्य में 'आत्मकथा' लेखन की आरम्भ बनारसीदास जैन की 1641 में प्रकाशित पद्यात्मक रचना 'अर्द्धकथानक' से होता है; किन्तु गद्यात्मक रूप में इसकी प्रतिष्ठा आधुनिक युग में हुई। 1910 में सत्यानन्द अग्निहोत्री द्वारा रचित 'मुझमें देव जीवन का विकास', तथा 1917 में स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा रचित 'जीवन-चरित्र' इस विधा की प्रारम्भिक कृतियाँ हैं। आत्मकथा लेखन में रचनाकार पाठकों की रोचकता को ध्यान में रखते हुए, अपने जीवन की घटनाओं के साथ अपने मनोभावों, विचारों, चिंतन-मंथन, दर्शनादि को भी सम्मिलित कर देता है।

अभ्यास प्रश्न 2

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति :-

1. .....में साहित्यकार अपने सम्पूर्ण जीवन की ..... साहित्यिक रूप में.....करता है।
2. आत्मकथाकार दुनिया के .....के साथ अपना एक रूपाकार अनुभव करता है।
3. सत्यानन्द अग्निहोत्री द्वारा रचित .....सन्.....प्रकाशित हुई।
4. .....और..... आत्मकथा की प्रारम्भिक कृतियाँ हैं।
5. .....की 1641 में प्रकाशित पद्यात्मक रचना का नाम..... था,जिसे हिन्दी साहित्य की..... प्रथम.....माना जाता था।

आत्मकथाकार दुनिया के साधारणजनों के साथ अपना एक रूपाकार अनुभव करता है, और वास्तव में इसी भावना से युक्त होकर ही आत्मकथा लेखन में सफलता पाई जा सकती है। हरिवंशराय बच्चन ने अपने इसी मनोभाव को अभिव्यक्त करते हुए लिखा है- "इतने बड़े संसार में अपने को अकेला अनुभव करने से बड़ा बंधन नहीं। इतने बड़े संसार में अपने को समझने से बढ़कर मुक्ति नहीं।" बच्चन जी में लेखन प्रतिभा कब और कैसे जाग्रत हुई, इसके विशय में उन्होंने अपनी आत्मकथा 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' में बिना किसी लाग-लपेट के स्पष्ट रूप से लिखा है-

"स्कूल में एक हिन्दी-समिति थी। उसमें समय-समय पर हिन्दी में व्याख्यान होते, कविताएँ, कहानियाँ पढ़ी जातीं। निबन्ध पढ़े जाते। ऊँचे दर्जे के हिन्दी-प्रेमी विद्यार्थियों में उस समय ठाकुर यादवेन्द्र सिंह थे- रीवा के; बाद को उनकी कहानियों के दो संग्रह प्रकाशित हुए; पहले का नाम

'हार' था, जिससे मैंने अपने प्रथम काव्य-संग्रह 'तेरा हार' के नाम के लिए प्रेरणा ली थी; उनके दूसरे संग्रह की भूमिका मैंने लिखी थी, नाम इस समय ध्यान से उतर गया है। अपने जीवन के एक कटु प्रसंग पर उन्होंने दो भागों में 'उषा बनाम प्रकाश' नाम की एक पुस्तक छपाई थी, उसके कवर पृष्ठ पर मेरी ये पंक्तियाँ दी थी-

'मैं छिपाना जानता तो जग मुझे साधु समझता,
शत्रु मेरा बन गया है छल-रहित व्यवहार मेरा।'-

ठाकुर विक्रमादित्य सिंह थे, जो छायावादी शैली में कविता लिखते थे, नाटक भी; उनके लिखे कई नाटक कायस्थ पाठशाला में अभिनीत हुए थे। उनके -'ध्रुव' नाटक में भगवान के स्वर में मैं ही पर्दे के पीछे से बोलता था, क्योंकि मेरा उच्चारण शुद्ध समझा जाता था; भगवान चतुर्भुजी रूप में मंच पर नहीं प्रकट हुए थे। भगवान के मंच पर आने के स्थान पर केवल उनकी वाणी सुनाई देना अधिक प्रभावकारी सिद्ध हुआ। उनके सुदामा नाटक के अभिनीत होने की भी मुझे याद है। खेद है कि विक्रमादित्य सिंह का लिखा कुछ भी प्रकाशित न हो सका , नहीं तो उसकी कविता और नाटकों का निश्चय ऐतिहासिक महत्व होता। मैंने अपनी हिन्दी की पहली कविता उन्हीं से शुद्ध कराई थी; उन्हीं से मैंने मात्रा ज्ञान पाया था- और थे श्री आनन्दी प्रसाद श्रीवास्तव जिनकी कविताओं का एक छोटा सा संग्रह 'झाँकी' या 'अछूत' के नाम से निकाला था, बाद को वे कायस्थ पाठशाला में अध्यापक हो गये थे । समिति की ओर से एक हस्तलिखित हिन्दी पत्रिका निकलती थी जिसका नाम 'आदर्श' था। मेरी लिखावट बड़ी साफ़-सुथरी थी-अक्षर मोती जैसे चुने। विश्राम तिवारी ने सिखाया था, 'घन अक्षर बिड़र पाँती; यहै आय लिखबे की भाँति'; मैंने भी शब्दों को बिड़र लिखने की रीति चलाई थी। 'आदर्श' में आए लेखों को सुन्दर लिपि में एकरूपता देने के लिए मुझ से समान आकार-प्रकार के कागजों पर नकल कराया जाता था। यह सब मेरे मौलिक लेखन के लिए अनजान तैयारी थी, आज मैं निःसन्देह कह सकता हूँ। मैंने कहीं पड़ा था कि एक यूनानी इतिहासकार ने अपनी शैली सुधारने के लिए अपने एक पूर्वज इतिहासकार का पूरा ग्रन्थ नकल कर डाला था। नकल अगर नकल के साथ की जाए तो नकल करना मौलिक लेखक की विचार-प्रक्रिया से होकर गुज़रना है। इसके लाभों का सहज अनुमान नहीं किया जा सकता।

कायस्थ पाठशाला में ही मैंने अपनी पूरी हिन्दी कविता लिखी, किसी अध्यापक ने विदाभिनन्दन पर, जब मैं सातवीं में था। थोड़ी बहुत तुकबंदी मैंने ऊँचामण्डी स्कूल में ही शुरू कर दी थी। विश्राम तिवारी जब निबंध लिखते तब कहते, अन्त में कोई दोहा लिख देना चाहिए। विशय से सम्बन्ध दोहा याद न होने पर मैं स्वयं कोई रचकर लगा देता था। इन्हीं दोहो में मेरे काव्य का उद्गम हुआ। नवीं - दशवीं कक्षा में तो मैंने कविताओं से एक कापी भर डाली; 'भारत-भारती से' गुप्त जी की पद्यावली, 'सरस्वती' के पृष्ठों से पन्त जी की कविता और 'मतवाला' के अंकों से निराला जी के मुक्त छन्द से मेरा परिचय हो चुका था। पर मेरी वे कविताएँ इतनी निजी थीं कि जब मेरे एक साथी ने चोरी से उसे देख लिया तो मैंने गुस्से में पूरी कापी के टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दी। मेरे घर से गिरधारी के खेत तक कापी के टुकड़े फैल गये थे, इसका चित्र मेरी

आँखों के सामने अब भी ज्यों-का-त्यों है। कविताएँ मैने आगे भी बिल्कुल अपनी और निजी बनाकर रखी, और मेरे कई साथी उनके साथ ताक-झाँक करने का प्रयत्न करते रहे।"

- हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा का अंश

आत्मकथा के प्रमुख तत्त्व - प्रामाणिकता, सत्यता, संयम, तटस्थता, औचित्य, भाषा की सरलता

अभ्यास प्रश्न 3

क) यह कथन किसका है :-

1."इतने बड़े संसार में अपने को अकेला अनुभव करने से बड़ा बंधन नहीं। इतने बड़े संसार में अपने को समझने से बढ़कर मुक्ति नहीं।"

2."शब्दों के माध्यम से प्रस्तुत अनुकृति ही काव्य या साहित्य है।"

3. मैं छिपाना जानता तो जग मुझे साधु समझता,
शत्रु मेरा बन गया है छल-रहित व्यवहार मेरा।

4."काव्य सर्वाधिक सुखी एवं हृदयों के श्रेष्ठतम क्षणों का लेखा-जोखा है।"

7.4.2 जीवनी

'जीवनी' शब्द अंग्रजी के 'बायोग्राफ़ी' या 'लाइफ़' का पर्याय है। हिन्दी में जीवनी के लिए 'जीवन चरित' या 'जीवन चरित्र' शब्द प्रचलित है। किसी विशय का कलात्मक तथा उद्देश्यपूर्ण वर्णन ही साहित्य है; इसलिये जब कोई साहित्यकार किसी व्यक्ति की जीवनी लिखता है, तो यह उस पर निर्भर करता है कि वह अपने जीवन परित नायक के सम्पूर्ण जीवन को ले अथवा उसके द्वारा किए गए विशिष्ट कार्यों को अपना वर्ण्यविशय चुने। सामान्यतः जीवनी में हमें, नायक द्वारा सम्पूर्ण जीवनकाल में किए गए कार्यों का वर्णन कलात्मक रूप में मिलता है। जीवनी साहित्य द्वारा हम व्यक्ति विशेश के व्यक्तित्त्व से सहज ही परिचित हो जाते हैं।

परिभाषाएँ :-

शिप्ले ने जीवन की परिभाषा बहुत कुछ इस प्रकार से दी है -"जीवनी किसी व्यक्ति विशेश की जीवन धटनाओं का विवरण है।अपने आदर्श रूप में वह प्रयत्नपूर्वक लिखा गया इतिहास है, जिसमें व्यक्ति-विशेश के सम्पूर्ण जीवन या उसके किसी अंश से सम्बन्धित बातों का विवरण मिलता है। यह आवश्यकताएँ उसे उक साहित्य विधा का रूप प्रदान करती है।"

जॉनसन ने जीवनी की परिभाषा देते हुए लिखा है कि- "जीवनीकार का लक्ष्य जीवनी की उन धटनाओं और क्रियाकलापों का रंजक वर्णन करना होता है जो व्यक्ति विशेश के बड़ी महानता से लेकर छोटी से छोटी घरेलु बातों तक से सम्बन्धित होती है।"

जीवनी की सरलतम परिभाषा "जीवनी का वर्णन" है। **इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिया** में जीवनी को "जीवन के क्रियाकलापों का उद्देश्यपूर्ण कलात्मक चित्रण तथा एक वैयक्तिक जीवन को साकार करना माना गया है।"

मार्क ही. चट ने लिखा है -"किसी खेल का सच्चा आनन्द उसके नियमों में बँधकर खेलने में ही है, उसी प्रकार जीवनी लेखन को भी सदा सत्य कहने का प्रयास करना चाहिए"

डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत जीवनी विधा की परिभाषा देते हुए लिखा है कि- "जीवनी कथा वह साहित्य विधा है- जिसमें भावुक कलाकार किसी व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन या उसके जीवन के किसी भाग का वर्णन परम सुपरिचित ढंग से इस प्रकार व्यक्त करता है कि उस व्यक्ति की सच्ची जीवनी गाथा के साथ-साथ कलाकार का हृदय भी मुखरित हो उठता है। ऐतिहासिक तथ्य लेखक की वैयक्तिक श्रद्धा या सहानुभूति से अनुप्राणित हो जाते है।"

जीवनी की विशेषताएं :-

1. उसमें चरित नायक के जीवन-तथ्यों को प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत किया जाता है।
2. जीवनी में नायक की असफलताओं, विसंगतियों तथा उसके अवगुणों भी उजागर किया जाता है।
3. जीवनी में अनावश्यक विस्तार न होते हुए भी, नायक के जीवन का कोई भी महत्त्वपूर्ण पक्ष अछूता नहीं रहता।
4. इसमें लेखक का जीवन, और व्यक्तित्त्व पृथक तथा गौण रहता है।
5. नायक के जीवन की सम्पूर्ण घटनाओं की सूत्रबद्धता के कारण, इसमें स्वतः ही क्रमबद्धता आ जाती है।
6. जीवनी में तथ्यों के अन्वेशण तथा उनकी प्रस्तुति पर विशेश ध्यान दिया जाता है।
7. जीवनी, अधिकांशत: महान् अथवा प्रसिद्ध व्यक्तियों की ही लिखी जाती हैं।
8. इसमें तथ्यात्मकता की प्रधानता तथा इतिहास के प्रति आग्रह होता है।
9. जीवन संबंधी तथ्यों के प्रति, सम्यक् रूप में वैज्ञानिक विश्लेशण प्रस्तुत किया जाता है।
10. इसमें कल्पना का आश्रय, केवल टूटी हुई कड़ियों को जोड़ने तथा रोचकता लाने के लिये ही किया जाता है।
11. इसमें लेखक की तार्किकता अथवा बौद्धिक ईमानदारी के दर्शन होते हैं।

जीवनी का अंश:- (महात्मा गाँधी की प्रिय शिष्या- सरला बहन)

सरला बहन का जन्म पाँच अप्रैल उन्नीस सौ एक (5.4.1901) को प्रातःकाल 'गुडफ्राइडे' के दिन, लन्दन के एक मध्यम वर्गीय परिवार में हुआ। उनका नाम 'हैरी कैथरीन हाइलामैन' रखा गया, किन्तु माता-पिता प्यार से उन्हें 'केटी' कहा करते थे। उनकी माताजी अंग्रेज़ थीं, तथा पिताजी का जन्म स्विटज़रलैंड में हुआ था। उनकी दादी वुर्टनबर्ग के 'कॉलेबन' की थीं, तथा दादा जी फ्राँस के निवासी थे। कालान्तर में वे सपरिवार इग्लैंड आकर रहने लगे। परिवार में अनेक भाषाएँ बोली जाती थीं, अतः कैथरीन को विविध भाषाओं का ज्ञान होना स्वाभाविक ही था।

कैथरीन की माताजी अत्यन्त कर्मठ एवं स्नेहिल महिला थीं, तथा व्यवसाय से वे एक शिक्षिका थीं। उनके पिता स्वर्णकार थे। उनका एक भाई था, जिससे वह अगाध स्नेह किया करती थीं। जब वह मात्र सात वर्ष की थीं, तब दुर्भाग्यवश कैंसर ने उनकी माँ को अपनी चपेट में ले लिया। इस तरह अल्पायु में ही उनके जीवन से माँ का स्नेहाकाश छिन गया। माँ की मृत्यु से पूर्व उनके घर का वातावरण अत्यन्त अनुषासित हुआ करता था। जब भी वह अपनी माँ के विशय में बातें

किया करती थीं, तो बरबस ही उनकी आँखें छलक जाया करती थीं। एक बार जब वह अस्वस्थ थीं, तब अपनी माँ के साथ व्यतीत किए हुए स्नेहिल क्षणों को याद करते हुए उन्होंने बताया- "जब मैं लगभग पाँच वर्ष की थी, एक बार मैं बहुत बीमार हुई। तब माँ रात-दिन मेरे सिरहाने पर बैठी, स्नेह से मेरे सिर पर हाथ फेरती रहती थी।"

उनके पिता एक जुझारू, परिश्रमी एवं कलात्मक अभिरुचि के व्यक्ति थे। यद्यपि व्यवसाय से वह सुनार थे, किन्तु आजीविका जुटाने के प्रति वे उदासीन रहे। उन्हें बाग़वानी करना रुचिकर लगता था। काष्ठकला में भी उनकी अभिरुचि थी, अतः उनके पास बढ़ईगिरी के औज़ार भी थे। अतिरिक्त समय में वह अपने घर की टूट-फूट स्वयं ही ठीक कर लिया करते थे। सरला बहन कहा करती थीं- "माँ की मृत्यु के पश्चात पिताजी अपनी आजीविका कमाने के प्रति कुछ लापरवाह हो गए थे। अतः दादी को उसकी पूर्ति अपनी जीवनभर कमाई, जमा पूंजी से करनी पड़ती थी। उन्होंने हमारा पालन-पोशण बहुत स्नेह से किया। वह बहुत बूढ़ी थीं, किन्तु उनकी आत्मशक्ति प्रबल थी। हम दोनों भाई-बहिन एक ही कक्षा में पढ़ा करते थे, और दोनों ही पढ़ने में बहुत तेज़ थे। यही कारण था कि हमें हाई स्कूल में वजीफ़ा भी मिलने लगा था, जिससे हमारी पढ़ाई-लिखाई सुचारु रूप से चलने लगी। परिवार के प्रति पिताजी के उपेक्षापूर्ण एवं उदासीन व्यवहार से मुझे बहुत खिन्नता होती थी। यही कारण था कि मैंनें अपने पैरों पर खड़े होने का निश्चय किया।"

अभ्यास प्रश्न 4

1. साहित्य किसे कहते हैं?
2. संस्कृत साहित्यविदों के मतानुसार साहित्य क्या है?
3. साहित्य-लेखन की कौन-कौन सी विधाएँ प्रचलित हैं?
4. गद्यात्मक साहित्य प्रमुखतः किन रूपों का मिलता है?
5. 'हिन्दी-साहित्य-कोश' में 'साहित्य' शब्द की व्याख्या करते हुए क्या कहा गया है?

7.4.3 आलोचना

आलोचना शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की 'लुच्' धातु से हुई है। 'लुच्' का अर्थ है- 'देखना'; अतः आलोचना का अर्थ हुआ- देखना; अर्थात् किसी कृति की सम्यक् व्याख्या तथा उसका मूल्यांकन आदि करना ही आलोचना है। डॉ. श्यामसुन्दरदास ने 'आलोचना' शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है - "साहित्य-क्षेत्र ग्रंथ को पढ़कर उसके गुणों और दोषों का विवेचन करना और उसके संबंध में अपना मत प्रकट करना आलोचना कहलाता है।"

आलोचना के उद्देश्य के विशय में बाबू गुलाबराय का कथन है कि- "आलोचना का मूल उद्देश्य कृति का सभी दृष्टिकोणों से आस्वाद करके पाठकों को इस प्रकार के आस्वादन में सहायता देना, तथा उसकी रुचि को परिमार्जित करके साहित्य की गति निर्धारित करने में योग देना है।"

आलोचना के प्रकार - साहित्यिक आलोचना और वैज्ञानिक आलोचना

द्विवेदी-युग में महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा उनके समकालीन समीक्षकों ने समालोचना ग्रंथों की रचना आरम्भ कर दी थी। छायावाद युग के समालोचकों, विशेशतः आचार्य रामचन्द शुक्ल ने उनके द्वारा आरम्भ किए गए आलोचना साहित्य को सम्यक् रूप प्रदान किया। छायावाद के पक्ष-विपक्ष में पुस्तकों और निबन्धों के रूप में आलोचना का एक ऐसा रूप विकसित हुआ, जो भविष्य में लिखे जाने वाले आलोचना साहित्य की पूर्वपीठिका भी बना।

हिन्दी की सैद्धान्तिक आलोचना का सही और स्तरीय रूप हमें 1920 में प्रकाशित बाबू गुलाबराय के 'नवरस'; श्यामसुन्दरदास के 'साहित्यालोचन'; विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के 'वाङ्मय विमर्श' और रामचन्द्र शुक्ल के 'काव्य में रहस्यवाद' आदि में दिखाई देता है। इन सभी आलोचकों द्वारा भारतीय तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र का मंथन करके, काव्यशास्त्र के विविध अवयवों का संतुलित रूप प्रस्तुत करने के कारण ही इन सभी को समन्वयवादी समालोचक माना जाता है। सैद्धान्तिक आलोचना के क्षेत्र में रामचन्द्र शुक्ल का नाम अग्रणीय है। नंददुलारे वाजपेयी ऐसे आलोचक थे जो वादग्रही नहीं थे, उन्होंने शुक्ल जी की भाँति वादों का एकतरफा खंडन नहीं किया, उनके मन में वादी तत्त्व काव्य के लिए उपादेय भी था। हजारी प्रसाद द्विवेदी विचारों के समीक्षक हैं। उनमें बोध और पांडित्य का अद्भुत समन्वय है। साहित्य के मूल्यों को बदलने तथा उन्हें नवीन मानवतावादी मूल्यों से जोड़ने में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। डा. नगेन्द्र रसवादी आलोचक है; उन्होंने हिन्दी आलोचना को व्यवहारिक एवं सैद्धान्तिक दृष्टियों से संबद्धित किया है।

मार्क्सवादी आलोचकों में शिवदानसिंह चौहान, प्रकाशचन्द्र गुप्त, रामविलास वर्मा, अमृतराय तथा नामवर सिंह का नाम उल्लेखनीय है।

आदर्श आलोचक की विशेषताएँ:-

1. आलोचक का चिंतन और बोध, प्रौढ़ होना चाहिये।
2. वह कोरा काव्यशास्त्री न होकर ऐसा सांस्कृतिक चिंतक होना चाहिये, जो अपने युग को सही दिशा दे सके।
3. उसे रचना को केवल जीवन के एक संदर्भ में ही न देखकर, अपितु जीवन की समग्रता एवं परिपूर्णता के संदर्भ में देखकर उसका मूल्यांकन करना चाहिये।
4. उसे अपने उत्कृष्ट विचारों द्वारा जीवन और समाज में ऐसे वातावरण का निर्माण करना होगा, जो प्रतिभाशाली रचनाकारों को महान् साहित्य-सृजन की प्रेरणा दे सके।
5. आलोचक को साहित्य, समाज तथा संस्कृति का अधिकारी विद्वान होना चाहिये।

7.4.4 व्यंग्य

साहित्य की प्रकीर्ण/विविध विधाओं के अंतर्गत 'व्यंग्य साहित्य' की गणना की जाती है। सामान्यतः साहित्य की प्रत्येक विधा में किसी-न-किसी रूप में व्यंग्यात्मकता का समावेश रहता है; किन्तु आधुनिक युग में 'व्यंग्य साहित्य' ने स्वतंत्र विधा के रूप में अपना अस्तित्त्व बनाया है। अंग्रेजी 'सेटायर' से प्रभावित होकर भी हिन्दी के अनेक साहित्यकारों ने अपने विचारों एवं

समाज की विसंगतियों को अभिव्यक्त करने के लिए व्यंग्य विधा का सहारा लिया। हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की मुकरियों में हमें 'व्यंग्य' की छटा दिखाई देती है-

"एक बुलाएँ चौदह आवें, निज-निज बिपदा रोय सुनावें।
भूखे मरें भरे नहिं पेट, क्यों सखि साजन, नहिं ग्रेजुएट।"

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पश्चात बालमुकुन्द गुप्त ने इस विधा में अनेक रचनाएँ कीं। उनके द्वारा लिखित व्यंग्य 'शिवशंभु का चिट्ठा' ने हिन्दी भाषा के जानकार अंग्रेज़ों को हिलाकर रख दिया। बालमुकुन्द गुप्त के इस व्यंग्य से प्रभावित होकर बरसाने लाल चतुर्वेदी, हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, प्रभाकर माचवे, रवीन्द्रनाथ त्यागी, अमृतराय, केशवचन्द्र वर्मा, आदि ने भी अनेक व्यंग्यात्मक रचनाएँ लिखकर व्यंग्य विधा के विकास में अपना योग दिया।

1970-80 के दशकों में शरद जोषी का 'चिन्तन चालू है' कॉलम अत्यन्त लोकप्रिय रहा। अपनी रचना 'वैष्णव की फ़िसलन' में हरिशंकर परसाई ने पाखंडों के खंडन के लिए व्यंग्य का ही सहारा लिया है। बरसाने लाल चतुर्वेदी ने इसी विधा के माध्यम से पथभ्रष्ट राजनीतिज्ञों पर प्रहार किया।

अभ्यास प्रश्न 5

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति :-

1. आलोचना शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की ..... धातु से हुई है।
2. 'वैष्णव की फ़िसलन' के रचनाकार.....हैं।
3. बालमुकुन्द गुप्त द्वारा लिखित व्यंग्य.....ने अंग्रज़ों को हिलाकर रख दिया।

ख) यह कथन किसका हैः-

1. "एक बुलाएँ चौदह आवें, निज-निज बिपदा रोय सुनावें।
भूखे मरें भरे नहिं पेट, क्यों सखि साजन, नहिं ग्रेजुएट।" ये पंक्तियाँ किस रचनाकार की हैं?
2. "साहित्य-क्षेत्र में ग्रंथ को पढ़कर उसके गुणों और दोषों का विवेचन करना और उसके संबंध में अपना मत प्रकट करना आलोचना कहलाता है।"

ग) लघु उत्तरीय प्रश्न :-

1. आदर्श आलोचक की प्रमुख तीन विशेषताएँक्या हैं?
2. साहित्य में 'आलोचना' से क्या तात्पर्य है?
3. पाँच आलोचकों के नाम लिखिये।

7.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपने जाना कि :-

- आधुनिक साहित्य की अन्य गद्य विधाओं का विकास आधुनिक काल के पश्चात शुरू हुआ।

- आत्मकथा साहित्य लेखक द्वारा स्वंय के आत्म विवरण एवं आत्म मूल्यांकन का प्रयास है।
- जीवनी विधा किसी लेखक द्वारा अन्य व्यक्ति के जीवन चरित्र पर प्रकाश डालना है।
- किसी कृति के गुण दोष का परीक्षण कर उसका मूल्यांकन करना आलोचना है।
- व्यंग्य विधा सामाजिक विषमताओं पर प्रहार करने का सशक्त माध्यम है।

7.6 शब्दावली

- जीवनी - किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति के जीवन चरित्र पर प्रकाश डालने वाली विधा।
- आत्मकथा - अपने जीवन चरित्र पर प्रकाश डालने वाली विधा।
- विश्लेषण – किसी तथ्य, विचार के औचित्य - अनौचित्य पर विचार करना।
- आलोचना – किसी कृति के गुण-दोष पर विचार करने वाली विधा।

7.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

क) 1. दो 2. गद्य 3. विश्लेषणात्मक साहित्य 4. निबन्धात्मक
5. आख्यात्मक 6. गद्य-पद्य, चम्पू 7. नाटक-चम्पू

अभ्यास प्रश्न 2

क) 1. आत्मकथा, कथा, प्रस्तुत 2. गति के साथ
3. 1910, मुझमें देव जीवन का विकास
4. बनारसी दास जैन, अर्द्धकथानक, प्रकाशित, आत्मकथा

अभ्यास प्रश्न 3

क) सभी कथन हरिवंशराय बच्चन के हैं।

अभ्यास प्रश्न 5

क) 1. लुच् 2. हरिशंकर परसाई 3. शिवशंभु का चिट्ठा
ख) 1. भारतेन्दु हरिशचन्द्र 2. श्यामसुन्दर दास

7.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. बिष्ट , डॉ.जगत सिंह, साहित्य सृजन के कुछ संदर्भ।

7.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1 . गद्य साहित्य से आप क्या समझते हैं ? हिन्दी साहित्य की दो प्रमुख गद्य विधाओं का विवेचन प्रस्तुत करें

इकाई 8 गद्य की अन्य विधाओं का स्वरूप एवं तात्त्विक विवेचन - भाग 2

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 स्मारक साहित्यः अर्थ, परिभाषाएँ एवं उसके विविध रूप
8.4 विविध विधाओं का विश्लेषण
8.4.1 संस्मरण
8.4.2 रेखाचित्र
8.4.3 यात्रावृत्त
8.4.4 डायरी
8.4.5 पत्र
8.5 सारांश
8.6 शब्दावली
8.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
8.9 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाइयों में आपने 'निबन्ध' शब्द का अर्थ एवं तात्पर्य; उसका स्वरूप; उसके तत्त्व एवं विवेचन पद्धति; तथा साहित्य की अन्य विधाओं से निबन्ध लेखन की भिन्नता को जाना है। इसके साथ ही आपने स्मारक साहित्य के विषय मेंतथा उसकी विविध विधाओं के विषय में भी जाना, विशेषतः आत्मकथा, जीवनी, आलोचनातथा व्यंग्य लेखन-शैली को विस्तार से जाना।

ब्रिटिश-शासन के आधिपत्य के कारण भारतीय समाज एवं संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति एवं विचारधाराओं का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था; क्योंकि साहित्य एवं समाज दोनों एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं, अतः हिन्दी साहित्य पर भी पाश्चात्य विचारकों की विचारधारा का प्रभाव पड़ा। जन्म एवं विकास प्रकृति का नियम है; समय के साथ-साथ हिन्दी गद्य-साहित्य रूपी वृक्ष भी विकसित, स्थिर एवं सुदृढ़ होता गयाऔर उसके परिणामस्वरूप जन्म हुआ- 'स्मारक साहित्य' का; इसकी विविध शाखाएँ हैं- संस्मरण, रेखाचित्र, आत्मकथा, जीवनी, यात्रावृत्त, व्यंग्य, आलोचना, डायरी, पत्र, फ़ीचर, रिपोतार्ज, तथा साक्षात्कार।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप:-

- हिन्दी गद्यसाहित्य की अन्य विधाओं- संस्मरण रेखाचित्र डायरी, पत्रतथा यात्रावृत्त का अध्ययन करेंगे।
- हिन्दी गद्यसाहित्य की अन्य विधाओं के स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।
- हिन्दी गद्यसाहित्य की अन्य विधाओं- संस्मरण रेखाचित्र डायरी, पत्रतथा यात्रावृत्त का तात्त्विक विवेचन कर सकेंगे।
- संस्मरण रेखाचित्र डायरी, पत्रतथा यात्रावृत्त के इतिहास एवं प्रवृत्तियों से परिचित हो सकेंगे।

8.3 स्मारक साहित्य का अर्थ एवं परिभाषा

'स्मारक' का शाब्दिक अर्थ है- स्मृति पर आधारित कोई निर्मिति; अर्थात् जब हम किसी व्यक्ति अथवा किसी घटना विशेष की स्मृति में कोई रचनात्मक कार्य करते हैं, उसे स्मारक कहा जाता है। इस आधार पर स्मृति पर आधारित होने के कारणतथा वर्णन-पद्धति की कुछ विशिष्टताओं के कारण, गद्य साहित्य की नवीन विधाओं को 'स्मारक साहित्य' का नाम दिया गया।

साहित्य की प्रत्येक नवीन विधा का परिचय प्रायः पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से ही होता है। 'स्मारक-साहित्य' का अस्तित्त्व भी, सर्वप्रथम द्विवेदी युग की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं

चर्चित पत्रिका 'सरस्वती' के माध्यम से ही सामने आया। परिवर्तित परिस्थिति, परिवेश एवं पर्यावरण का प्रभाव मनुष्य के मन और मस्तिष्क को अवश्य प्रभावित करता है।यही कारण है कि प्रथम स्वाधीनता संग्राम के पश्चात जब रचनाकारों के मनोमस्तिष्क में अनेक भाव व विचार अभिव्याप्त होने के लिए छटपटाने लगे तब गद्य साहित्य की विविध विधाओं का जन्म हुआ। 18वीं शताब्दी में भारतेन्दु हरिशचन्द्र एवं उनके मंडल के लेखक- ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, दामोदर शास्त्री, तथा राधाकृष्ण आदि के 'हरिशचन्द्र मैगजीन' में प्रकाशित धर्म, राजनीति, भाषा आदि संबंधी लेखों से हिन्दी गद्य लेखन का शुभारम्भ हो चुका था। 19वीं शताब्दी में निबन्ध लेखन के विकास के साथ हिन्दी गद्य का स्वरूप उत्तरोत्तर विकसित होता चला गया।ब्रिटिश साम्राज्यवाद की 'फूट डालो और राज करो' की नीति के विरूद्ध साम्प्रदायिक सद्भावना को बढ़ावा देने के लिए गद्य साहित्य- कहानी, उपन्यास, नाटक, निबन्ध, के अतिरिक्त संस्मरण, रेखाचित्र, आत्मकथा, जीवनी, यात्रावृत्त, व्यंग्य, आलोचना, डायरी, पत्र, फीचर, रिपोतार्जतथा साक्षात्कार आदि अनेक रूपों में लिखा जाने लगा। कालान्तर में इनमें से स्मृति पर आधारित साहित्य को 'स्मारक साहित्य' के नाम से विभूषित किया गया। स्मारक साहित्य को पारिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि 'जो साहित्य, मनुष्य की अपनी अथवा अपने संपर्क में आए हुए किसी अन्य व्यक्ति की अविस्मरणीय अतीत अथवा वर्तमान की अनुभूतियों से संबंधित घटनाओं के बिम्ब प्रस्तुत करता हो, उसे स्मारक साहित्य कहते हैं।'स्मारक साहित्य की विशेषताएँ- साहित्य लेखन में प्रत्येक विधा की अपनी विशेषताएँ होती है, और उसकी वही विशेषताएँ उसे साहित्य की किसी अन्य विधा से भिन्न करती है। स्मारक साहित्य की भी अनेक विशेषताएँ हैं; जो उसे गद्य साहित्य की अन्य विधाओं से अलग करने में सहायक सिद्ध होती हैं, वे इस प्रकार हैं-

1. स्मृतिआधारित गद्यात्मक अभिव्यक्ति।
2. कल्पनातत्त्व का अभाव।
3. चित्रात्मकता तथा वर्णनात्मकता।
4. आत्माभिव्यक्ति की छटपटाहट।
5. कथातत्त्व की अनिवार्यता।
6. मनोवैज्ञानिक विश्लेषणात्मकता।
7. यथार्थ के प्रति लेखक की नवीन दृष्टि।
8. यथार्थ एवं प्रामाणिकता का संयम-अनुशासन।
9. अनुभूतियों के चित्रण में व्यक्तिनिष्ठता।
10. स्वभुक्त अतीत एवं वर्तमान का यथार्थ चित्रण।
11. सद्यस्फुरित भावों एवं स्मृतियों पर आधारित अन्तर्द्वन्द्व की अभिव्यक्ति।

8.4 विविध विधाओं का विश्लेषण

8.4.1 संस्मरण

हिन्दी साहित्य में संस्मरण विधा का प्रादुर्भाव बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से माना जाता है। संस्मरण, स्मारक साहित्य की केन्द्रीय एवं आत्मनिष्ठ विधा है; क्योंकि यह एक आत्मनिष्ठ विधा है, अतः इसमें लेखक ने जो कुछ देखा-सुना तथा अनुभव किया होता है, उसके आधार पर वह किसी व्यक्ति, घटना, वस्तु अथवा, स्थिति में से किसी को भी अपना लेखन-विषय बनाकर, उसके प्रति अपनी संवेदनात्मक अनुभूतियों को प्रस्तुत करता है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है- जब कोई साहित्यकार अपने संपर्क में आने वाले किसी व्यक्ति, जीवन की अनुभूति, घटना विशेष, अथवा मनोरम दृश्य आदि का स्मृति के आधार पर साहित्यिक रूप में वर्णन करता है, उसे संस्मरण कहते हैं। संस्मरण के माध्यम से जहाँ एक ओर पाठक को आनन्द की अनुभूति होती है; वहीं दूसरी ओर सहज ही उसे ऐतिहासिक जानकारी भी प्राप्त हो जाती है।
संस्मरण के मुख्यतः दो रूप दिखाई देते हैं-

1. आत्मपरक (रेमिनिसेन्सेज़)
2. वस्तुपरक या जीवनापरक (मैमोयर्स)।

डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत ने लिखा है- "भावुक कलाकार जब अतीत की अनन्त स्मृतियों में से कुछ रमणीय अनुभूतियों को अपनी कोमल कल्पना से अनुरंजित कर व्यंजनामूलक संकेत शैली में अपने व्यक्तित्त्व की विशेषताओं से विशिष्ट बनाकर रोचक ढंग से यथार्थ रूप में व्यक्त करता है, तब उसे संस्मरण कहते है।"संस्मरण के स्वरूप के विषय में महादेवी वर्मा ने कहा है- "संस्मरण में हम अपनी स्थिति के आधारों पर समय की धूल पौंछ कर उन्हें अपने मनोजगत के निमृत कक्ष में बैठकर उनके साथ जीवित रहते हैं और अपने आत्मीय सम्बन्धों को पुनः जीवित करते हैं। इस स्मृति मिलन में मानो हमारा मन बार-बार दोहराता है, हमें आज भी तुम्हारा अनुभव है।"उपर्युक्त कथन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि संस्मरण में वर्ण्यविषय प्रमुख होता है, जब कोई लेखक किसी मनोरम दृष्य, अविस्मरणीय घटना, या संपर्क में आए हुए व्यक्ति के विषय में अपनी अनुभूतियों एवं संवेदनाओं के संस्पर्ष से जीवन्त चित्र उकेरता है, तो स्वाभाविक रूप से उसके आधार पर लेखक अपने व्यक्तित्त्व का परिचय भी देता चला जाता है। सामान्यतः संस्मरणकार का मुख्य उद्देश्य पात्र, अथवा घटना आदि विषयों की उन विशेषताओं को अंकित करना होता है, जिसकी छवि हमारे मनोमस्तिष्क पर अमिट छाप अंकित कर सके।संस्मरण की प्रामाणिकता के विषय में उपेन्द्रनाथ अश्क जी की मान्यता है- "मैं संस्मरण की खूबी पूर्णतः सच्चाई मानता हूँ। उपन्यास और कहानी में असत्य से काम लिया जा सकता है, कल्पना की लगामें ढीली छोड़ी जा सकती हैं, लकिन संस्मरण और आत्मकथा की शर्त मेरे निकट, सच्चाई और शत-प्रतिशत सच्चाई है।"

संस्मरण की प्रमुख विशेषताएँ :-

1. वर्ण्य-पात्र, स्थल, घटना, अथवा विषय से, लेखक का निकटस्थ संबंध होता है।

2. लेखक ने वर्ण्य-विषय को प्रत्येक दृष्टिकोण से देखा-परखा तथा समझा होता है।

3. लेखक अपने वर्ण्यविषय के प्रति किसी पूर्वाग्रह से आक्रान्त नहीं होता।

4. वर्ण्य-विषय के यथार्थ का, मार्मिक एवं संतुलित वर्णन मिलता है।

5. संस्मरण का संबंध अतीत की स्मृतियों से होता है।

6. लेखक की अनुभूतियों एवं संवेदनाओं का रोचक एवं कलात्मक शैली में प्रस्तुतिकरण होता है।

7. इसमें लेखक की दृष्टि वर्ण्यपात्र के साथ-साथ, उसके संपर्क में अपने वाले व्यक्तियों एवं घटनाओं पर भी रहती है।

8. इसका वर्ण्यविषय कोई साहित्यकार, दार्शनिक, वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ और खिलाड़ी ही नहीं, कोई घसियारिन, किसान, मजदूर, अर्थात् दलित सर्वहारा वर्ग से संबंधित व्यक्ति भी हो सकता है।

स्मारक साहित्य की एक विशिष्ट विधा होने के कारण संस्मरण में स्मृति का विशेष महत्त्व होता है; क्योंकि इसका मूलाधार स्मृति है, इसलिए लेखक जितना कुछ याद करता है, उसके साथ लेखक की भावना, संवेदना, रुचि-अरुचि, दृष्टि तथा उसके आदर्श आदि का जुड़ा होना स्वाभाविक है। अनेक उच्च कोटि के लेखकों ने संस्मरण लिखकर इस विधा को समृद्ध एवं सशक्त किया है। संस्मरण लेखकों में बनारसीदास चतुर्वेदी, रघुवीरसिंह, रामवृक्षबेनीपुरी, शिवपूजन सहाय, काका कालेलकर, हरिभाऊ उपाध्याय देवेन्द्र सत्यार्थी दिनकर निराला, महादेवी, मोहन लाल महतोवियोगी आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। संस्मरण साहित्य जहाँ महापुरूषों की एवं नूतन आशा-ज्योति भी प्रदान करता है। संस्मरणात्मक साहित्य का विकास प्रगति पर है, और आशा है कि यह विशेष अंग और भी परिपुष्ट, समृद्ध एवं विकासशील होगा।

अभ्यास प्रश्न 1

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजियेः-

1. संस्मरणकार का मुख्य उद्देश्य ..... आदि विषयों की उन ..... को अंकित करना होता है, जिसकी छवि हमारे ..... अमिट छाप अंकित कर सके।
2. स्मारक साहित्य की एक .....विधा होने के कारण.....में स्मृति का विशेष महत्त्व होता है।
3. इसका वर्ण्यविषय .....ही नहीं, कोई.....वर्ग से संबंधित व्यक्ति भी हो सकता है।

ख) लघु उत्तरीय प्रश्नः-

1. स्मारक साहित्य किसे कहते है ?
2. स्मारक साहित्य की प्रमुख विधाएँ कौन-सी हैं ?
3. स्मारक शब्द का क्या अर्थ है ?

4. संस्मरण के दो रूप कौन-से हैं ?

5. स्मारक साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ क्या हैं ?

8.4.2 रेखाचित्र

'रेखाचित्र' का अंग्रेजी पर्याय 'स्केच' है, स्केच का अर्थ है- चित्रकला। 'चित्रकला' में 'स्केच' उन चित्रों को कहा जाता है- जिसमें केवल रेखाओं के सहारे किसी व्यक्ति या वस्तु का चित्रांकन किया जाता है। रेखाचित्र में साहित्यकार अपने मानसपटल पर अंकित स्मृतियों को, शब्दरेखाओं के माध्यम से उकेरता है। अतः कहा जा सकता है कि वस्तुतः रेखाचित्र एक शब्दचित्र है; जिसमें हमें साहित्यिकता और कलात्मकता का अनुपम संयोग देखने को मिलता है।

परिभाषाएँ - डॉ. रामगोपाल रेखाचित्र के विषय में लिखते हैं- "रेखाचित्र वस्तु, व्यक्ति अथवा घटना का शब्दों द्वारा विनिर्मित वह मर्मस्पर्शी और भावमय रूप विधान है, जिसमें कलाकार का संवेदनशील हृदय और उसकी सूक्ष्मपर्यवेक्षण दृष्टि, अपना निजीपन उँडेलकर प्राण-प्रतिष्ठा कर देती है।"

डॉ. नगेन्द्र ने रेखाचित्र की परिभाषा में लिखा है- "जब चित्रकला का यह शब्द साहित्य में आया तो इसकी परिभाषा भी स्वभावतः इसके साथ आई; अर्थात रेखाचित्र एक ऐसी रचना के लिए प्रयुक्त होने लगा, जिसमें रेखाएँ हो, पर मूर्त रूप नहीं अर्थात पूरे उतार-चढाव के साथ। दूसरे शब्दों में, कथानक का उतार-चढाव आदि उसमें हो, तथ्य का उद्घाटन मात्र नहीं।"

डॉ.भागीरथ मिश्र की मान्यता है- "अपने सम्पर्क में आए किसी विलक्षण व्यक्तित्त्व अथवा संवेदना को जगाने वाली सामान्य विशेषताओं से युक्त, किसी प्रतिनिधि चरित्र के मर्मस्पर्शी स्वरूप को देखी-सुनी या संकलित घटनाओं की पृष्ठभूमि में, इस प्रकार उभारकर रखना कि उसका हमारे हृदय में एक निष्चित प्रभाव अंकित हो जाए, रेखाचित्र या शब्दचित्र कहलाता है।"

हिन्दी साहित्य में रेखाचित्र विधा का आविर्भाव बींसवी शताब्दी के तीसरे दशक में हुआ। प्रभाकर माचवे को हिन्दी का प्रथम रेखाचित्रकार माना जाता है। उनके द्वारा 1933 लिखित 'मैं समझता हूँ' लेख को हिन्दी साहित्य का प्रथम रेखाचित्र माना जाता है। रेखाचित्र को 'शब्दचित्र' शब्द भी कहा जा सकता है। रेखाचित्र के प्रमुख तत्त्व निम्नलिखित हैं-

(क) वास्तविकता।
(ख) रागात्मकता।
(ग) सजीवता।
(घ) चित्रात्मकता।
(ड़) सांकेतिकता।

संस्मरण तथा रेखाचित्र में अंतरः- संस्मरण, सामान्यतया किसी साधारण या विशिष्ट व्यक्ति से सम्बन्धित, किसी संवेदनशील स्मृति के प्रत्यक्षीकरण को कहा जा सकता है रेखाचित्र भी प्रायः इसी प्रकार के व्यक्ति का वर्णन प्रस्तुत करता है। बाह्य दृष्टि से देखने पर संस्मरण तथा रेखाचित्र में

समानता-सी प्रतीत होती है; किन्तु है नहीं। संरचना की दृष्टि से इन दो विधाओं के अंतर को निम्नलिखित बिन्दुओं के अंतर्गत स्पष्टतः देखा जा सकता हैः-

1. रेखाचित्र साधारण से साधारण व्यक्ति का भी हो सकता है, जबकि संस्मरण प्रायः महान विभूतियों से ही सम्बन्ध रखता है।

2. संस्मरण आत्मनिष्ठ रचना है और रेखाचित्र वस्तुनिष्ठ।

3. यद्यपि संस्मरण में भी चित्रात्मक शैली का प्रयोग किया जाता है; किन्तु चित्रात्मकता रेखाचित्र का अनिवार्य तत्त्व है।

4. संस्मरण का संबंध केवल अतीत से ही होता है; जबकि रेखाचित्र का संबंध अतीत एवं वर्तमान दोनों से हो सकता है।

5. संस्मरण में स्मृति आधारित वर्णन होता है, और रेखाचित्र में रचनाकार शब्द-रेखाओं के माध्यम से वर्ण्यपात्र का चित्रण करता है।

महादेवी ने रेखाचित्र के सम्बन्ध में लिखा है कि "इन स्मृति-चित्रों में मेरा जीवन भी आ गया है । यह स्वाभाविक भी है। अंधेरे की वस्तुओं को हम अपने प्रकाश की धुँधली या उजली परिधि में लाकर ही देख पाते हैं। उसके बाहर तो वे अंधकार के अंश हैं। मेरे जीवन की परिधि के भीतर खड़े होकर चरित्र जैसे परिचय दे पाते है, वह बाहर रूपान्विकता से सजाकर निकट लाता है उसी परिचय के लिए मैं अपने कल्पित पात्रों को वास्तविकता से सजाकर निकट लाता है, उसी परिचय के लिए मैं अपने पथ के साथियों को कल्पना का परिधान पहनाकर दूरी की दृष्टि क्यों करती? परन्तु मेरा निकटवर्ती जनित आत्म-विज्ञान उस राख से अधिक महत्व नहीं रखता, जो आग को बहुत समय तक सजीव रखने के लिए ही अंगारों को घेरे रहती है। जो इसके पार नहीं देख सकता, वह इन चित्रों के हृदय तक नहीं पहुँच सकता।"

अभ्यास प्रश्न 2

क) लघु उत्तरीय प्रश्न :-

1. संस्मरण तथा रेखाचित्र में क्या अन्तर है?
2. रेखाचित्र को अंग्रेज़ी में क्या कहते हैं?
3. रेखाचित्र में किन विशेषताओं का होना आवश्यक है? अपने शब्दों में लिखिये।

ख) किसका कथन हैः-

1. "रेखाचित्र वस्तु, व्यक्ति अथवा घटना का शब्दों द्वारा विनिर्मित वह मर्मस्पर्शी और भावमय रूप विधान है, जिसमें कलाकार का संवेदनशील हृदय और उसकी सूक्ष्मपर्यवेक्षण दृष्टि, अपना निजीपन उँडेलकर प्राण-प्रतिष्ठा कर देती है।"

2."इन स्मृति-चित्रों में मेरा जीवन भी आ गया है। यह स्वाभाविक भी है। अंधेरे की वस्तुओं को हम अपने प्रकाश की धुँधली या उजली परिधि में लाकर ही देख पाते हैं। उसके बाहर तो वे अंधकार के अंश हैं।"

8.4.3 यात्रावृत्त

स्वभावतः मनुष्य एक जिज्ञासु प्राणी है; यही कारण है कि प्रारम्भिक काल से ही वह यात्राएँ करता रहा है। आज भी वह समय-समय पर कभी ज्ञान की प्यास बुझाने के लिए, कभी आनन्द की अनुभूति के लिए, कभी व्यापारिक लाभ प्राप्ति के लिए, तो कभी जीवन के बहुमुखी विकास के लिए विभिन्न स्थानों का भ्रमण एवं यात्राएँ करता रहता है; क्योंकि यायावरी प्रवृत्ति मनुष्य की एक मूल प्रवृत्ति है। अपनी किसी यात्रा का विवरण प्रस्तुत करने मात्र से ही कोई रचना यात्रावृत्त नहीं बन जाती। यात्रावृत्त के लिए लेखन के आवश्यक है कि लेखक संवेदनशील होकर स्वछन्दता, निरपेक्षता एवं आत्मीयतापूर्वक अपनी यात्रा करे; क्योंकि इसके अभाव में यदि वह अपनी किसी यात्रा के विषय में लिखेगा, तो वह उत्कृष्ट कोटि का यात्रावृत्तान्त न होकर, केवल यात्राविवरण बनकर रह जाएगा।यात्रावृत्त, स्मारक साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण विधा है; इसे लिखते समय लेखक अपनी यात्रा के चित्रों को इस प्रकार उकेरता है कि उस यात्रावृत्तान्त को पढ़ते समय पाठ, रोमांचित एवं उल्लसित-भावमग्न होकर, मानसयात्रा करते हुए स्वयं को लेखक का सहयात्री-सा अनुभव करता है। यात्रावृत्त की यही रोचकता एवं जीवन्तता, उसे सदैव आकर्षक बनाए रखती है।

निःसंदेह प्राकृतिक सौंदर्य अधिकांशतः लोगों को आकृष्ट करता है, तथा विभिन्न देशों की विविधता, सांस्कृतिक विशिष्टता, ऋतु-परिवर्तन और उसके सौंदर्य के वैचित्र्य से मानव मंत्रमुग्ध एवं उल्लसित होता रहा है; किन्तु प्रत्येक व्यक्ति में यह क्षमता नहीं होती कि वह विभिन्न स्थानों का भ्रमण करके, अपने उस उल्लास, सौंदर्यबोध एवं स्मृतियों को लिपिबद्ध कर सके। जब एक लेखक अपनी यात्रा संबंधी अनुभूति की स्मृतियों को शब्दचित्रों के माध्यम से उकेरता है, तब वह रचना यात्रावृत्त कहलाती है। यात्रावृत्तान्त मुख्यतः निम्नलिखित शैलियों में लिखे जाते हैं-

1. भावात्मक शैली
2. विचारात्मक शैली
3. आलंकारिक शैली
4. व्यंग्यात्मक शैली
5. चित्रात्मक शैली

यद्यपि यात्रावृत्तान्त अनेक शैलियों में लिखे जाते हैं, किन्तु लेखक के लिए यह बाध्यता नहीं है कि वह अपनी किसी यात्रा का वृत्तान्त लिखते समय, आदि से अन्त तक उसे एक ही शैली में लिखे; तथापि यह अवष्य कहा जा सकता है कि किसी यात्रासाहित्य लेखन की उत्कृष्टता एवं सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उसमें सामान्यतः यात्रावृत्त की सभी शैलियों का संतुलित प्रयोग किया गया हो। यात्रा साहित्य द्वारा जहाँ एक ओर पाठकों के ज्ञान में अभिवृद्धि होती है, वहीं दूसरी ओर उन्हें कथा साहित्य जैसी आनन्द की अनुभूति भी होती है। यही कारण है कि आज भी साहित्यकारों द्वारा यात्रा साहित्य को लालित्य प्रदान करने के लिए अभिनव प्रयोग किए जा रहे हैं।

भारतेन्दु युग के अनेक लेखकों- बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, श्रीमती हरदेवी,दामोदर शास्त्री आदि ने यात्रावृत्त-लेखन की दिशा में योग दिया। भारतेन्दु हरिशचन्द्र की 'सरयूपार की यात्रा', 'लखनऊ की यात्रा' तथा 'हरिद्वार की यात्रा' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

द्विवेदी युग के यात्रावृत्त-लेखकों- देवकीनन्दन खत्री, गोपालराम गहमरी, ठाकुर गदाधरसिंह तथा स्वामी सत्यदेव परिव्राजक आदि ने न केवल अपनी पूर्व परम्परा को जीवित बनाए रखा, वरन् भावी विकास की दिशा में भी अविस्मरणीय सहयोग दिया। प्रारम्भिक एवं मध्यकाल में अधिकांश लेखक, सहृदयता एवं भावुकता के सहारे यात्रावृत्त लिखा करते थे; किन्तु भौतिक विकास के साथ हृदयपक्ष गौण और बुद्धिपक्ष प्रबल होता चला गया, परिणामस्वरूप वर्तमान साहित्यकार यात्रावृत्त लिखते समय भाषा की कलात्मकता को अधिक महत्त्व नहीं दे रहे हैं।

आधुनिक युग के यात्रावृत्त लेखकों में जवाहरलाल नेहरू, राहुल सांकृत्यायन, सेठ गोविन्ददास, हीरानन्द सचिदानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय, मोहन राकेश, राजेन्द्र अवस्थी, निर्मल अवस्थी, रामधारी सिंह 'दिनकर' विष्णुप्रभाकर, नेत्रसिंह रावत आदि के नाम प्रमुख हैं। राहुल सांकृत्यायन एक ऐसे यायावर थे, जिनका अधिकांश जीवन भ्रमण में ही व्यतीत हुआ; यात्रावृत्त लेखन में उनका अनन्यतम स्थान है।

अभ्यास प्रश्न 3

क) लघु उत्तरीय प्रश्न :-

1. यात्रावृत्त-लेखन की प्रमुख शैलियाँ कौन-कौन सी हैं?
2. यात्रावृत्त तथा यात्राविवरण में क्या अंतर है?
3. अधिकांश जीवन भ्रमण में व्यतीत करने वाले लेखक का क्या था?

8.4.4 डायरी

'डायरी' अथवा 'दैनन्दिनी' में किसी व्यक्ति के जीवन का व्यक्तिगत विवरण अंकित होता है। जिसमें वह अपने जीवन के किसी विशेष दिन, महीने अथवा साल की किसी विशिष्ट घटना, स्मृति, अथवा उससे संबंधित अनुभूति और विचार को लिखता है। यह सत्य है कि मूलरूप में 'डायरी' व्यक्ति के जीवन का निजी दस्तावेज़ होती है; किन्तु उसमें कुछ ऐसी बातें भी होती हैं जिसे सार्वजनिक करने में लेखक को कोई आपत्ति नहीं होती। यही कारण है कि अधिकांशतः डायरी अपने मूलरूप में प्रकाशित न होकर संपादित रूप में प्रकाशित होती है।

हिन्दी साहित्य में 'डायरी-विधा' के सूत्र हमें आधुनिक युग से पूर्व 1885 में प्रकाशित राधाचरण गोस्वामी की 'दैनंदिनी' से ही मिलने प्रारम्भ हो जाते हैं। उसके बाद 1909 में सत्यदेव की 'मेरी डायरी'; 1930 में नरेन्द्रदेव शास्त्री वेदतीर्थ की 'जेल डायरी'; 1940 में घनश्यामदास बिड़ला की 'डायरी के कुछ पन्ने'; 1952 में इलाचन्द्र जोशी की ' डायरी के कुछ नीरस पन्ने'; सियारामशरण गुप्त की 'दैनिकी'; 1958 में धीरेन्द्र वर्मा की 'मेरी कॉलेज डायरी' 1972 में पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की 'मेरी डायरी'; 1977 में जयप्रकाशनारायण की 'मेरी जेल डायरी' तथा 1985 में मोहन राकेश कृत 'डायरी साहित्य' आदि का, डायरी लेखन के विकास में महत्त्वपूर्ण योग रहा है।

अपने समय को प्रतिबिम्बित करने के कारण डायरी, लेखक का नितान्त व्यक्तिगत दस्तावेज़ होते हुए भी, उसके समय को प्रतिबिम्बित करने वाला दस्तावेज़ भी बन जाती है। रचनाकारों की दैनन्दिनी से हमारे समक्ष यह सत्य उद्घाटित होता है कि रचनाकार भी आम व्यक्ति

की तरह ही अपने जीवन में व्यथा, असंतोष, अवसादकी स्थितियों से गुज़रता है। यही कारण है कि लेखकों की डायरी, हमारे लिए उनके समय, परिवेश, व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व को जानने-समझने की दृष्टि से नितान्त उपयोगी सिद्ध होती है।

8.4.5 पत्र

सामान्यतः पत्र-व्यवहार जीवन का आवश्यक अंग रहा है; किन्तु कुछ पत्र अपनी कलात्मकता के कारण भाषा के साहित्य की अमूल्य निधि होते हैं। पत्र साहित्य आधुनिक काल की नवोदित विधा के रूप में प्रतिष्ठित हुआ है। पाष्चात्य विचारकों भी साहित्य के क्षेत्र में पत्रों के महत्त्व को स्वीकारा है।

डॉ. जॉनसन ने अपनी शिष्या को लिखा था- "पत्र लेखक के हृदय का दपर्ण होते हैं।"

डॉ. रिचर्ड का कथन है- "पत्र, पत्र-लेखक के जीवन का अध्ययन करने में प्रमाणिक आधार होते हैं।"

साहित्य में केवल उन पत्रों को सम्मिलित किया जाता है, जो वैयक्तिक एवं अनौपचारिक होते हैं। जिन पत्रों के माध्यम से हमें किसी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति के व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व को जानने-समझने में सहायता मिलती है; जिनमें कोई युग विशेष अपनी विविधता में प्रतिबिम्बत होता है, या जिनमें हमें कलात्मकता के दर्शन होते हैं, उन्हीं पत्रों का साहित्यक महत्त्व होता है। ऐसे पत्र जब पत्र-पत्रिकाओं में, अथवा पुस्तकों में संकलित होकर प्रकाशित होते हैं; तब पत्र साहित्य अस्तित्त्व में आता है। पत्र अनुसंधान-कार्य में भी बहुत सहायक होते हैं। आधुनिक काल से पूर्व पत्रों को संकलित करके उन्हें प्रकाशित कराने की परम्परा नहीं थी; कदाचित्, यही कारण है कि इस युग से पूर्व हमें पत्र साहित्य के सूत्र अभी तक उपलब्ध नहीं हुए हैं।

सर्वप्रथम 1928 में 'चाँद' पत्रिका का' पत्र विशेषांक' प्रकाशित हुआ, उसके बाद 1953 में ज्ञानोदय, 1963 में सम्मेलन-पत्रिका, 1982 में सारिका, 1989 में विश्वभारती आदि पत्रिकाओं के भी पत्र विशेषांक प्रकाशित होते रहे हैं। पत्रिकाओं की तरह ही साहित्यकारों के अभिनन्दनग्रंथ, स्मृतिग्रंथ, जीवनी आदि में भी उनके पत्रों को भी प्रकाशित करने की परम्परा बनी हुई है। इसके अतिरिक्त अनेक साहित्यकारों ने आत्मकथा में भी पत्र प्रकाशित किए हैं।

'पत्रों के आइने में स्वामी दयानन्द सरस्वती' में संगृहीत पत्रों को पढ़कर हमें, आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती की सुधार-भावना, उनका हिन्दी और संस्कृत-प्रेम, फ़ारसी-विरोध, गोवंश की रक्षा, आर्थिक अनुशासन आदि के विषय में ज्ञात होता है।

पत्रों के विषय में कहा जा सकता है कि वास्तव में पत्र वह माध्यम हैं जिनके द्वारा हमें किसी महापुरुष, साहित्यकार अथवा कलाकार आदि के व्यक्तित्त्व की विशिष्टता, उनके प्रेरणास्रोत, उनके सरोकार आदि की सहज ही जानकारी प्राप्त हो जाती है।

अभ्यास प्रश्न 4

1. डायरी-विधा के सूत्र हमें किसकी डायरी में मिलते हैं?
2. पहला पत्र-विशेषांक कब और किस पत्रिका में प्रकाशित हुआ?

3. पत्र साहित्य में किन पत्रों को शामिल किया जाता है?

8.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपने जाना कि

- स्मृति आधारित साहित्य की विशेषता स्मृति, सूक्ष्म निरीक्षण एवं आकर्षक शैली होती है।
- संस्मरण किसी व्यक्ति, घटना, स्थिति को आधार बनाकर उसके प्रति संवेदनात्मक अनुभूतियों को प्रस्तुत करता है।
- रेखाचित्र का संबंध चित्रकला से है। रेखाचित्र में लेखक शब्द-चित्र के माध्यम से किसी व्यक्तित्व के व्यक्तित्व को उकेरता है।
- यात्रावृत्त विधा का संबंध लेखक द्वारा अपनी यात्रा को सृजनात्मक धरातल प्रदान करना है।
- डायरी लेखक द्वारा अपनी दिनचर्या को सृजनात्मक रूप में प्रस्तुत करने का एक ढंग है।
- पत्र विधा दो व्यक्तियों के बीच हुए आत्मिक पत्र-संवाद को कहते हैं।

8.6 शब्दावली

- कलात्मकता – किसी कार्य को करने का लालित्य पूर्ण ढंग
- अनौपचारिक – सहज, हृदयगत
- सांकेतिकता – हृदयगत लगाव
- सजीवता – जीवंत

8.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

क) रिक्त स्थानों की पूर्तिः-

1. संस्मरणकार का मुख्य उद्देश्य पात्र, अथवा घटना आदि विषयों की उन विशेषताओं को अंकित करना होता है, जिसकी छवि हमारे मनोमस्तिष्क पर अमिट छाप अंकित कर सके।

2. स्मारक साहित्य की एक विशिष्ट विधा होने के कारण संस्मरण में स्मृति का विशेष महत्त्व होता है।

3. इसका वर्ण्यविषय कोई साहित्यकार, दार्शनिक, वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ और खिलाड़ी ही नहीं, कोई घसियारिन, किसान, मजदूर, अर्थात् दलित सर्वहारा वर्ग से संबंधित व्यक्ति भी हो सकता है।

ख) लघु उत्तरीय प्रश्न :-

1. संस्मरण, रेखाचित्र, आत्मकथा, जीवनी, यात्रावृत्त, डायरी, पत्र ।

2. स्मृति पर आधारित होने के कारण, तथा वर्णन-पद्धति की कुछ विशिष्टताओं के कारण, गद्य साहित्य की नवीन विधाओं को 'स्मारक साहित्य' कहा जाता है।

3. हिन्दी साहित्य में 'गद्य' का आविर्भाव उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ।

4.'स्मारक' का शाब्दिक अर्थ है- स्मृति पर आधारित कोई निर्मिति; अर्थात जब हम किसी व्यक्ति अथवा किसी घटना विशेष की स्मृति में कोई रचनात्मक कार्य करते हैं, उसे स्मारक कहा जाता है।

5. स्मारक साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. स्मृतिआधृत गद्यात्मक अभिव्यक्ति।
2. आत्माभिव्यक्ति की छटपटाहट।
3. कल्पनातत्त्व का अभाव।
4. कथातत्त्व की अनिवार्यता।
5. मनोवैज्ञानिक विश्लेषणात्मकता।
6. यथार्थ के प्रति लेखक की नवीन दृष्टि।
7. चित्रात्मकता तथा वर्णनात्मकता।

अभ्यास प्रश्न 2

क) किसका कथन हैः-

1. रामगोपाल वर्मा 2. महादेवी वर्मा

1. संस्मरण सामान्यतया किसी साधारण या विशिष्ट व्यक्ति से सम्बन्धित किसी संवेदनशील स्मृति के प्रत्यक्षीकरण को कहा जा सकता है रेखाचित्र भी प्रायः इसी प्रकार के व्यक्ति का वर्णन प्रस्तुत करता है। रेखाचित्र साधारण से साधारण व्यक्ति का भी हो सकता है जबकि संस्मरण प्रायः महान विभूतियों से ही सम्बन्ध रखता है।

2. स्केच,

3. एक तो, रेखाचित्र काल्पनिक न होकर वास्तविक होते हैं; और दूसरे, रेखाचित्र का सृजन किसी वस्तु या व्यक्ति को लेकर होता है। इसके साथ ही साथ शैली की दृष्टि से रेखाचित्र में चित्रात्मकता भावात्मकता सांकेतिकता और प्रभावोत्पादकता आदि विशेषताओं का होना आवश्यक है।

अभ्यास प्रश्न 3

1. भावात्मक शैली, विचारात्मक शैली, आलंकारिक शैली, व्यंग्यात्मक शैली, चित्रात्मक शैली;

2. यात्रावृत्त के लिए के आवश्यक है कि वह संवेदनशीलता, स्वछन्दता, निरपेक्षता एवं आत्मीयतापूर्ण हो; इसके अभाव में यदि लेखक अपनी किसी यात्रा के विषय में लिखेगा, तो वह उत्कृष्ट कोटि का यात्रावृत्तान्त न होकर, केवल यात्राविवरण बनकर रह जाएगा।

3. राहुल सांकृत्यायन।

अभ्यास प्रश्न 4

1. आधुनिक युग से पूर्व 1885 में प्रकाशित राधाचरण गोस्वामी की 'दैनंदिनी' से।
2. 1928 'चाँद' पत्रिका में।
3. साहित्य में केवल उन पत्रों को सम्मिलित किया जाता है, जो वैयक्तिक एवं अनौपचारिक होतेहैं।

8.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. वर्मा, धीरेन्द्र , हिंदी साहित्य कोश I, ज्ञानमण्डल प्रकाशन।

8.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. तिवारी, रामचन्द्र , हिंदी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन।

8.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. स्मारक साहित्य से आप क्या समझते हैं ? विस्तार से स्पष्ट कीजिए तथा संस्मरण और रेखाचित्र में अंतर बताइये करें।

इकाई – 9 यात्रा साहित्य : तात्विक विवेचन

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना
9.2 पाठ का उद्देश्य
9.3 यात्रा साहित्य: परिचय, स्वरूप एवं इतिहास
    9.3.1 यात्रा साहित्य : परिचय
    9.3.2 यात्रा साहित्य: स्वरूप
    9.3.3 यात्रा साहित्य: इतिहास
9.4 यात्रा साहित्य की विशेषता
9.5 यात्रा साहित्य: भाषाई मूल्यांकन का प्रश्न
9.6 यात्रा साहित्य: अन्य गद्य विधाओं से संबंध
9.7 मूल्यांकन/सारांश
9.8 शब्दावली
9.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
9.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
9.11 उपयोगी/सहायक पाठ सामग्री
9.12 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

यात्रा साहित्य विधा भी है और सांस्कृतिक-कर्म भी।कोई सचेतन लेखक जब राज्य देश-विदेश की यात्रा के बहाने वहाँ के परिवेश-दृश्य, रीति-रिवाज, भाषा-संस्कृति इत्यादि का सृजनात्मक भाषा में परिचय प्रस्तुत करता है तो उसे यात्रा-साहित्य की संज्ञा दी जाती है। यात्रा का उद्देश्य प्राथमिक रूप में 'मन-बहलाव' होता है, यानी कोई व्यक्ति जब एक ही जगह-परिवेश में रहते-रहते अपने आपको थका-अपृजनोन्मुख पाता है, त बवह यात्रा करने के लिए प्रेरित होता है। वह यात्रा प्राकृतिक जगह की भी हो सकती है और सामाजिक मेल-मिलाप (रिस्तेदार-सम्बन्धी के यहाँ) के लिए भी और धार्मिक-सांस्कृतिक भी। अतः यात्रा के प्रयोजन अनन्त हैं और उसी के अनुसार उसके स्वरूप में भी भिन्नता मिलने लगती है। पहले की यात्रा का प्रयोजन राज्य-देश-विदेश को जानने की जिज्ञासा भर होती थी। क्योंकि उस समय न तो आजकल की तरह यातायात के साधन उपलब्ध थे और न ही सामाजिक संप्रेषण के साध नही इतने उन्नत थे। उस समय की यात्रा का प्रधानतः उद्देश्य कौतूहल-जिज्ञासा के शमन का साहसिक प्रयत्न करना ही हुआ करता था। इसलिए प्राचीन यात्राएँ प्रधानतः कौतूहल-शमन के लिए हुआ करती थीं या अधिक-से-अधिक धार्मिक-परलोक की प्राप्ति का साधन (जैसे मक्का-येरूसलम इत्यादि की यात्रा.....)। उस समय यात्रा साहित्य नहीं था, ऐसा तो हम नहीं कह सकते क्योंकि सिन्दबाद की यात्रा जैसे विवरण-साहित्य हमें मिलता ही है लेकिन जैसा कि हमने कहा उसका उद्देश्य प्राथमिक रूप में साहित्यिक या सांस्कृतिक नहीं था।

साहित्य के रूप में यात्रा-साहित्य का प्रारम्भ आधुनिक काल की देन है। अन्य गद्य विधाओं के जन्म की प्रक्रिया में यात्रा-साहित्य का भी जन्म हुआ है। जैसे-जैसे मानव-सभ्यता का प्रसार होता गया वैसे-वैसे मनुष्य एक-दूसरे को जानने के लिए उत्सुक होता गया। पहले तो यह जानना भौगोलिक रूप में होता रहा फिर क्रमशः ऐतिहासिक और सांस्कृतिक रूप में ..... । अतः इस ढंग से यात्रा-साहित्य न केवल साहित्यिक विधा के रूप में हमारे सामने आया अपितु वह सांस्कृतिक-विस्तार का माध्यम भी बनता गया। एम.ए.एच.एल 202 की यह इकाई यात्रा साहित्य पर केंद्रित है। इस इकाई में हम यात्रा साहित्य के इतिहास, स्वरूप को विस्तार से पढ़ेगें।

9.2 पाठ का उद्देश्य

एम. ए. एच. एल-202 की यह नौवीं इकाई है। इस इकाई में हम यात्रा साहित्य के परिचय, स्वरूप एवं इतिहास से हम परिचित हो सकेंगे। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् हम-

- यात्रा-साहित्य का अभिप्राय समझ सकेंगे।
- यात्रा- साहित्य के इतिहास से परिचित हो सकेंगे।
- यात्रा-साहित्य के भेद एवं स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।
- आत्मकथा की प्रमुख विशेषताओं को समझ सकेंगे।

- यात्रा-साहित्य की प्रमुख कृतियों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- यात्रा-साहित्य के सांस्कृतिक-कर्म से परिचित हो सकेंगे।
- यात्रा-साहित्य की विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- यात्रा-साहित्य की भाषा-शब्दावली को समझ सकेंगे।

9.3 यात्रा साहित्य: परिचय, स्वरूप एवं इतिहास

9.3.1 यात्रा साहित्य : परिचय

प्रस्तावना में हमें यात्रा साहित्य का थोड़ा-परिचय प्राप्त किया। हमने पढ़ा कि यात्रा और यात्रा-साहित्य का मूलभूत अंतर क्या है ? या वह कौन से कारण होते हैं, तत्व होते है जब कोई यात्रा यात्रा-साहित्य का रूप ले लेती है ? यहाँ हम संक्षेप में इसे समझने का प्रयास करेंगे।

यात्रा-साहित्य का सीधा सम्बन्ध आधुनिकता से हैं। आधुनिकता के आगमन के पश्चात सामाजिक ढ़ाँचे में मूलभूत परिवर्तन हुए, जिसके परिणामस्वरूप प्रमुखतया पुरानी चीजों को नये ढंग से देखने की दृष्टि का विकास हुआ। एक यात्री और यात्रा-लेखक में मूलभूत अंतर यह होता है कि यात्री जहाँ केवल किसी जगह का अपनी सुविधानुसार प्रयोग करता है। वहीं यात्रा-लेखक किसी जगह का उपयोग सांस्कृतिक संदर्भों में स्थिर करता है। अर्थ यह कि यात्रा के साहित्य ठलने की प्रक्रिया में नवीन दृष्टि का महत्वपूर्ण योगदान है। अगर हम यह कहें कि आधुनिक हिंदी साहित्य का आरम्भ ही यात्रा और संस्कृति के घात-प्रतिघात से हुआ तो उसमें कोई अत्युक्ति नहीं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा की गई बंगाल, उड़ीसा की यात्रा ने आधुनिक गद्य विधाओं की पृष्ठभूमि निर्मित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, यह हम जानते ही हैं। 'सरयू पार की यात्रा' 'मेहदावल की यात्रा' 'लखनऊ की यात्रा' आदि यात्रा वृत्तान्त भारतेन्दु के प्रारंभिक यात्रा-साहित्य के उदाहरण हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने यात्रा को व्यापक सांस्कृतिक प्रयत्न के रूप में देखा, जो नवजागरणवादी चेतना के नाम क्रम में ही है।

9.3.2 यात्रा साहित्य: स्वरूप

आपने यात्रा-साहित्य का परिचनात्मक अध्ययन किया। आपने अध्ययन किया कि यात्रा साहित्य का सम्बन्ध बदलती अभिरूचि के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है। अब हम यात्रा साहित्य के प्रकार, यात्रा व यात्रा-साहित्य का भेद व यात्रा से साहित्य में रूपान्तरण की प्रक्रिया यानी यात्रा साहित्य के गठन एवं स्वरूप का अध्ययन करेंगे।

यात्रा के कारण

यात्रा करने के कई कारण होते हैं। यात्रा करने के कारणों को हम एक आरेख के माध्यम से इस प्रकार समझ सकते हैं।

यात्रा के कारण (आरेख)

कौतूहलवश

सामाजिकता

चिकित्सा
प्रकृति-प्रेम
व्यवसाय
धर्म
ज्ञानार्जन
सांस्कृतिक अध्ययन के लिए

यात्रा के लिए एक नहीं, अनेको कारण होते हैं। आरेख में हमने कुछ यात्रा-कारणों का उल्लेख किया है। मनुष्य का स्वभाव प्रारम्भ से ही कौतूहल-शासन के लिए साहसिक यात्राएँ करने का रहा है। फिर चाहे वह विस्तार नापना हो या दूसरे देशों की संस्कृतियों को जानना। ('देख ले उस पार क्या है' जैसी जिज्ञासा वृत्ति मनुष्य के मूल में है।) सामाजिक दिन-चर्या के क्रम में मनुष्य की सर्वाधिक यात्राएँ होती है। परस्पर मेल-मिलाप, विवाहोत्सव, मंगल-कार्यक्रम मनुष्यता की वृद्धि के साधन बनते हैं।

- चिकित्सा के लिए मात्रा-प्रसंग तो चिर-परिचित ही हैं हुनमान द्वारा संजीवनी बूटी का उद्योग तो जग-जाहिर है ही।
- मनुष्य की मात्रा का बड़ा कारण प्रकृति-साहचर्य है। मनुष्य पहले जंगल में रहता था, तब वह प्रकृति के ज्यादा नजदीक था। कालान्तर में नगरीकरण की प्रक्रिया के कारण वह प्रकृति से दूर होता गया। लेकिन मूल रूप में मनुष्य और प्रकृति का आत्मिक रिश्ता बना रहा। यही कारण है कि मनुष्य प्रकृति के पास जाकर अपने को तरोताण-नवीन महसूस करता है। अतः मनुष्य की प्राकृतिक यात्रा अनिवार्य प्रक्रिया हैं।
- प्राचीन समय में एक ही जगह, समाज में मनुष्य की सभी जरूरतें पूरी हो जाती थीं, किन्तु आज का समाज पूरी तरह बदल चुका है। आज का मनुष्य अच्छे व्यवसाय के लिए संपूर्ण पृथ्वी की यात्रा करता है। आवागमन व यातायात के आधुनिक संशाधनों ने मनुष्य को भौतिक उन्नति के लिए प्रेरित किया है।
- धार्मिक कार्य यात्रा प्राचीन काल से ही की जाती रही है। धार्मिक पुरूष के जन्मस्थान-मृत्यु के स्थल हों या मनुष्य धार्मिक केंद्र यात्रा के बड़े कारण रहे हैं। मक्का-मदीना, यंरूसलम, चार धाम यात्रा, चार पीठ, काशी-प्रयागपुरी-हरिद्वार जैसे स्थलों की यात्रा इसी क्रम में हैं।
- प्राचीन युग में ज्ञानार्जन के कुछ प्रसिद्ध केंद्र हुआ करते थे। तक्षशिला, नालन्दा, विक्रमशिला, काशी जैसे केंद्र ज्ञानार्जन के प्रसिद्ध केंद्र हुआ करते थे। आज कुछ केंद्र नहीं रहे गये, बल्कि उनका स्थान देश-विदेश के कई केंद्रों ने ले लिया है। अतः परिवर्तित रूप में भी ज्ञानार्जन यात्रा का बड़ा कारण है।

- यात्रा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण सांस्कृतिक-यात्रा है। मनुष्य की भिन्न-भिन्न संस्कृतियाँ अपने स्वरूप में एक-दूसरे से भिन्नता भी लिये हुए हैं और एक-दूसरे को प्रभावित भी करती है। मनुष्य सत्य की प्राप्ति में सांस्कृतिक अध्ययन महत्वपूर्ण सिद्ध होता रहा है। इस कारण सांस्कृतिक यात्रा की प्रासंगिकता हमेशा से ही बनी हुई हैं।

यात्रा के प्रमुख कारणों के अध्ययन के पश्चात् अब हम उन कारणों व प्रक्रिया की खोज करेंगे, जिसके कारण यात्रा, यात्रा-साहित्स में रूपान्तरित हो जाती हैं जैसा कि हमने पूर्व में ही संकेत किया कि यात्रा से साहित्य बनने की प्रक्रिया 'दृष्टिगत' हैं। एक ही यात्रा सामान्य मनुष्य के लिए मनबहलाव का साधन मात्र है, वहीं दूसरी ओर साहित्यकार के लिए सांस्कृतिक-विचार का साधन। उदाहरणस्वरूप यदि इसे हम समझना चाहें तो यात्रा के भौगोलिक व ऐतिहासिक संदर्भों में इसे अच्छी तरह समझ सकते है। जैसे कोई लेखक किसी देश के इतिहास का अध्ययन कर रहा हो.....सामान्यतः पहले वह उस देश के ज्ञात इतिहास की उम्र, प्रमुख घटना इत्यादि का अध्ययन करता है, लेकिन इतिहास से साहित्य में रूपान्तरण की प्रक्रिया में लेखक उस देश के इतिहास का प्रभाव वहाँ के मनुष्यों की चिंतनधार से जोड़ देता है। इतिहास से साहित्य बनने की प्रक्रिया में लेखक कल्पनात्मक ढंग से इतिहास की रिक्तता को पूरा करता है। ठीक इसी प्रकार अगर कोई लेखक भौगोलिक संदर्भ में किसी देश का अध्ययन करता है तो वह उस देश का भौगोलिक विस्तार, घन्त्व, रहन-सहन, वेश-भूषा इत्यादि का अध्ययन करता है, लेकिन जब कोई लेखक कल्पनात्मक ढंग से भौगोलिक संदर्भों का प्रयोग उस देश के मनुष्यों की चेतना पर पड़े असर के रूप में व्याख्यायित करता है त बवह साहित्य बन जाता है।

यात्रा-साहित्य (आरेख-2)

परिचयात्मक
कल्पनात्मक
तथ्यात्मक
तुलनात्मक
सांस्कृतिक
विश्लेषणात्मक

9.3.3 यात्रा-साहित्य: इतिहास

पूर्व में आपने अध्ययन किया कि यात्रा मनुष्य की कौतूहल-वृत्ति से जुड़ा हुआ तत्व है। मनुष्य की यायवरी वृत्ति, अनुसंधान, साहस का संबंध यात्रा से जुड़ा हुआ है। सभ्यता के विकास क्रम में हम देखते हैं कि यात्राओं ने महत्वपूर्ण निभाई है .....। प्रस्तावना में आपने पढ़ा कि अपने यात्रा-विवरणों को संजोने का प्रयास भी कम नहीं हुआ ..... यात्रा साहित्य या कहें कि यात्रा-वृत्तान्त के पीछे मूल मनोवृत्ति अपने अनुभव को दूसरे से सॉझा करने की मनोवृत्ति है। मनुष्य अपने अनुभवों का लाभ दूसरों को देना चाहता है, जिससे दूसरे मनुष्य व समाज उसका लाभ उठा सकें। इस तरह देखें तो यह विधा अनुभव-सांझा करने की प्रक्रिया से जुड़ी हुई है। इस

प्रकार यात्रा साहित्य का इतिहास पुराना है, लेकिन सृजनात्मक रूप में, कल्पनात्मक साहित्य के रूप में .....सांस्कृतिक पाठ के रूप में ..... आलोचनात्मक विधा के रूप में इसका इतिहास आधुनिक काल से प्रारम्भ होता है। हिंदी साहित्य के संदर्भ में तो यात्रा साहित्य या यात्रा का युगान्तकारी महत्व है। भारतेनदु हरिश्चन्द्र की उड़ीसा, बंगाल की यात्रा ने खुद उनके व्यक्तित्व को बदलने में ऐतिहासिक भूमिका निभाई थी ..... उस यात्रा स पूर्व उनका व्यक्तित्व राजभक्ति का हुआ करता था .....। भारतेन्दु की सभ्याता की मात्रा.....बंगाल की यात्रा जैसे यात्रा वृत्तों ने बंगाल के नवजागरण से हिंदी क्षेत्र को परिचित कराया। उस यात्रा के प्रभावस्वरूप आधुनिक हिंदी गद्य विधाओं व नवजागरणकालीन चेतना का प्रसार हिंदी साहित्य में हुआ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी के यात्रा-वृत्तान्त के अतिरिक्त उस युग के अन्य यात्रा-वृत्त हैं-

देवीप्रसाद खत्री का 'रामेश्वर यत्रा' और बद्री का आश्रम यात्रा पं0 दामोदर शास्त्री का मेरी पूर्व दिग्यात्रा। भारतेन्दु युग के बाद के यात्रा वृत्तान्तों में प्रसिद्ध हैं- शिवप्रसाद गुप्त का 'पृथ्वी प्रदक्षिणा' (1914), स्वामी सत्यदेव परिव्राजक का 'मेरी कैलाश यात्रा (915) और 'मेरी जर्मन यात्रा' (1926), कन्हैयालाल मिश्र 'हमारी जापान यात्रा' (1931) और पंडित रामनारायण मिश्र का 'यूरोप यात्रा में छः मास' (1932), कौतूहल वृत्ति से आगे जाकर यात्रा वृत्तान्तों ने सांस्कृतिक रूप ग्रहण कर लिया है। राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय संदर्भों व चेतना के विकास में भी इस प्रकार के यात्रा-वृत्तान्तों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

हिंदी यात्रा साहित्य के विकास में सबसे बड़ा योगदान राहुल सांकृत्यापन का है। राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय यात्रा का उपयोग आपने सांस्कृतिक कोड पढ़ने में किया हैं राहुल जी के प्रमुख यात्रा संस्मरणों में है- मेरी तिब्बत यात्रा, मेरी लद्दाख यात्रा, किन्नर देश में, रूस में 25 मास, मेरी जापान यात्रा .....आदि।

राहुल जी के पूर्व के यात्रा वृत्तान्त अधिकतर धार्मिक-कौतूहल जैसे तत्वों से ज्यादा आबद्ध हुआ करते थे, राहुल जी ने पहली बार इस विधा को अंतराष्ट्रीय-सांस्कृतिक रूप दिया। राहुल जी के बाद के प्रमुख यात्रा-संस्मरणों में रामवृक्ष बेनीपुरी का - पैरों में पंख बाधकर, उड़ते-उड़ते चलो, प्रसिद्ध लेखक यशपाल का लोहे की दीवार के दोनों ओर, अज्ञेय का , अरे यायावर रहेगा याद, एक बूँद सहसा उछली, भगवतशरण उपाध्याय का कलकत्ता से पैकिंग, सागर की लहरों पर, दिनकर का देश-विदेश, प्रभाकर माचवे का गौरी नजरों में हम, मोहन राकेश का 'आखिरी चट्टान तक, ब्रजकिशोर नारायण का नंदन से लंदन, प्रभाकर द्विवेदी का 'पार उतरी कहँ जइहैं', डॉ0 रघुवंश का 'हरि घाटी' तथा धर्मवीर भारती कृत 'यादें यूरोप की' हिंदी के चर्चित यात्रा साहित्य है।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

9.4 यात्रा साहित्य की विशेषता

अपने यात्रा-साहित्य के प्रकार व इतिहास का अध्ययन कर लिया है। अब हम यात्रा साहित्य की मूल विशेषता का अध्ययन करेंगे।

- देश-काल की जानकारीः- यात्रा साहित्य की मूलभूत विशेषता देश-काल की जानकारी उपलब्ध कराने वाले साहित्य से है। देश-काल का वर्णन करना और पाठकों को उससे परिचित कराना यात्रा साहित्य की प्रमुख विशेषता है। यात्रा साहित्य, किसी देश-काल के रहन-सहन, रीति-रिवाज, खान-पान, पर्व-त्यौहार, भाषा-बोली, खेल-कूद, दीनचर्या, साहित्य व विभिन्न सांस्कृतिक कर्म, प्रकृति व परिवेश इत्यादि का सृजनात्मक ढंग से विवरण प्रदान करना यात्रा साहित्य की प्रमुख विशेषता है। देश-काल का विवरण तो इतिहास ग्रन्थ में भी मिल सकता है, लेकिन उससे साहित्य के देश-काल के विवरण-चित्रण में अंतर है। इतिहास का विवरण शुष्क है जबकि साहित्य का यात्रा वर्णन सरस व मनोरंजक होता है।
- तथ्यों और कल्पना का सम्मिश्रणः- यात्रा साहित्य तथ्यों में सृजन की खोज करने वाली विधा है। विवरण को साहित्यिक रूप प्रदान करने की दृष्टि से यात्रा याहित्य, साहित्य की किसी भी अन्य विद्या से ज्यादा महत्वपूर्ण है। तथ्यों को कल्पना के रंग से रंगकर यात्रा साहित्य की पृष्ठभूमि निर्मित होती है। यात्रा में कल्पना के प्रयोग को हम इस प्रकार भी समझ सकते हैं कि वह यर्थाथ का विस्तार करता है। दिख रहे परिवेश को सृजनात्मक बनाता है .....।
- आत्मनिष्ठता व वस्तुनिष्ठताः- यात्रा साहित्य में आत्मनिष्ठता एवं वस्तुनिष्ठता दोनों का गुण एक साथ पाया जाता है। हॉलाकि प्रधान स्वरूप उसका आत्मनिष्ठ ही होता है। यात्रा साहित्य में चूँकि व्यक्तिगत जीवन के अनुभवों का वर्णन करना लेखक का प्रधान उद्देश्य होता है, इसलिए उसका स्वरूप प्रायः आत्मनिष्ठता लिये ही होता है। यात्रा साहित्य एक तरह से प्रभाववादी रचना भी है, कम-से-कम लेखक की रचना का प्रस्थान तो है ही .....फिर भी लेखक रचना में वस्तुनिष्ठ तत्वों का यथासंभव प्रयोग करता ही है। देश-काल-परिवेश को प्रस्तुत करने में लेखक उन तथ्यों को

वस्तुनिष्ठ ढंग से ही हमारे सामने रखता है .....हाँ उनकी व्याख्या वह आत्मनिष्ठ ढंग से अवश्य करता है।

- स्थानीयता और सार्वकालिकता का समन्वयः- यात्रा साहित्य में स्थानीयता एवं सार्वकालिकता के प्रश्न से भी सृजनात्मक लेखक टकराता है। यात्रा साहित्य अपने गठन में स्थानीयता या कहें कि आँचलित तत्वों से आबद्ध होता ही है, क्योंकि रचनाकार किसी-न-किसी देश के संदर्भ में ही अपनी बात रखता है.....। लेकिन यात्रा साहित्य का प्रधान उद्देश्य उस खास देश-काल को उसके रीति-रिवाजों, रहन-सहन, परम्परा, धर्म-संस्कृति, विचार-लोकाचार के साथ प्रस्तुत कर भी उसको सार्वकालिक संदर्भ में ही प्रस्तुत करना होता है। किसी खास देश-काल के संदर्भ का प्रभाव अन्य स्थान पर, अन्य संस्कृति पर कैसे पड़ता है ? इस तथ्य को दिखाना ही यात्रा साहित्य का प्रधान उद्देश्य होता है।

9.5 यात्रा साहित्य: भाषाई मूल्यांकन का प्रश्न

यात्रा साहित्य में भाषा का प्रश्न महत्वपूर्ण है। अन्य गद्य विधाओं में यात्रा साहित्य की भाषा सर्वाधिक कल्पनात्मक होती है। अपने यात्रा को सृजनात्मक कैसे बनाये ? यह प्रश्न यात्राकार के सामने हमेशा उपस्थित रहता है। प्रायः मनुष्य जीवन-जगत के कार्य-व्यापार में उपयोगी जीवन की तलाश ही करता रहता है। हर मनुष्य अपने जीवन में भिन्न-भिन्न कारणों से यात्रा करता रहता है.....कुछ मनुष्य जब उसे सृजनात्मक रूप प्रदान कर देते हैं तब वह साहित्य के अंतर्गत आ जाता है। सामान्य यात्रा को यात्रा साहित्य बनाने की प्रक्रिया में भाषा का महत्वपूर्ण योगदान होता हैं भाषा जब काल्पनिक हो जाती है, भाषा जब लालिव्यपूर्ण हो जाती है.....तब ही यात्रा साहित्य के लेखन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो पाती है।

9.6 यात्रा साहित्य: अन्य गद्य विधाओं से सम्बन्ध

अन्य गद्य विधा की महत्वपूर्ण विधा होने के कारण यात्रा साहित्य और अन्य गद्य विधाओं से निकट का सम्बन्ध रहा है। यात्रा साहित्य का सम्बन्ध साहित्य की अन्य गद्य विधाओं से होने के कारण कहीं तो यह विधा दूसरी विधा को प्रभावित करती है तो दूसरे खुद प्रभाव भी ग्रहण करती हैं। आइए संक्षेप में यात्रा साहित्य व अन्य गद्य विधाओं के संबंध को देखेने का प्रयास करें।

यात्रा साहित्य का संस्मरणः-

यात्रा साहित्य व संस्मरण दोनों गद्य विधाओं का संबंध स्मृति व पुर्नस्मृति से है। दोनों विधाओं में लेखक अतीत की घटनाओं को पुर्नस्मृति के माध्यम से रचता है.....। यात्रा साहित्य में भविष्य न के बराबर है, ठीक उसी प्रकार जैसे संस्मरण में .....।

यात्रा साहित्य व उपन्यासः- साहित्य की सारी विधाएँ कल्पनात्मक तत्वों से आबद्ध होती ही है.....अतः उनमें परस्पर एकषूत्तता दिखती ही रहती है। जहाँ व्यक्तिगत जीवन एवं समाज-संस्कृति को उव्सवधर्मी चेतना के तहत देखने का कथात्मक प्रयास किया जाता है, वहाँ साहित्य

व्यापक संदर्भ ग्रहण कर लेता है। इस दृष्टि से यात्रा साहित्य, उपन्यास जैसा व्यापक ग्रहण कर लेता है।

यात्रा साहित्य व डायरीः- यात्रा वृत्तान्त व डायरी का निकट का सम्बन्ध होता है। प्रायः यात्रा विवरण दैनंदिनी, दैनिक क्रिया-व्यापार के विवरण के माध्यम से विकसित होता है.....यात्रा लेखक अपने प्रतिदिन के विवरण को डायरी में लिखता चलता है, जिसका आगे चलकर विकास यात्रा साहित्य के रूप में लेखक करता है। इस प्रकार देखें तो डायरी का यायावरी रूप ही यात्रा साहित्य है।

9.7सारांश

एम.ए.एच.एल- 202 के यात्रा साहित्य पर केंद्रित इस इकाई का आपने अध्ययन किया। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपने जाना कि-

- लेखक जब राज्य, देश-विदेश की यात्रा के बहाने वहाँ के परिवेश-दृश्य, रीति-रिवाज, भाषा-संस्कृति इत्यादि का सृजनात्मक भाषा में परिचय प्रस्तुत करता है तो उसे यात्रा साहित्य की संज्ञा दी जाती है।
- पूर्व यात्राएँ प्रायः मनुष्य की कोतूहल-वृत्ति एवं धार्मिक उद्देश्य से संचालित होती थीं किन्तु आधुनिक साहित्य की यात्रा का मूल प्रतिपाद्य सांस्कृतिक पाठ का निर्माण करना है।
- यात्रा में लेखक जब आधुनिक भावबोध को जोड़कर उसे लिखित रूप दे देता है तो उसे यात्रा साहित्य कहा गया है।
- यात्रा के कई कारण हैं, जैसे- कौतूहल-वृत्ति के शमन, सामाजिकता के निर्वाह, चिकित्सा संदर्भ, प्रकृति-प्रेम के कारण, व्यवसाय के लिए, धार्मिक संतोष, ज्ञानार्जन व सांस्कृतिक अध्ययन के लिए।
- आधुनिक यात्रा साहित्य का प्रारम्भ भारतेन्दु के माध्यम से प्रारम्भ होता है.....जिसमें राहुल सांकृव्यायन, अज्ञेय व मोहन राकेश जैसे लेखकों का महत्वपूर्ण योग है।
- देश-काल की जानकारी, तथ्य-कल्पना का सम्मिश्रण, आत्मनिष्ठता व वस्तुनिष्ठता का सन्तुलन व स्थानीयता और सार्वकालिकता के उचित समन्वय से यात्रा साहित्य का गठन होता है।

9.8 शब्दावली

कौतूहल -	जिज्ञासा की वृत्ति
साहचर्य -	साथ व सहअस्तित्व

मनुष्य सत्य - मनुष्य होने का उपकरण-सत्य, धर्म, पवित्रता, अहिंसा आदि।

रूपान्तरण - बदलाव, परिवर्तन

रिक्तता - कमी, खालीपन।

विश्लेषणात्मक - वर्गीकरण एवं व्याख्या का प्रयास

यायावरी वृत्ति - घूमने की वृत्ति

सांझा - बाँटना

लालित्य - सरस।

9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1) (क)

1- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

2- राहुल सांकृत्यायन

3- शिवप्रसाद गुप्त

4- रामवृक्ष बेनीपुरी

5- आखिरी चट्टान तक

(ख) 1- सत्य

2- सत्य

3- सत्य

4- सत्य

5- सत्य

9.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिंदी का गद्य साहित्य - तिवारी, रामचन्द्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

9.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. गद्य साहित्य 2 एवं प्रयोजनमूलक हिंदी- (सं) शुक्ला, शंशाक, कैड़ा, राजेन्द्र, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय।

9.12 निबन्धनात्मक प्रश्न

1. यात्रा साहित्य की प्रवृत्तियाँ निर्धारित कीजिए।
2. यात्रा साहित्य के इतिहास पर प्रकाश डालिये।

इकाई – 10 आत्मकथा विधा : तात्विक विवेचन

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
10.2 पाठ का उद्देश्य
10.3 आत्मकथा: परिचय एवं इतिहास
    10.3.1 आत्मकथा: परिचय
    10.3.2 आत्मकथा: इतिहास
10.4 आत्मकथा साहित्य की प्रवृत्तियाँ
10.5 आत्मकथा साहित्य का अन्य गद्य विधाओं से संबंध
10.6 आत्मकथा साहित्य का आलोचनात्मक मूल्यांकन
10.7 सारांश
10.8 शब्दावली
10.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
10.11 सहायक/उपयोगी पाठ सामग्री
10.12 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

आत्मकथा गद्य विद्या है। इसे साहित्य की 'अन्य गद्य विधा' भी कहा जाता है। इसका कारण यह है कि प्राचीन परम्परा में गद्य साहित्य के भीतर उपन्यास, कहानी एवं नाटक को ही सम्मिलित किया जाता रहा है। इसी कारण आधुनिक युग से प्रारम्भ हुई साहित्य की गद्य विधाओं को 'अन्य गद्य विद्या' कहकर सम्मिलित कर लिया जाता है। वैसे आत्मकथा का अर्थ है- लेखक द्वारा स्वयं के जीवन-वृत्त का आलोचनात्मक परीक्षण करना। यानी आत्मकथा लेखक द्वारा स्वयं के बारे में सृजनात्मक ढंग से किया गया गद्यात्मक आत्मपरीक्षण ही 'आत्मकथा' है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट हो रहा है- आत्म (स्व) की कथा कहना। जाहिर है यह आत्मविश्लेषण, समाजगति से निरपेक्ष नहीं है। अर्थ यह कि लेखक का प्रभाव समाज पर और समाज का प्रभाव लेखक पर कहाँ और किस रूप में पड़ा है, इस विधा में इसका परीक्षण किया जाता है।

'आत्मकथा' की बात वर्षी पुरानी है। आत्मवृत्त प्रस्तुत करने की मनोवृत्ति भी मनुष्य की हमेशा से रही है, फिर भी विधा के रूप में आत्मकथा का प्रचलन आधुनिक काल में ही होता है। इसका कारण क्या है ? प्राचीन समाज में सामाजिक रूप में 'स्व' की बात करना आत्मकथा समझा जाता रहा है। यानी हम बातचीत के क्रम के रूप में दूसरों की ही बात करेंगे। चाहे वह रामायण की कथा हो या महाभारत की कथा, दूसरों की कथाएँ ही हैं। 'अरनियन नाइट्स' की कथाएँ इस ढंग से अपवाद ही हैं। जिसमें एक व्यक्ति अपनी बात कहते हुए विखता है। 'जातक कथाएँ' भी अपने मूल रूप में आत्मकथात्मक ही हैं। लेकिन कुल मिलाकर सुचितावादी समाज में 'स्व' की बात करना आत्मश्लाधा व आत्मकप्रलाप ही समझा जाता रहा, इसी के कारण आत्मकथा विधा का विस्तार संभव नहीं हो पाया। आधुनिकता के उदय ने इसी कारण आत्मकथा के उदय में महत्पूर्ण भूमिका निभाई।

10.2 पाठ का उद्देश्य

एम. ए. एच. एल-202 की यह दसवीं इकाई है। आत्मकथा पर आधारित इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- आत्मकथा के उदय के कारणों को समझ सकेंगे।
- आधुनिकता और आत्मकथा के अंतर्सम्बन्ध का समझ सकेंगे।
- आत्मकथा के इतिहास से परिचित हो सकेंगे।
- आत्मकथा की प्रमुख विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- आत्मकथा साहित्य और अन्य गद्य विधाओं के अंतर्सम्बन्ध की व्याख्या कर सकेंगे।
- प्रमुख आत्मकथात्मक कृति का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- आत्मकथा के बहाने 'स्व' की समझ पैदा कर सकेंगे।

10.3 आत्मकथा: परिचय एवं इतिहास

10.3.1 आत्मकथा: परिचय

आपने आत्मकथा साहित्य की पृष्ठभूमि का संक्षेप में अध्ययन किया आपने आध्ययन किया कि आत्मकथा का संबंध 'आत्मप्रकाशन' की मनोवृत्ति से है। अब हम इस विधा को और अच्छी तरह समझने को प्रयास करेंगे। हमने पढ़ा कि 'आत्मकथा' एक विधा के रूप में आधुनिक काल की देन है। फिर प्रश्न यह कि आत्मकथा साहित्य मध्यकाल तक क्यों नहीं प्रचलित था ? हमें मालूम है कि मध्काल तक के साहित्य में लेखक अपने बारे में कम-से-कम लिखता था। बहुत हुआ तो आत्मानुभूति एवं सामाजानुभूति की प्रक्रिया में लेखक पंक्ति में अपना नाम लिख देता है। अपनी जाति, कुल, वंश, परम्परा का हल्का-सा संकेत-भर कर देता था। कबीर, नानक, सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई के काव्य में हमें इस प्रकार क अस्फुट संकेत बखूबी देखने को मिलते हैं। लेकिन इस प्रकार के संकेत देना भर आत्मकथा नहीं है। 'आत्मकथा' तो संपूर्ण समाज की गतिशीलता के बीच लेखक द्वारा अपनी भूमिका की तलाश का सृजनात्मक प्रयास है। आत्मकथा के नाम पर मध्यकाल में भी आत्मकथा मिलती है, लेकिन जिस आधुनिक आत्मकथा साहित्य की यहाँ बात की जा रही है, वह तो मध्यकाल में कैसे संभव है ?

आत्मकथा के मूल में आत्मप्रकाशन की भावना मूल रूप में रहती है। हम जानते हैं कि पूँजीवादी विकास क्रम में व्यक्तित्व के प्रकाशन पर बहुत बल दिया जाने लगा था। पूँजीवादी विकास से पूर्व अपने बारे में कुछ बोलना या लिखना 'अहंकार' का ही सूचक समझा जाता था। आधुनिक युग में सामाजिक विकास की गतिशीलता की प्रक्रिया में एक-दूसरे को अपने अनुभवों से लाभ देने की भावना ने आत्मकथा साहित्य के उत्प्रेरक का काम किया। आज समाज में निरपेक्ष कुछ भी नहीं है। व्यक्ति की निजी अनुभूतियाँ सामाजिकता के स्पर्श से सामाजिक संपत्ति बन जाती है। व्यक्ति/लेखक में 'स्व' की अनुभूति जितनी तीव्र होगी, वह आत्मप्रकाशन की ओर उतनी ही तेजी से मुड़ेगा।

10.3.2 आत्मकथा: इतिहास

आत्मकथा का परिचय प्राप्त करने क उपरान्त अब हम आत्मकथा साहित्य के इतिहास का संक्षिप्त अध्ययन करेंगे। इस इतिहास में हम विधागत रचनाओं का ही अध्ययन करेंगे।

हिंदी साहित्य की पहली आत्मकथा मध्यकाल में लिखी गई थी। षनारसीदास जैन की आत्मकथा 'अर्द्धकथानक' को हिंदी की पहली आत्मकथा होने का गौरव प्राप्त है। 1641 ई. 'अर्द्धकथानक' का प्रकाशन वर्ष है। कृति में लेखक ने स्वयम् ही रचनाकाल का उल्लेख किया है- ''सोलहवै अट्ठानवें, संवत् अगहन मास। सोमवार तिथि पंचमी, सुबल पक्ष परगास।'' कृति के नामकरण के संबंध में उन्होंने तर्क दिया है कि चूँकि मनुष्य की उम्र 110 वर्ष के लगभग है, इसलिए उसकी आधी (55 वर्ष) उम्र का विवरण कृति में दिया गया है। अतः ग्रन्थ का नाम 'अर्द्धकथानक' सार्थक ही है। अपनी कृति की भाषा को लेखक ने 'मध्यदेश की बोली' कहा है।

रचना की भाषा का मूल ढ़ाँचा ब्रजभाषा का है। जिसमें खड़ी बोली का पुट है। 'अर्द्धकथानक' 675 छंदों में समाप्त हुआ है। ग्रन्थ का प्रधान छनद चौपाई और दोहा है। आत्मकथा में ऐसी अनेक घटनाओं का उल्लेख हुआ है, जो इतिहास की पूर्ति कर पाने में अक्षम हैं। अपने जीवन के उतार-चढ़ाव का वर्णन हो या तत्कालीन व्यापार व्यवस्था या राजतंत्र सभी का आभाष कृति में मिलता है। 'अर्द्धकथानक' के अतिरिक्त मध्यकाल में किसी अन्य प्रामाणिक रचना की सूचना प्राप्त नहीं हुई है। 'अर्द्धकथानक' का उल्लेख यहाँ मात्र परम्परा और स्त्रोत तलाशने के लिए ही हुआ है। क्योंकि ब्रजभाषा और पद्य में रचित यह कृति आधुनिक आत्मकथा की शर्तों पर खरी नहीं उतरती।

आधुनिक काल में आत्मकथा साहित्य के प्रवर्तन का श्रेय भरतेन्दु हरिश्चन्द्र को है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'कुछ आपबिती, कुछ जगबीती' नाम से आत्मकथा लिखी है। जो अधूरी है। भारतेन्दु की आत्मकथा उनके जीवन के प्रारंभिक वर्षों के चित्रण व सामाजिक अवरूदृता के चित्रण के लिए जानी जाती है। स्वामी दयानन्द जी की आत्मकथा का बड़ा हिस्सा उनके भ्रमण व व्याख्यानों से संबंधित हैं भारतेन्दु युग के पश्चात् 'द्विवेदी युग' में भी आत्मकथा के छिटपुट प्रयास होते रहे। सन् 1901 ई. में अम्बिकादत्त व्यास ने 'निजतृत्तान्त' नामक आत्मकथा लिखी थी। स्वामी श्रद्धानन्द की आत्मकथा 'कल्याण मार्ग का पथिक' नाम से प्रकाशित हुई है। आत्मकथा साहित्य का वास्तविक विकास छायावादी साहित्य के उत्थान काल के बाद शुरू होता है। छायावाद ने पहली बार 'स्व' के प्रकटीकरण का मार्ग प्रशस्त किया। प्रेमचन्द्र के संपादकत्व में 'हंस' पत्रिका का सन् 1932 में प्रकाशित 'आत्मकथा विशेषांक' इस ढ़ंग का हिंदी में पहला प्रयास है। इस विशेषांक के माध्यम से आत्मकथा साहित्य की अनिवार्यता के पक्ष या विपक्ष में विचारात्तेजनक बहस हुई। जिससे इस विधा के प्रचार प्रसार एवं प्रतिष्ठान को काफी बल मिलां यहाँ यह बात ध्यान देने की है कि सन् 1932 तक 'आत्कथा' विधा को सामाजिक एवं साहित्यिक स्वीकृति हिंदी समाज एवं साहित्य में नहीं मिल पायी थी। आत्मकथा विधान की दृष्टि से श्यामसुन्दर दास की 'मेरी आत्मकहानी' हिंदी की पहल व्यवस्थित आत्मकथा हैं यह आत्मकथा सन् 1941 ई. में प्रकाशित हुई थी इसी क्रम में राजेन्द्र प्रसाद की 'आत्मकथा' भी महत्वपूर्ण रचना रही हैं। यह आत्मकथा लेखक के व्यक्तिगत जीवन की सूचना के साथ ही साथ सम्पूर्ण समकालीन घटनाओं, व्यक्तियों एवं आन्दोलनों का ही हमारे सामने प्रमाणिक रूप में प्रस्तुत रही है। इसी परम्परा में कुछ और चर्चित आत्मकथाएँ रही है।

अभ्यास प्रश्न 1)

(क) सत्य/असत्य का चयन कीजिए।

1. आत्मकथा पद्य विधा है।
2. आत्मकथा के मूल में आत्मप्रकाशन की प्रवृत्ति रही है।
3. हिंदी साहित्य की पहली आत्मकथा आधुनिक काल में लिखी गई।
4. अर्धकथानक के लेखक बनारसी दास जैन हैं।
5. अपनी खबर के लेखक पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' हैं।

(ख) टिप्पणी लिखिए।

1. आत्मकथा साहित्य की दो रचनाएँ।

1. .....

2. .....

2. आत्मकथा साहित्य की विशेषताएँ लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

10.4 आत्मकथा: साहित्य की प्रवृत्तियाँ

अपने अध्ययन किया कि आत्मकथा साहित्य, आधुनिक युग की गद्य विधा है। आत्मकथा या अन्य गद्य विधाएँ पद्य में क्यों नहीं लिखी जा सकती ? इसका उत्तर यह दिया गया है कि आधुनिक जीवन बुद्धि एवं विचार प्रधान युग है और इसके लिए गद्य ज्यादा उपयुक्त माध्यम है। पद्य मूलतः बिम्ब के आधार पर निर्मित होते हैं और मूलतः भाव को लेकर चलते हैं, और गद्य चूँकि विचार को लेकर चलते हैं, इसीलिए सारी आधुनिक साहित्यिक विधाएँ गद्य में ही निर्मित हुई हैं। प्रश्न उठता है कि आत्मकथा साहित्य का प्रारम्भ किन परिस्थितियों में हुआ ? आपने आत्मकथा साहित्य के इतिहास का अध्ययन करते हुए देखा कि मध्यकाल तक आत्मकथा उस रूप में नहीं लिखी जाती थी जिस रूप यह आज लिखी जाती है। मध्यकालीन कवि कभी-कभार एक-दो पंक्तियों में अपने जीवन संबंधी विवरण दे दिया करते थे, किन्तु यह आत्मकथा नहीं है।

आइए हम आत्मकथा साहित्य की मूल प्रवृत्ति से परिचित हों। 'आत्मकथा' को शब्दों से मिलकर बना है। आत्म $ कथा, यानी लेखक द्वारा खुद की लिखी गई जीवनी। जिस विधा में लेखक अपने प्रारम्भिक जीवन से लेकर संपूर्ण जिये गये जीवन का सृजनात्मक ढंग से रेखांकन करता है, उसे हम आत्मकथा कह सकते हैं। आत्मकथा के लिए यह शर्त नहीं है कि वह संपूर्ण जीवन का रेखांकन प्रस्तुत करे। हो सकता है कि कोई लेखक अपने जीवन के किसी एक समय को ही रेखांकित करे। जैसे उग्र की आत्मकथा में उनके जीवन के प्रारम्भिक 21 वर्ष ही सम्मिलित किए गये हैं। इसीलिए ज्यादा अच्छा यह होता है कि लेखक जीवन के लम्बे हिस्से को अपनी लेखनी का विषय बनाये। आत्मकथा के लिए कहा गया है कि इसमें लेखक द्वारा अपनी खबर लेना और अपनी खबर पाठकों को देना ये दोनों प्रक्रियाएँ शामिल हैं। आत्मकथा में

लेखक सबसे पहले तो आत्मन्वेषण करता है। इस प्रक्रिया में सामाजिक अन्वेषण एवं सत्यान्वेषण की प्रक्रिया भी साथ चलती रहती है। इसीलिए आत्मकथा का एक बड़ा गुण प्रामाणिकता मानी जाती है। अपनी पुस्तक में लेखक जिन ऑकड़ों, तथ्यों को प्रस्तुत कर रहा है, वे सत्य होने चाहिए। चूंकि लेखक के जीवन में घटित घटनाओं का साक्षी स्वयं लेखक होता है, इसीलिए सत्य का एकमात्र प्रामाणिक सा्रेत भी स्वयं लेखक ही होता हैं इसीलिए आत्मकथा में प्रामाणिकता का होना इसकी बड़ी शर्त मानी गई है। आत्मकथा में जीवन की प्रामाणिक एवं तथ्यपटक घटनाओं की अपेक्षा होती है इसीलिए इसमें कल्पना एवं कृत्रिमता के लिए कोई स्थान नहीं होता। आत्मकथा में अतीत की घटनाएँ ही केंद्र में रहती है, इसलिए इसमे कल्पना के लिए स्पेस बहुत कम होता है।

10.5 आत्मकथा: साहित्य का अन्य गद्य विधाओं से संबंध

साहित्य की प्रत्येक विधा अन्य विधाओं से किसी-न-किसी रूप में जुड़ी हुई हैं। इस ढ़ंग से आत्मकथा विधा अन्य गद्य विधाओं से जुड़ी हुई है। आइए हम आत्मकथा और दूसरी विधाओं के अंतर्सम्बन्ध को समझाने का प्रयास करें।

आत्मकथा और जीवनी-

आत्मकथा और जीवनी के सर्वाधिक निकट की विधा है। आत्मकथा और जीवनी दोनों के केंद्र में जीवन-वृत्त होते हैं। आत्मकथा के केंद्र में लेखक की स्वयं की जीवनी होती है तो जीवनी के केंद्र में दूसरे की जीवनी। सम्पूर्ण जीवन की घटनाओं को आलोचनात्मक दृष्टिकोण से देखेने की पद्धति दोनों विधाओं में मिलती है। दोनों विधाओं में वास्तविक जगत के पात्र होते हैं, इस दृष्टि से आत्मकथा और जीवनी सर्वाधिक निकट की विधाएँ हैं।

आत्मकथा और उपन्यास

आत्मकथा और उपन्यास का सम्बन्ध इस दृष्टि से है कि दोनों में जीवन को व्यापक संदर्भों में देखने का प्रयास किया जाता है। आत्मकथा की तरह की उपन्यास में भी एक कथा संघटना और उसका विकास-क्रम देखने को मिलता हैं। दोनों में मूल अंतर यह भी है कि आत्मकथा में वास्तविक जगत के पात्र होते हैं, जबकि उपन्यास में कल्पित घटनाएँ व पात्र होते हैं, हाँलाकि उनका संबंध भी जीवन जगत से होता है।

आत्मकथा-डायरी

आत्मकथा, डायरी विधा से इस प्रकार संबंधित है कि दोनों जीवन-जगत की घटनाओं को कालकमिक संदर्भों में प्रस्तुत करते हैं। आत्मकथा लेखक जब अपने जीवन वृत्त का लेखन करता है तो वह घटनाओं को एक विशेष घटना क्रम में ही सुनियोजित करता है.....यानि पूर्व की घटनाएँ पूर्व में और उर्त्तरार्द्ध की घअनाएँ बाद में ही रखता है। ठीक इसी प्रकार डायरी लेखन में भी अनिवार्य रूप से पाई जाती है।

आत्मकथा-संस्मरण

आत्मकथा और संस्मरण दोनों स्मृति आधारित विधाएँ हैं। आत्मकथा अपने जीवन की घटनाओं, उसके जीवन में आये व्यक्तित्वों को अपनी समृति के सहारे पुनर्रचित करता है। संस्मरण में तो पूरी कथानक ही स्मृति के सहारे चलता है, इसलिए उसमें ज्यादा सूक्ष्मता आ जाती है।

10.6 आत्मकथा: साहित्य का आलोचनात्मक मूल्यांकन

आत्मकथा विधा का संबंध व्यक्ति और समाज के अंतर्सम्बन्ध और उसकी प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है। आत्मकथा का लेखन तब होता है जब किसी व्यक्ति, लेखक को लगता है कि उसकी भूमिका, व्यक्तित्व के सही रूप का मूल्यांकन होना अभी बाकी है दूसरी वजह यह भी होती है कि लेखक को लगता है कि उसकी आत्मकथा के बहाने सामाजिक संघर्ष की गति को बल प्राप्त होगा। व्यक्ति और समाज का संबंध द्वन्द्वात्मक गति से आगे बढ़ता रहता है। व्यक्ति कभी समाज से टकराता है तो समाज कभी व्यक्ति को अनुशासित करता है। इस प्रकार सामाजिक अनुशासन एवं व्यक्तिगत सृजनाकांक्षा की टकराहट से आत्मकथा विधा अस्तित्व में आती है। इस विधा के संदर्भ में यह प्रश्न हमेशा से रहा है कि व्यक्तिगत संघर्ष, सामाजिक गति में सहायक हुआ है या नहीं ? कई बार ऐसा होता है कि आत्मप्रकाशन की तीव्रता में व्यक्ति सामाजिक गति से इतर अपनी सत्ता के स्थापन का प्रयास करता दिखता है।

आत्मकथा के संदर्भ में दूसरा प्रश्न यह है कि वस्तुनिष्ठता और आत्मनिष्ठता का सही सन्तुलन क्या संभव है ? और यदि संभव है तो उसका सन्तुलन कैसे स्थापित होता है ? आत्मकथा चूँकि साहित्य की विधा है ..... और लेखक द्वारा स्वयं के जीवन का परीक्षण है, इस दृष्टि से उसमें आत्मनिष्ठता के तत्व के प्रभावी होने की संभावना हमेशा वर्तमान होती है। लेखक से यह आशा की जाती है कि वह अपने जीवन व समाज को वस्तुनिष्ठ ढंग से देखे। लेकिन क्या यह संभव है ? विज्ञान की तरह की वस्तुनिष्ठता क्या एक साहित्यिक विधा में संभव है ? इस दृष्टि से आत्मकथा लेखक के मन में यह द्वन्द्व हमेशा रहता है कि वह अपनी रचना को आत्मनिष्ठता की अति से कैसे बचाये। आत्मकथा वस्तुतः आत्मनिष्ठता से वस्तुनिष्ठता की यात्रा है इसलिए लेखक में आत्मनिष्ठता के तत्व के प्रभावी होने की संभावना हमेशा वर्तमान होती है। इसी से जुड़ा प्रश्न प्रामाणिकता का भी है। आत्मकथा नीरस, बोझिल न हो जाये, इसलिए लेखक घटनाओं में कल्पना के रंग भरता है। यर्थाथ का अंश तो आत्मकथा के केंद्र में है लेकिन उसके साथ ही लेखक यर्थाथ को सृजनात्मक रूप प्रदान करने के लिए कल्पना के अंश का प्रयोग करता है। आत्मकथा के संदर्भ में प्रामाणिकता का प्रश्न इसलिए भी उठाया जाता है क्योंकि रचना का भोक्ता और दर्शक लेखक स्वयं है, इसलिए उसमें प्रामाणिक घटनाएँ कितना हैं और कितना कल्पित, यह केवल लेखक ही जानता है। कई बार इसीलिए आत्मकथा साहित्य विवादित बनता रहा है क्योंकि उसमें प्रामाणिकता खंडित होती रही है। लेखक के जीवन में आये व्यक्तियों का मूलयांकन और भी सर्तकता की माँग करता है।

10.7 सारांश

एम.ए.एच.एल- 202 की आत्मकथा विधा केंद्रित इस इकाई का आपने अध्ययन किया। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपने जाना कि-

- आत्मकथा साहित्य का संबंध गद्य के अन्य विधा से संबंधित रहा है। चूँकि गद्य की विधाओं में उपन्यास, कहानी ही माने जाते हैं ..... इस दृष्टि से अन्य गद्य विधाओं में आत्मकथा साहित्य का प्रमुख स्थान है।
- आत्मकथा का संबंध आत्मप्रकाशन की भावना से है। व्यक्ति अपने जीवन संघर्ष के बहाने सामाजिक गति में अपनी भूमिका की तलाश करता है।
- आत्मवृत्त पहले युग की रचनाओं में भी मिल जाते हैं किन्तु एक विधा के रूप में आत्मकथा आधुनिक युग व साहित्य की देन है।
- आत्मकथा लेखन का प्रांरभ भारतेन्दु युग में हुआ, किन्तु छायावादी युग में इस विधा का पर्याप्त विकास हुआ।
- आत्मनिष्ठ रूप होने के बावजूद आत्मकथा लेखक से वस्तुनिष्ठता की अपेक्षा समाज करता है।

10.8 शब्दावली

- आत्मपरीक्षण - स्वयं की जाँच करना, मूल्यांकन करना।
- आत्मविश्लेषण - खुद की प्रवृत्तियों की व्याख्या-वर्गीकरण करना
- आत्मानुभूति - अपनी अनुभूति की जाँच
- समाज निरपेक्ष - समाज की गति से इतर
- आत्मन्वेषण - स्वयं का परीक्षण करना।
- आलोचनात्मकता - किसी मत, व्यक्तित्व का वस्तुनिष्ठ होकर विश्लेषण करनेकी प्रवृत्ति।
- वस्तुनिष्ठता - सन्तुलित ढंग से विश्लेषण करना।
- आत्मनिष्ठता - स्वयं के प्रति बद्धता का भाव
- द्वन्द्वत्मक - दो विपरित वस्तुओं में संघर्ष का भाव।

10.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1)

(क) 1- असत्य

2- सत्य

3- असत्य

4- सत्य

5- सत्य

(ख) (1)

1- अपनी खबर

2- अर्द्धकथानक

(2) आत्मप्रकाशन, प्रामाणिकता, वस्तुनिष्ठता, सृजनात्मकता

10.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गद्य साहित्य- 2 एवं प्रयोजनमूलक हिंदी - (संपादक) शुक्ला, शंशाक, कैड़ा, राजेन्द्र, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

2. साहित्य: विविध विधाएं खंड - 3 इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली,

10.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

10.12 निबन्धनात्मक प्रश्न

1. आत्मकथा साहित्य का इतिहास प्रस्तुत कीजिए।
2. आत्मकथा साहित्य की प्रवृत्तियाँ निर्धारित कीजिए।

इकाई11 'करुणा' : परिचय, पाठ एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
11.3.1 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : जीवन परिचय
11.3.2 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : साहित्यिक परिचय
11.4 आचार्य रामचंद्र शुक्ल : विश्लेषणएवं आलोचना
11.5 निबंध का पाठ: करूणा
11.6 निबंध का सार: करूणा
11.7 करूणा: संदर्भ सहित व्याख्या
11.8 सारांक्ष
11.9 शब्दावली
11.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.11 संदर्भ ग्रंथ सूची
11.12 सहायक पाठ्य सामग्री
11.13 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

इस इकाई से पूर्व आपने गद्य साहित्य की विभिन्न विधाओं के रूप एवं उनकी अन्तरप्रकृति का अध्ययन किया।

प्रस्तुत इकाई में आप रामचन्द्र शुक्ल के सम्पूर्ण जीवन एवं उनके साहित्यिक अवदान से परिचित होंगे। इसके साथ ही साथ आप आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा लिखित महत्वपूर्ण निबंध 'करूणा' को पाठ, ससंदर्भ व्याख्या के साथ कर सकेंगे।

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप मानव मन के गत्भी भाव 'करूणा' का विश्लेषण कर सकेंगे तथा साथ ही हिन्दी साहित्य में आचार्य शुक्ल के महत्त्व का प्रतिपादन भी कर सकेंगे।

11.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- मानवीय मनोविकारों में से एक 'करूणा' का महत्व ज्ञात कर उसे साहित्यिक कसौटी पर जॉच सकेंगे।
- एक सच्चे साहित्यिक मर्मज्ञ की तरह मानव मन की कारूणिक दशाओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
- मानव जीवन के भीतर 'करूणा' के व्यवहारिक महत्व को समझ सकेंगे।

11.3 आचार्य रामचंद्र शुक्ल

'' शुक्ल जी की व्यक्तिगत गंभीरता उनकी भाषा में व्याप्त रहती है। उनकी भाषा संयत, परिष्कृत, प्रौढ़ तथा विशुद्ध होती है; उसमें एक प्रकार का सौष्ठव विशेष है, जो संभवत: किसी भी वर्तमान लेखक में नहीं पाया जाता। उसमें गम्भीर विवेचना, गवेषणात्मक चिंतन एवं निर्मांत अनुभूति की पुष्ट व्यंजना सर्वदा वर्तमान रहती है। शुक्ल जी की शैली में वैयक्तिकता की छाप सर्वत्र ही प्राप्त होती है, चाहे वह निबंध रचना हो चाहे आलोचनात्मक विवेचन''

- जगन्नाथ प्रसाद शर्मा

''भारतीय काव्यालोचन शास्त्र का इतना गंभीर और स्वतन्त्र विचारक हिंदी में तो दूसरा हुआ ही नहीं, अन्यान्य भारतीय भाषाओं में भी हुआ है या नहीं, ठीक नहीं कह सकते। शायद नहीं हुआ। अलंकारशास्त्र के प्रत्येक अंग पर उनहोंने सूक्ष्म विचार किया था- शब्द-शक्ति, गुण-दोष, अलंकार-विधान, रस आदि सभी विषयों पर उनका अपना सुचिंतित मत था। वे प्राचीन भारतीय अलंकारिकों को खूब जानते थे पर उनका अंधानुकरण करने वाले नहीं थे। रामचंद्र शुक्ल से सर्वत्र सहमत होना संभव नहीं। वे इतने गंभीर और कठोर थे कि उनके वक्तव्यों की सरसता उनकी बुद्धि की आंच से सूख जाती थी और उनके मतों का लचीलापन जाता रहता था। आपकों

या तो 'हाँ' कहना पड़ेगा या 'ना' बीच में खड़े होने का कोई उपाय नहीं।''

- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

11.3.1 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : जीवन परिचय

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का जन्म सन् 1884 ई. (संवत् 1940) को उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले के अगोना नामक गाँव में हुआ था। मूल रूप से इनके पूर्वज गोरखपुर क निवासी थे। उनके पितामह का नाम श्री शिवदत्त शुक्ल था। आचार्य शुक्ल के पिता श्री चन्द्रबली शुक्ल का जन्म 1862 ई. में हुआ था बाद में श्री शिवदत्त शुक्ल की मृत्यु के उपरांत आचार्य रामचंद्र शुक्ल के पितामही आचार्य शुक्ल के पिता श्री चंद्रबली शुक्ल को लेकर गोरखपुर छोड़ बस्ती जिले के अगौना नामक गाँव में आ गई। आचार्य शुक्ल के पिता अध्ययनशील व्यक्ति थे। उनहें अंग्रेजी, फारसी और अरबी का अचछा जान था। सन् 1887 में आचार्य शुक्ल के पिता उत्तर प्रदेश के इटावाजिले में सुपरवाईजर कानूनगो के पद पर आ गए 1875 में ही चन्द्रबली शुक्ल का विवाह हो गया था। 1884 में अगौना में आचार्य रामचंद्रशुक्ल का जन्म हुआ। वे अपने पिता की चौथी संतान थे। 1891 में पिता के बतादले के पश्चात्आचार्य शुक्ल हमीरपुर जिले की 'राठ' तहसील में आ गए। यहीं आचार्य शुक्ल की प्रारम्भिक शिक्षा हुई। 1893 में आचार्य शुक्ल के पिता की नियुक्ति सदर कानूनगो के पद पर मिर्जापुर में हो गई। इस बीच आचार्य शुक्ल की माताका देहावसान गया। अपने पिता के साथ आचार्य शुक्ल के पिता मिर्जापुर आ गए। 1894 में आचार्य शुक्ल के पिता ने दूसरा विवाह कर लिया और विमाताके कारण आचार्य शुक्ल का जीवन कष्टप्रद हो गया। 1898 में 14 वर्ष की अवसथा में आचार्य शुक्ल ने अंग्रेजी तथा उर्दू विषय से मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण की। स्कूलों में तब हिन्दी विषय की व्यवस्था नहीं होती थी लेकिन अपनी पितामही के संस्कारों के कारण आचार्य रामचंद्र शुक्ल तुलसी, सूर एवं अनय भक्त कवियों की रचनाएँ बहुत मनोयोग से पढ़ते रहे। 1901 में शुक्ल जी ने स्कूल फाइनल परीक्षा भी उत्तीर्ण कर जी। 1898 में ही आचार्य शुक्ल का विवाह हो गया था तथा 1902 ई. में गृह कलह के कारण वे अपने पिता को छोड़कर पत्नी के साथा अगौना आ गए। यही शुक्ल जी के प्रथम पुत्र श्री केशवचंद्र शुक्ल का जन्म हुआ।इसके पश्चात् 1903 में इनकी प्रथम पुत्री दुर्गावती का जन्म हुआ। सन् 1905 मिर्जापुर के जिला कलेक्टर विढंम ने आचार्य शुक्ल की कला-प्रतिभा से प्रभावित होकर उन्हें मिर्जापुर जिले का नायब तहसीलदार नियुक्त कर दिया, परन्तु आचार्य शुक्ल ने तत्कालीन स्वदेश प्रेम की भावना एवं स्वाभिमानी स्वाभाव के कारण यह पद स्वीकार नहीं किया। 1904 ई. में शुक्ल जी लंदन मिशन स्कूल में ड्राइंग टीचर के रूप में नियुक्त हुए।

अपने संस्कारों के कारण आचार्य रामचंद्र शुक्ल बचपन से ही अध्ययनशील थे। अपनी इसी प्रवृत्ति के कारण शुक्ल जी की मित्रमण्डली जिसमें समवयस्क एवं प्रौढ़ दोनों के लोग थे- तैयार हो गई अपनी इस मित्र एवं शुभचिंतक मण्डली से आचार्य शुक्ल का व्यक्तित्व शनै: शनै: और अधिक गंभीर एवं अध्ययनशील होता गया इस मित्र मण्डली में बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', पं.केदारनाथ पाठक, पं. रामगरीब चौबे, पं. विन्ध्येश्वरी प्रसाद तिवारी, बाबू बलभद्र

सिंह, बाबू काशी प्रसाद जायसवाल, पं. लक्ष्मीशंकर द्विवेदी जैसे प्रखर विचारक एवं विद्वान लोग शमिल थे। अपने गहन अध्यवसाय के चलते बहुत शीघ्र की आचार्य शुक्ल की मेघा कार्यशील हो गई। 1899ई. में ही आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अंग्रेजी के प्रसिद्ध निबंधकार जोसेफ एडीसन के सुप्रसिद्ध निबंध **'प्लेजर्स ऑव इमैजिनेशन'** का अनुवाद 'कल्पना का आनंद' नाम से तथा कुछ ही समय बाद न्यूमैन के निबंध '**लिटरेचर**'का भावानुवाद 'साहित्य' शीर्षक से कर दिया था। अक्टूबर 1908 में आचार्यरामचंद्र शुक्ल 'काशी नगरी प्रचारिणी सभा' की बृहद् योजना '**हिन्दी शब्द सागर**' के सहायक सम्पादक बनकर सपरिवार काशी आ गए। यहाँ आकर वे कोश सम्पादन के साथ-साथ 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के कार्य भार भी संभालने लगे इस बीच उनका पारिवारिक-जीवन भी अपनी गति एवं प्रवृति से चलता रहा। 1912 तक आचार्य शुक्ल के परिवार में दो पुत्र एवं चार पुत्रियों का जन्म हो चुका था। 1918 ई. में आचार्य शुक्ल के पिता का देहान्त हो गया। सन् 1919 ई. में आचार्य रामचंद्र शुक्ल की नियुक्ति काशी हिन्दु विश्वविद्यालय में हो गई। आचार्य शुक्ल ने जीवन पर्यन्त विश्वविद्यालय की सेवा की। शुक्ल जी का व्यक्तिगत जीवन बहुत संघर्ष एवं कठिनाई में बीता। गंभीर अध्ययवसाय एवं प्रखर मेधा के कारण उन्होंने मृत्यु से पूर्व जिन ग्रन्थों का प्रणयन किया (इकाई के अगले भाग में आप आचार्य शुक्ल के ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे) वे हिन्दी साहित्य की अपनी अमूल्य निधि है। परन्तु अपनी एकनिष्ठ साहित्य साधना और अपने स्वास्थ का ध्यान न रखने के कारण आचार्य रामचंद्र शुक्ल को आरम्भ से ही कमजोर स्वास्थ का कष्ट उठाना पड़ा था। ''वे कई रोगों से पीड़ित थे। दमा का रोग प्रमुख था। अंतत: इसी रोग से 2 फरवरी, 1941 ई. को रात साढ़े नौ बजे 56 वर्ष 3 महीने 20 दिन की वय में उनकी इहलीला समाप्त हो गई। अनेक तरह की विपरीत परिस्थितियों एवं दबावों के बीच रहते हुए उन्होंने
हिन्दी की जो सेवा की वह श्लाध्य और अनुकरणीय है।"

11.3.2 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : साहित्यिक परिचय

हिन्दी साहित्य के आलोचना पुरूष माने जाने वाले आचार्य रामचंद्र शुक्ल का संक्षिप्त साहित्यिक परिचय निम्ललिखित है। विद्यार्थियों से आशा की जाती है कि प्रस्तुत सूची से प्रेरित होकर वे आचार्य शुक्ल की रचनाओं को उनके ऐतिहासिक क्रम में अपने अध्ययन के क्षितिज को विस्तार देते हुए पढ़ेगें तथा आचार्य शुक्ल के बहाने हिन्दी- साहित्य के वैचारिक क्रम को समझने का प्रयास करेंगे।

(क) निबंध

1. भाव या मनोविकार - सर्वप्रथम फरवरी 1915 में प्रकाशित।
2. उत्साह - सर्वप्रथम – फरवरी 1915 में प्रकाशित
3. श्रृद्धा भक्ति - सर्वप्रथम दिसम्बर 1916 में प्रकाशित
4. करूणा - सर्वप्रथम दिसम्बर 1918 में प्रकाशित
5. लज्जा और ग्लानि -सर्वप्रथम दिसम्बर 1918 में प्रकाशित

6. लोभ और प्रीति -(पहले लोभ और प्रेम शीर्षक से) फरवरी- मार्च 1919 में प्रकाशित
7. घृणा - सर्वप्रथम जुलाई 1912 में प्रकाशित
8. ईर्ष्या - सर्वप्रथम जुलाई 1912 में प्रकाशित
9. भय और क्रोध - सर्वप्रथम जुलाई 1912 में प्रकाशित (ये सभी नौ निबंध नागरी प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित हुए थे)
10. काव्य में प्राकृतिक दृश्य - सर्वप्रथम सन् 1922 में 'माधुरी' पत्रिका में प्रकाशित।
11. गोस्वामी तुलसीदास और लोक धर्म – सर्वप्रथम सन् 1923 में माधुरी पत्रिका में प्रकाशित।
12. साधारणीकरण - सर्वप्रथम सन् 1933 में द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ में प्रकाशित।
13. कविता क्या है -1909 ई. में प्रथम प्रारूप प्रकाशित।

(ख) पुस्तकें-

1. **विचार वीथी** - मनोविचार संबंधी सभी लेख, कविता क्या है? भारतेनदु हरिश्चन्द्र , तुलसी का भक्ति मार्ग निबंधों सहित सन् 1930 में प्रकाशित
2. **चिंतामणि, भाग 1** – (इंडियन प्रेस प्रयाग से सन् 1939 में प्रकाशित निबंध संग्रह) विचार वीथी(1930) पुस्तक के सभी निबंधों के अतिरिक्त 'साधरणीकरण एवं व्यक्ति वैचित्र्यवाद ' मानस की धर्मभूमि','काव्य में लोक मंगल की साधनावस्था , तथा 'रसात्मक बोध के विविध रूप' नामक नए निबंधों के साथ प्रकाशित।
3. **चिंतामणि – भाग 2** – 'काव्य में प्राकृतिक दृश्य''काव्य में रहस्यवाद' तथा काव्य में अभिव्यंजनावाद' इन तीन बड़े निबंधों का पुस्तक के रूप में सम्मिलित प्रकाशन सन् 1939 में 'काव्य में रहस्यवाद' सर्वप्रथम माधुरी पत्रिका 1922 में प्रकाशित हुआ तथा साहित्य भूषण कार्यालय, काशी द्वारा अलग से पुस्तक के रूप में भी प्रकाशित हुआ। 'काव्य में अभिव्यंजनावाद' सन् 1935 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इन्दौर के अध्यक्ष पद से दिया गया अध्यक्षीय भाषण है।
4. **त्रिवेणी -** सूरदास, तुलसीदास तथा जायसी पर आचार्य शुक्ल द्वारा लिखित आलोचनात्मक प्रबंधों के विशिष्ट अंशों का संग्रह। सम्पादक श्री कृष्णानंद, 1935
5. **रस मीमांसा** - आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादिक, प्रथम प्रकाशन सन् 1949
6. **हिन्दी साहित्य का इतिहास** - (मूलत: हिन्दी शब्द सागर की भूमिका के रूप में लिखा गया) पुस्तक के रूप में 1929 ई. में प्रथम प्रकाशन- संशेधित 1940 ई.
7. **गोस्वामी तुलसीदास** - सर्वप्रथम 1924 ई. में प्रकाशित
8. **महाकवि सूरदास** - सर्वप्रथम 1924 ई. में प्रकाशित।

9. **बाबू राधाकृष्ण दास का जीवन चरित** – सन् 1913 में प्रकाशित।

(ग) सम्पादित ग्रंथ-

1. **तुलसी ग्रंथावली** (3 भाग) लाला भगवानदीन एवं ब्रजरत्न दास के साथ सम्पादित, सन् 1923
2. **जायसी ग्रंथावली**- नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा सन् 1924 में प्रकाशित
3. **भ्रमर-गीत सार** (सूरदास के 403 पदों के शुद्धपाठ, अर्थ, टिप्पणी भूमिका सहित, साहित्य सेवा सदन, वाराणसी द्वारा सन् 1925 में प्रकाशित।
4. **वीर सिंह देवचरित** - केशवदास प्रणीत ग्रंथ के 14 वें प्रकाशन का सम्पादन,नागरी प्रचारिणी, सभा द्वारा 1926 में प्रकाशित।
5. **भारतेंदु -संग्रह** – सन् 1928 में प्रकाशित।

(घ) अनुवादित ग्रंथ

1. **कल्पना का आनंद** (जोसेफ एडिसन् द्वारा लिखित निबंध 'प्लेजर आफ इमैजिनेशन) लिखित 1901 प्रकाशित 1905।
2. **साहित्य** (न्युमैन का 'लिटरेचर' नामक निबंध)
3. **'मेगस्थनीज का भारतवर्षीय विवरण'** (डा. श्वान बक की पुस्तक 'मेगस्थनीज इंडिका) - 1906
4. **'राज्य प्रबंध शिक्षा'** (सर टी. माधव राव के 'माइनर हिंट्स' का अनुवाद) सर्वप्रथम 1913में प्रकाशित।
5. **आदर्श जीवन** (एडम्स विलियम डेवन पोर्ट की पुस्तक 'प्लेन लिविंग एण्ड हाई थिकिंग) पर लिखित निबंधों का संग्रह सन् 1914 में प्रकाशित।
6. **विश्व प्रपंच** (हैकल की पुस्तक 'रिड्ल ऑव द यूनिवर्स का अनुवा, लम्बी मौलिक भूमिका सहित सन् 1920 ई. में प्रकाशित।
7. **शशांक** (राखालदास बंद्योपाध्याय के बांग्ला उपन्यास का अनुवाद) 1922 ई.
8. **बुद्धचरित** (एडविन आर्नल्ड के 'लाईट ऑफ एशिया का हिन्दी अनुवाद, मौलिक भूमिका सहित) सन् 1922 में प्राकशित (ब्रजभाषा में पद्यानुवाद)
9. **'वाट हैज इंडिया टू डू'** मौलिक अंग्रेजी निबंध, 1907 में प्रकाशित,**'हिन्दी एण्ड द मुसलमांस**, मौलिक अंग्रजी निबंध, लीडर के कई अंकों में 1917 में प्रकाशित,**'नॉन कोऑपरेशन एंड द नॉन मर्केंटाइल क्लासेज** एक्सप्रेस, पटना के कई अंकों में 1921 प्रकाशित मौलिक अंग्रेजी निबंध।

(च) कविता

'मधुस्रोत ' (1901 से 1929 तक लिखित कविताओं का संग्रह सनद्व 1971 में प्रकाशित

(छ) निबंध संग्रह

1. चिंतामणि भाग 3, (सं0) नामवर सिंह - 1983
2. चिंतामणि भाग 4, (सं0) कुसुम चतुर्वेदी - 2002

11.4 आचार्य रामचंद्र शुक्ल : विश्लेषण एवं आलोचना

'निबंध' शब्द को परिभाषित करते हुए डॉ.जानसन ने लिखा है,''निबंध मस्तिष्क की सहसा उठी हुई अनियंत्रित, विश्रंखलित , उन्मुक्त कल्पना शक्ति का परिणाम है'' यही कारण है कि निबंध के जन्मदाता मानटेन से लेकर वर्तमान तक ललित निबंधकार यह स्वीकार करते हैं कि निबंधों में मर्मस्पर्शिता व मौलिक व्यक्तित्व की छाप होनी चाहिए, सुप्रसिद्ध आलोचक हडसन ने तो 'व्यक्तिगत निबंध' को ही यथार्थ निबंध माना है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी **'हिंदी साहित्य का इतिहास'** (पृष्ठ-505) में निबंध साहित्य का विश्लेषण करते हुए लिखा है,''आधुनिक पाश्चात्य लक्षणों के अनुसार निबंध उसी को कहना चाहिए जिसमें व्यक्तित्व या व्यक्तिगत विशेषता हो। व्यक्तिगत विशेषता का यह मतलब नहीं कि उसके प्रदर्शन के लिए विचारों की श्रंखला रखी ही न जाए या जानबूझ कर जगह-जगह तोड़ दी जाए। एक ही बात को लेकर किसीका मन किसी संबंध-सूत्र पर दौड़ता है, किसी का किसी पर। वयक्तिगत विशेषता का मूल आधार यही है।'' उसी बात को सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ. सत्येन्द्र ने स्पष्ट करते हुए लिखा '' निबंध के सम्बंध में यह बात आज निशिचत-सी मान ली गई है कि वह आत्माभिव्यक्ति का ही साधन है। अत: चाहे कोई विषय हो या विषय की कोई शाखा हो, उसमें व्यक्तिपरकता अवश्य होनी चाहिए।'' अपनी पुस्तक चिन्तामणि के आरम्भ में आचार्य शुक्ल ने लिखा है,'' इस पुस्तक में मेरी अन्तर्यात्रा के पड़ने वाले कुछ प्रदेश है। यात्रा के लिए निकलती हुई बुद्धि जहाँ कहीं मार्मिक या भावाकर्षक स्थलों में पहुँची है, वहाँ हृदय थोड़ा बहुत रमता और अपनी प्रवृत्ति के अनुसार कुछ-कुछ सहता गया है। इस प्रकार यात्रा के श्रम का परिहार होता है। बुद्धि-पथ पर हृदय भी अपने लिए कुछ-न-कुछ पाता रहा है। इस बात का निर्णय विज्ञ पाठकों पर छोड़ता हूँ कि निबंध विषयप्रधान है कि व्यक्तिप्रधान।'' परन्तु आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंध वास्तव में कहीं विषय प्रधान है तो कही व्यक्ति प्रधान। उनके निबंधों में हृदय तथा बुद्धि तत्व का सुमधुर समावेश है। तब ही तो रोचकता लाने के लिए कहीं-कहीं लोक प्रचलित कथाओं को गूंथा है तो कहीं अपने जीवन से घटनाओं, दृश्यों आदि का प्रसंग देकर विषय को स्पष्ट किया है। साथ ही शैली में अद्भुत वक्रता, तीक्ष्णता, कथन की विचित्रता अर्थशक्ति से नीरसता को तो दूर किया ही है, जरूरत पड़ने पर चोट करने से भी नहीं चूके हैं। उनके निबंधों में प्राप्त व्यंग्य-आक्षेप, हास-परिहास तथा वक्रता की त्रिवेणी में पाठक सहज भाव से अवगाहन करता चलता है। विचारों की गहराई के बीच

व्यक्तिगत बातों और व्यंग्य विनोद से व्याख्या भी रूचिकर हो गई है। निबंधों के माध्यम से आचार्य शुक्ल का सम्पूर्ण व्यक्तित्व पाठक के सामने आ जाता है।

हम देख सकते हैं कि निबंध साहित्य के माध्यम से आचार्य शुक्ल का लेखन मानदण्ड स्थापित करता है। शुक्ल जी के चिंतामणि में संकलित मनोविकार संबंधी निबंध अपनी वैचारिकी के कारण न केवल हिन्दी साहित्य अपितु अन्यान्य भारतीय साहित्य में भी स्मरणीय रहेंगे। विद्धानों ने आचार्य शुक्ल के चिंतामणि में संकलित निबंधों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया है।

(क) **भाव सबंधी निबंध-**'करूणा','श्रृद्धा-भक्ति','उत्साह','लज्जा और ग्लानि','लोभ और प्रीति','ईर्ष्या','भय तथा क्रोध','घृणा', शीर्षक निबंध इसी कोटि में रखे जाऐंगे।

(ख) **आलोचनात्मक निबंध-**'कविता क्या है','काव्य में लोक मंगल की साधनावस्था','साधारणीकरण एंव व्यक्ति वैचित्र्यवाद ' तथा 'रसात्मक बोध के विविध' रूप इस श्रेणी के निबंध है। 'तुलसी का भक्ति-मार्ग', एवं 'भारतेंदु हरिश्चन्द्र' भी इसी कोटि के निबंध है।

(ग) **आलोचनात्मक प्रबंध-**'काव्य में रहस्यवाद','काव्यमें अभिव्यंजनावाद इस कोटि के निबंध हैं।

यदि शुक्ल जी के निबंधों को शास्त्रीय वर्गीकरण से अलग हट कर देखा जाए तो भी उनक निबंध अपना मापदण्ड स्वयं स्थापित करते चलते हैं। और जैसा कि डॉ. रामचन्द्र तिवारी ने लिखा है,''उनकी विचार पद्धति बहुत कुछ सुनियोजित है। आरंभ में वे प्रतिपाद्य विषय को नपी-तुली शब्दावली में प्रस्तुत करते हैं। कोशिश करते है कि विवेच्य विषय की सभी विशेषताओं को सूत्रबह करकेउसे परिभाषित कर दिया जाए। 'श्रृद्धा-भक्ति','उत्साह','लज्जा','प्रेम','घृणा','भय','ईर्ष्या' एवं 'करूणा' आदि मनोभावों को उन्होंने परिभाषित भी किया है। उसके बाद विषय को स्पष्ट करने के लिए वे उससे सबंद्ध विचार-सूत्रों को विस्तार देने या फैलाने के क्रम में वे मनोभाव-विशेष की वर्गगत पहचान, उसके समकक्ष रखे जा सकने वाले मनोभावों से उसकी समता-विषमता, उसकी प्रेष्यता-उप्रेष्यता, समाज पर उसके शुभ-अशुभ प्रभावों आदि की चर्चा करते हैं। अपने निबंधों के अन्त में वे प्राय: अपने पूरे प्रतिपाद्य को साफ-सुथरे ढंग से संक्षेप में प्रस्तुत कर देते हैं'' यह सर्वविदित है कि शुक्ल जी के निबंध विचारात्मक शैली समास-प्रधान है। विचारों के गूढ़ गुंफन इसी शैली में संभव है। भावात्मक शैली का प्रयोग उन्होंने प्राय: वहाँ किया है, जहाँ उनका मन विधाता द्वारा रचित उस विश्व-काव्य की रमणीयता देखकर मुग्ध हो गया है या जहाँ अपने काव्य नायक राम के शील का उत्कर्ष देखकर वे स्वयं अभिभूत हो गए हैं। वर्णनात्मक शैली का प्रयोग शुक्ल जी ने बहुत कम किया है। विचारात्मक शैली शुक्ल जी की पहचान है। शुक्ल जी की शैली

कहीं-कहीं उतनी सघन हो जाती है कि वे सूत्र-वाक्यों की रचना करने लगते हैं। उनके कुछ प्रमुख सूत्र-वाक्य निम्न हैं।

1. भक्ति धर्म की रसात्मक अनुभूति है। (भाव या मनोविकार)
2. यदि प्रेम स्वप्न है तो श्रृद्धा जागरण है। (श्रद्धा-भक्ति)
3. मनुष्य की सजीवता मनोवेग या प्रवृत्ति में, भावों की तत्परता में है। (करूणा)
4. ज्ञान प्रसार के भीतर ही भाव प्रसार होता है। (कविता क्या है ?)

बोध प्रश्न-

(क)लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) डॉ. जॉनसन के अनुसार निबंध की परिभाषा दीजिए।

(2) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के भाव संबंधी निबंध कौन-कौन से है।

(ख)अति लघु उत्तरीय प्रश्न-

(1) आचार्य रामचंद्र शुक्ल के किन्हीं दो निबंधों के नाम लिखिए।

(क)अति लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) आचार्य रामचंद्र शुक्ल की जन्म एवं मृत्यु कब हुई थी ?

(2) 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' का प्रकाशन वर्ष लिखिए .

(3) आचार्य शुक्ल का प्रथम निबंध-संग्रह कौन सा था ?

(ख)सही विकल्प चुलिए

(।) इनमें से कौन सा निबंध आचार्य शुक्ल द्वारा अनुवादित निबंध है-

(क) मित्रता

(ख) विश्व प्रपंच

(ग) वॉट हैज इण्डिया टू डू

(घ) कल्पना का आनंद

11.5 निबंध का पाठ : करूणा

जब बच्चे को संबंध ज्ञान कुछ-कुछ होने लगता है तभी दु:ख के उस भेद की नींव पड़ जाती है जिसे करूणा कहते हैं। बच्चा पहले परखता है कि जैसे हम हैं वैसे ही ये और प्राणी भी हैं और बिना किसी विवेचना क्रम के स्वाभाविक प्रवृत्ति द्वारा, वह अपने अनुभवों का आरोप दूसरे प्राणियों पर करता है। फिर कार्यकारण संबंध से अभ्यस्त होने पर दूसरों के दु:ख के कारण या कार्य को देखकर उनके दु:ख का अनुमान करता है और स्वयं एक प्रकार का दु:ख अनुभव करता है। प्राय: देखा जाता है कि जब माँ झूठमूठ 'ऊं ऊं ' करके रोने लगती है तब कोई-कोई बच्चे भी रो पड़ते हैं। इसी प्रकार जब उसके किसी भी भाई या बहिन को कोई मारने उठता है तब वे कुछ चंचल हो उठते हैं।

दु:ख की श्रेणी में प्रवृत्ति के विचार के करूणा का उलटा क्रोध है। क्रोध जिसके प्रति उत्पन्न होता है उसकी हानि की चेष्टा की जाती है। करूणा जिसके प्रति उत्पन्न होती है, उसकी भलाई का उद्योग किया जाता है। किसी पर प्रसन्न होकर भी लोग उसकी भलाई करते हैं। इस प्रकार पात्र की भलाई की उत्तेजना दु:ख और आन्नद दोनों की श्रेणियों में रखी गई है। आनंद की श्रेणी में ऐसा कोई शुद्ध मनोविकार नहीं है, जो पात्र की हानि की उत्तेजना करे, पर दु:ख की श्रेणी में ऐसा मनोविकार है जो पात्र की भलाई की उत्तेजना करता है। लोभ से, जिसे मैंने आनंद की श्रेणी में रखा है, चाहे कभी-कभी और व्यक्तियों या वस्तुओं की हानि पहुँच जाए पर जिसे जिस व्यक्ति या वस्तु का लोभ होगा, उसकी हानि वह कभी न करेगा। लोभी महमूद के सोमनाथ को तोड़ा, पर भीतर से जो जवाहरात निकले उनको खूब सँभालकर रखा। नूरजहॉ के रूप में लोभी जहॉगीर ने शेर अफगन को मरवाया, पर नूरजहां को बड़े चैन से रखा।

ऊपर कहा जा चुका है कि मनुष्य ज्यों ही समाज में प्रवेश करता हे, उसके सुख और दु:ख का बहुत सा अंश दूसरे की क्रिया या अवस्था पर अवलंबित हो जाता है और उसके मनोविकारों के प्रवाह तथा जीवन के विस्तार के लिए अधिक क्षेत्र हो जाता है। वह दूसरों के दु:ख से दु:खी और दूसरों के सुख से सुखी होने लगता है। अब देखना यह है कि दूसरों के दु:ख से दु:खी होने का नियम जितना व्यापक है क्या उतना ही दूसरों के सुख से सुखी होने का भी। मैं समझता हूँ, नहीं। हम अज्ञात कुलशील मनुष्य के दु:ख को देखकर भी दु:खी होते हैं। किसी दु:खी मनुष्य को सामने देख हम अपना दु:खी होना तब तक के लिए बन्द नहीं रखते जब तक कि यह न मालूम हो जाए कि वह कौन है, कहाँ रहता है और कैसा है, यह और बात है कि यह जानकर कि जिसे पीड़ा पहुँच रही है उसने कोई भारी अपराध या अत्याचार किया है, हमारी दया दूर या कम हो जाए। ऐसे अवसर पर हमारे ध्यान के सामने वह अपराध या अत्याचार आ जाता है और उस अपराधी या अत्याचारी का वर्तमान क्लेश हमारे क्रोध की तुष्टि का साधक हो जाता है।

सारांश यह है कि करूणा की प्राप्ति के लिए पात्र में दु:ख के अतिरिक्त और किसी विशेषता की अपेक्षा नहीं। पर आनंदित हम ऐसे ही आदमी के सुख को देखकर होते हैं जो या तो हमारा सुहृद या संबंधी हो अथवा अत्यंत सज्जन, शीलवान् या चरित्रवान् होने के कारण समाज का मित्र या हितकारी हो। यों ही किसी अज्ञात व्यक्ति का लाभ या कल्याण सुनने से हमारे हृदय में किसी प्रकार के आनंद का उदय नहीं होता। इससे प्रकट है कि दूसरों के दु:ख से दु:खी होने का नियम बहुत व्यापक है और दूसरों के सुख से सुखी होने का नियम उसकी अपेक्षा परिमित है। इसके अतिरिक्त दूसरों को सुखी देखकर जो आनंद होता है उसका न तो कोई अलग नाम रखा गया है और न उनमें वेग या प्रेरणा होती है। पर दूसरों के दु:ख के परिज्ञान से जो दु:ख होता है, वह करूणा, दया आदि नामों से पुकारा जाता है और अपने कारण को दूर करने की उत्तेजना करता है।जबकि अज्ञात व्यक्ति के दु:ख पर दया बराबर उत्पन्न होती है तो जिस व्यक्ति के साथ हमारा अधिक संसर्ग होता है, जिसके गुणों से हम अच्छी तरह परिचित रहते हैं, जिसका रूप हमें भला मालूम होता है उसके उतने ही दु:ख पर हमें अवश्य अधिक करूणा होगी। किसी भोली

भाली सुंदरी रमणी को, किसी सच्चरित्र परोपकारी महात्मा को, किसी अपने भाई बंधु को दु:ख में देख, हमें अधिक व्याकुलता होगी। करूणा की तीव्रता का सापेक्ष विधान जीवन निर्वाह की सुगमता और कार्य विभाग की पूर्णता के उद्देश्य से समझना चाहिए। मनुष्य की प्रकृति में शील और सात्विकता का आदि संस्थापक यही मनोविकार है। मनुष्य की सज्जनता या दुर्जनता अन्य प्राणियों के साथ उसके संबंध या संसर्ग द्वारा ही व्यक्त होत है। यदि कोई मनुष्य जन्म से ही किसी निर्जन स्थान में अपना निर्वाह करे तो उसका कोई कर्म सज्जनता या दुर्जनता की कोटि में न आएगा। उसके सब कर्म निर्लिप्त होंगे। संसार में प्रत्येक प्राणी के जीवन का उद्देश्य दु:ख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति है। अत: सबके उद्देश्य को एक साथ जोड़ने से संसार का उद्देश्य सुख का स्थापन और दु:ख का निराकरण हुआ। अत: जिन कर्मो से संसार के इस उद्देश्य के साधन हों वे उत्तम हैं। प्रत्येक प्राणी के लिए उससे भिन्न प्राणी संसार है। जिन कर्मो से दूसरे के वास्तविक सुख का साधन और दु:ख की निवृत्ति हो वे शुभ और सात्विक हैं तथा जिस अंत:करणवृति से इन कर्मों में प्रवृत्ति हो वह सात्विक है। कृपा या अनुग्रह से भी दूसरों के सुख की योजना की जाती है, पर एक तो कृपा अनुग्रह में आत्मभाव छिपा रहता है और उनकी प्रेरणा से पहुँचाया हुआ सुख एक प्रकार का प्रतिकार है। दूसरी बात यह है कि नवीन सुख की योजना की अपेक्षा प्राप्त दु:ख की निवृत्ति की आवश्यकता अत्यंत अधिक हैं।

दूसरे के उपस्थित दु:ख से उत्पन्न दु:ख का अनुभव अपनी तीव्रता के कारण मनोविकारों की श्रेणी में माना जाता है पर अपने भावी आचरण द्वारा दूसरे के संभाव्य दु:ख का ध्यान या अनुमान, जिसके द्वारा हम ऐसी बातों से बचते हें जिनसे अकारण दूसरे को दु:ख पहंचे, शील या साधारण सद्वृति के अंतर्गत समझा जाता है। बोलचाल की भाषा में तो 'शील' शब्द से चित्त की कोमलता या मुरौवत ही का भाव समझा जाता है, जैसे- 'उनकी आँखों में शील नहीं है', 'शील तोड़ना अच्छा नहीं', दूसरों का दु:ख दूर करना और दूसरों को दु:ख न पहुँचना इन दोनों बातों का निर्वाह करने वाला नियम न पालने का दोषी हो सकता है, पर ऐसा नहीं जिससे किसी का कोई काम बिगड़े या जी दुखे। यदि वह किसी अवसर पर बड़ों की कोई बात न मानेगा तो इसलिए कि वह उसे ठीक नहीं जॅचती या वह उसके अनुकूल चलने में असमर्थ है, इसलिए नहीं कि बड़ों का अकारण जी दुखे। मेरे विचार में तो 'सदा सत्य बोलना', 'बड़ों का कहना मानना' ये नियम के अंतर्गत हैं, शील या सद् भाव के अंतर्गत नहीं। झूठ बोलने से बहुधा बड़े-बड़े अनर्थ हो जाते हैं इसी से उसका अभ्यास रोकने के लिए यह नियम कर दिया गया कि किसी अवस्था में झूठ बोला ही न जाए। पर मनोरंजन, खुशामद और शिष्टाचार आदि के बहाने संसार में बहुत सा झूठ बोला जाता है जिस पर कोई समाज कुपित नहीं होता। किसी-किसी अवस्था में तो धर्मग्रन्थों में झूठ बोलने की इजाजत तक दे दी गई है, विशेषत: जब इस नियम भंग द्वारा अंत:करण की किसी उच्च और उदार वृति का साधन होता हो। यदि किसी के झूठ बोलने से कोई निरपराध और निस्सहाय व्यक्ति अनुचित दंड से बच जाए तो ऐसा झूठ बोलना बुरा नहीं बतलाया गया है क्योंकि नियम शील या सद्वृति का साधक हैं, समकक्ष नहीं। मनोवेग वर्जित सदाचार दंभ या झूठी कवायद है। मनुष्य के अंत:करण में सात्विकता की ज्योति जगानेवाली

यही करूणा है। इसी से जैन और बौद्धधर्म में इसको बड़ी प्रधानता दी गई है और गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी कहा है-

पर उपकार सरिस न भलाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।

यह बात स्थिर और निर्विवाद है कि श्रद्धा का विषय किसी न किस रूप में सात्विक शील ही होता है। अत: करूणा और सात्विकता का संबंध इस बात से और भी सिद्ध होता है कि किसी पुरूष को दूसरे पर करूणा करते देख तीसरे को करूणा करने वाले पर श्रद्धा उत्पन्न होती है। किसी प्राणी में और किसी मनोवेग को देख श्रद्धा नहीं उत्पन्न होती। किसी को क्रोध, भय, ईर्ष्या, घृणा, आनंद आदि करते देख लोग उस पर श्रद्धा नहीं कर बैठते। क्रिया में तत्पर करने वाली प्राणियों की आदि अंत:करणवृति मन का मनोवेग है। अत: इन मनोवेगों में जो श्रद्धा का विषय हो वही सात्विकता का आदि संस्थापक ठहरा। दूसरी बात यह भी ध्यान देने की है कि मनुष्य के आचरण के प्रवर्तक भाव या मनोविकार ही होते हैं, बुद्धि नहीं। बुद्धि दो वस्तुओं के रूपों को अलग-अलग दिखला देगी, यह मनुष्य के मन के वेग या प्रवृति पर है कि वह उनमें से किसी एक को चुनकर कार्य में प्रवृत्त हो। यदि विचार कर देखा जाए तो स्मृति, अनुमान, बुद्धि आदि अंत:करण की सारी वृत्तियॉ केवल मनोवेगों की सहायक हैं, वे भावों या मनोवेगों के लिए उपयुक्त विषय मात्र ढूंढती हैं। मनुष्य की प्रवृत्ति पर भाव को और भावना को तीव्र करने वाले कवियों का प्रभाव प्रकट ही है।

प्रिय के वियोग से जो दु:ख होता है उसमें कभी-कभी दया या करूणा का भी कुछ अंश मिला रहता है। ऊपर कहा जा चुका है कि करूणा का विषय दूसरे का दु:ख है। अत: प्रिय के वियोग में इस विषय की भावना किस प्रकार होती है, यह देखना है। प्रत्यक्ष निश्चय कराता है और परोक्ष अनिश्चय में डालता है। प्रिय व्यक्ति के सामने रहने से उसके सुख का जो निश्चय होता रहता है, वह उसके दूर होने से अनश्चिय में परिवर्तित हो जाता है। अत: प्रिय के वियोग पर उत्पन्न करूणा का विषय प्रिय के सुख का निश्चय है। जो करूणा हमें साधारणजनों के वास्तविक दु:ख के परिज्ञान से होती है, वही करूणा हमें प्रियजनों के सुख के अनिश्चय मात्र से होती है। साधारणजनों का तो हमें दु:ख असह्य होता हैद्व पर प्रियजनों के सुख का अनिश्चय ही। अनिश्चय बात पर सुखी या दु:खी होना ज्ञानवादियों के निकट अज्ञान है, इसी से इस प्रकार के दु:ख या करूणा को किसी-किसी प्रांतिक भाषा में 'मोह' भी कहते हैं। सारांश यह कि प्रिय से वियोगजनित दु:ख में जो करूणा का अंश रहता है उसका विषय प्रिय के सुख का अनिश्चय है। राम जानकी के वन चले जाने पर कौशल्या उनके सुख के अनिश्चय पर इस प्रकार दु:खी होती है-

बन को निकरि गए दोउ भाई।
सावन गरजै, भादों बरसै, पवन चलै पुरवाई।
कौन बिरिछ तर भीजत ह्वै हैं राम लखन दोउ भाई। (गीतावली)

प्रेमी को यह विश्वास कभी नहीं होता कि उसके प्रिय के सुख का ध्यान जितना वह रखता है उतना संसार में और भी कोई रख सकता है। श्रीकृष्ण गोकुल से मथुरा चले गए जहॉ सब प्रकार का सुख वैभव था, पर यशोदा इसी सोच में मरती रहीं कि-

प्रात समय उठि माखन रोटी को बिन मांगे दैहै ?
को मेरे बालक कुंवर कान्ह को छिन-छिन आगे लैहै ?

और उद्धव से कहता है-

संदेसो देवकी सों कहियो।
हों तो धाय तिहारो सुत को, कृपा करत ही रहियो।।
उबटन, तेल और तातों जल, देखत ही भजि जाते।
जोइ जोइ मांगत सोइ सोइ देती, क्रम क्रम करि कै न्हाते।।
तुम तो टेब जानतिहि हैहो, तऊ मोहि कहि आवै।
प्रात उठत मेरे लाल लड़ैतहि माखन रोटी भावे।।
अब यह सूर मोहि निसि बासर बड़ो रहत जिय सोच।
अब मेरे अलकलड़ैते लालन हैहै करत सैंकोच।।

वियोग की दशा में गहरे प्रेमियों को प्रिय के सुख का अनिश्चय ही नहीं, कभी-कभी घोर अनिष्ट की आशंका तक होती है, जैसे एक पति वियोगिनी संदेह करती है-

नदी किनारे धुंआ उठत है, मैं जानूं कुछ होय।
जिसके कारण मैं जली, वही न जलता होय।।

शुद्ध वियोग का दु:ख केवल प्रिय के अलग हो जाने की भावना से उत्पन्न क्षोभ या विषाद है जिसमें प्रिय के दु:ख आदि की कोई भावना नहीं रहती।

जिस व्यक्ति से किसी की घनिष्ठता और प्रीति होती है वह उसके जीवन के बहुत से व्यापारों तथा मनोवृत्तियों का आधार हाता है। उसके जीवन का बहुत सा अंश उसी के संबंध द्वारा व्यक्त होता है। उसके जीवन का बहुत सा अंश उसी के संबंध द्वारा व्यक्त होता है। मनुष्य अपने लिए संसार आप बनाता है। संसार तो कहने सुनने के लिए है, वास्तव में किसी मनुष्य का संसार तो वे ही लोग हैं जिनसे उसका संसर्ग या व्यवहार है। अत: ऐसे लोगों में से किसी का दूर होना उसके संसार के एक प्रधान अंश का कट जाना या जीवन के एक अंग का खंडित हो जाना है। किसी प्रिय या सुहृदय के चिरवियोग या मृत्यु के शोक के साथ करूणा या दया का भाव मिलकर चित्त को बहुत व्याकुल करता है। किसी के मरने पर प्राणी उसके साथा किए हुए अन्याय या कुव्यवहार तथा उसकी इच्छापूर्ति करने में अपनी त्रुटियों का स्मरण कर और यह सोचकर कि उसकी आत्मा को संतुष्ट करने की भावना सब दिन के लिए जाती रही, बहुत अधीर और विकल होते हैं। सामाजिक जीवन की स्थिति और पुष्टि के लिए करूणा का प्रसार आवश्यक है। समाजशास्त्र के पश्चिमी ग्रंथकार कहा करें कि समाज में एक दूसरे की सहायता अपनी अपनी रक्षा के विचार से की जाती है; यदि ध्यान से देखा जाय तो कर्मक्षेत्र में परस्पर सहायता की सच्ची उत्तेजना देने वाली किसी न किसी रूप में करूणा ही दिखाई देगी। मेरा यह

कहना नहीं कि परस्पर की सहायता का परिणाम प्रत्येक का कल्याण नहीं है। मेरेकरने का अभिप्राय है कि संसार में एक दूसरे की सहायता विवेचना द्वारा निश्चित इस प्रकार के दूरस्था परिणाम पर दृष्टि रखकर नहीं की जाती बल्कि मन का स्वत: प्रवृत्त करनेवाली प्रेरणा से की जाती है। दूसरे की सहायता करने से अपनी रक्षा की भी संभावना , इस बात या उद्देश्य का ध्यान प्रत्येक,विशेषकर सच्चे सहायक को तो नहीं रहता। ऐसे विसतृत उद्देश्यों का ध्यान तो विश्वात्मा स्वयं रखती है; वह उसे प्राणियों की बुद्धि ऐसी चंचल और मुंडे मुंडे भिन्न वसतुके भरोसे नहीं छोड़ती। किस युग में और किस प्रकार मनुष्यों ने समाज रक्षा के लिए एक दूसरे की सहायता करने की गोष्ठी की होगी, यह समाजशास्त्र के बहुत से वक्ता लोग ही जानते होंगे। यदि परस्पर सहायता की प्रवृत्ति पुरखों की उस पुरानी पंचायत ही के कारण होती और यदि उसका उद्देश्य वही तक होता जहाँ तक समाजशास्त्र के वक्ता बतलाते हैं , तो हमारी दया मोटे, मुस्टंडे और समर्थ लोगों पर जितनी होती उतनी दीन,अशक्त और अपाहिज लोगों पर नहीं, जिनसे समाज को उतना लाभ नहीं ।पर इसका बिलकुल उलटा देखने में आता है। दु:खी व्यक्ति जितना ही असहाय और असमर्थ होगा उतनी ही अधिक उसके प्रति हमारी करूणा होगी। एक अनाथ अबला को मार खाते देख हमें जितनी करूणा होगी उतनी एक सिपाही या पहलवान को पिटते देख नहीं। इसस स्पष्ट है कि परस्पर सहाय्य के जो व्यापक उद्देश्य हैं उनको धारण करने वाला मनुष्य का छोटा सा अंत:करण नहीं, विश्वात्मा है। दूसरों के, विशेषतया अपने परिचितों के, थोड़े क्लेश या शोक पर जो वेग रहित दु:ख होता है, उसे सहानुभूति करते हैं। शिष्टाचार में उस शब्द का प्रयोग इतना अधिक होने लगा है कि यह निकम्मा सा हो गया है। अब प्राय: इस शब्द से ह्रदय का काई सच्चा भाव नहीं उपजता । सहानुभूति के तार, सहानुभूति की चिट्ठियाँ लोग यों ही भेजा करते हैं। यह छद्म शिष्टता मनुष्य के व्यवहार क्षेत्र से सच्चाई के अंश को क्रमश: चरती जा रही हैं ।

करूणा अपना बीज अपने आलंबन या पात्र में नहीं फेंकती है अर्थात् जिस पर करूणा की जाती है वह बदले में करूणा करने वाले पर भी करूणा नहीं करता, जैसा कि क्रोध और प्रेम में होता है - बल्कि कृतज्ञ होता अथवा श्रद्धा या प्रीति करता है । बहुत सी औपन्यासिक कथाओं में यह बात दिखाई गई है कि युवतियाँ दुष्टों के हाथ से अपना उद्धार करने वाले युवकों के प्रेम में फँस गई हैं। कोमल भावों की योजना में दक्ष बँगला के उपन्यास लेखक करूणा और प्रीति के मेल से बड़े ही प्रभावोत्पादक दृश्य उपस्थित करते हैं।मनुष्य के प्रत्यक्ष ज्ञान में देश और काल की परिमिति अत्यंत संकुचित होती है। मनुष्य जिस वस्तु को जिस समय और जिस स्थान पर देखता है उसकी उसी समय और उसी स्थान की अवस्था का अनुभव उसे होता है। पर स्मृति, अनुमान या दूसरों से प्राप्त ज्ञान के सहारे मनुष्य का ज्ञान इस परिमिति को लांघता हुआ अपना देशकाल संबंधी विस्तार बढ़ाता है। प्रस्तुत विषय के संबंध में उपयुक्त भाव प्राप्त करने के लिए यह विसतार कभी कभी आवश्यक होता है। मनोविकारों की उपयुक्तता कभी कभी उस विस्तार पर निर्भर रहती है।किसी मार खाते हुए अपराधी के विलाप पर हमें दया आती है, पर जब हम सुनते हैं कि कई बार वह बड़े-बड़े अपराध कर चुका है, उससे आगे भी ऐसे ही अत्याचार करेगा,तो हमें

अपनी दया की अनुपयुक्तता मालूम हो जाती है। ऊपर कहा जा चुका है कि स्मृति और अनुमान आदि भावों या मनोविकारों के केवल सहायक हैं अर्थात् प्रकारांतर से वे उनके लिए विषय उपस्थित करते हैं। वे कभी तो आप से विषयों को मन के सामने लाते हैं, कभी किसी विषय के सामने आने पर उससे संबंध (पूर्वापर व कार्यकारण संबंध) रखनेवाले और बहुत से विषय उपस्थि ात करते हैं। जो कभी तो सब के सब एक ही भाव के विषय होते हैं और उस प्रत्यक्ष विषय से उत्पन्न भाव को तव्र करते हैं; कभी भिन्न भिन्न भावों के विषय से उत्पन्न भावों को परिवर्तित या धीमा करते हैं। उससे यह स्पष्ट है कि मनोवेग या भावों को मंद या दूर करनेवाली, स्मृति, अनुमान या बुद्धि आदि कोई दूसरी अंत:करणवृत्ति नहीं है, मन का दूसरा भाव या वेग ही है।

मनुष्य की सजीवता मनोवेग या प्रवृत्ति में, भावों की तत्परता में है। नीतिज्ञों और धार्मिकों का मनोविकारों को दूर करने का उपदेश घोर पाषंड है। इस विषय में कवियों का प्रयत्न ही सच्चा है जो मनोविकारों पर सान ही नहीं चढ़ाते बल्कि उन्हे परिमार्जित करते हुए सृष्टि के पदार्थो के साथ उनके उपयुक्त संबंध निर्वाह पर जोर देते हैं। यदि मनोवेग न हो तो स्मृति, अनुमान, बुद्धि आदि के रहते भी मनुष्य बिलकुल जड़ है। प्रचलित सभ्यता और जीवन की कठिनता से मनुष्य अपने इन मनोवेगों के मारने और अशक्त करने पर विवश होता जाता है। वन, नदी, पर्वत आदि को देख आनंदित होने के लिए अब उसे ह्रदय में उतनी जगह नहीं। दुराचार पर उसे क्रोध या घृणा होती है पर झूठे शिष्टाचार के अनुसार उसे दुराचारी की मुँह पर प्रशंसा करनी पड़ती है। जीवन निर्वाह की कठिनता से उत्पन्न स्वार्थ की शुष्क प्रेरणा के कारण उसे दूसरे के दु:ख की ओर ध्यान देने,उस पर दया करने और उसके दु:ख की निवृत्ति का सुख प्राप्त करने की फुरसत नहीं। इस प्रकार मनुष्य ह्रदय को दबाकर केवल क्रूर आवश्यकता और कृत्रिम नियमों के अनुसार ही चलने पर विवश और कठपुतली सा जड़ होता जाता है। उसकी भवुकताकानाश होता है। पाखंडी लोग मनोवेगोंका सच्चा निर्वाह न देख, हताश हो मुँह बनाकर कहने लगे हैं- ''करूणा छोडों, प्रेम छोड़ो, आनंद छोड़ो। बस हाथ पैर हिलाओं, काम करों।''

यह ठीक है कि मनोवेग उत्पन्न होना और बात है और मनोवेग के अनुसार व्यवहार करना और बात; पर अनुसारी परिणाम के निरंतर अभाव से मनोवेगों का अभ्यास भी घटने लगता है। यदि कोई मनुष्य आवश्यकतावश कोई निष्ठुर कार्य अपने ऊपर ले ले तो पहले दो चार बार उसे दया उत्पन्न होगी; पर जब बार-बार दया की प्रेरणा के अनुसार कोई परिणाम वह उपस्थित न कर सकेगा तब धीरे-धीरे उसकी दया का अभ्यास कम होने लगेगा यहाँ तक कि उसकी दया की वृत्ति ही मारी जाएगी। बहुत से ऐसे अवसर आ पड़ते हैं जिनमें करूणा आदि मनोवेगों के अनुसार काम नहीं किया जा सकता। पर ऐसे अवसरों की संख्या का बहुत बढ़ना ठीक नहीं है। जीवन में मनोवेगों के अनुसार परिणामों का विरोध प्राय: तीन वस्तुओं से होता है-

1 आवश्यकता 2. नियम, और 3. न्याय।

हमारा कोई नौकर बहुत बुड्ढ़ा और कार्य करनेमें अशक्त हो गया है जिससे हमारे काम में हर्ज होता है। हमें उसकी अवस्था पर दया जो आती है पर आवश्यकता के अनुरोध से उसे

अलग करना पड़ता है। किसी दुष्ट अफसर के कुवाक्य पर क्रोध तो आता है पर मातहत लोग आवश्यकता के वश उस क्रोध के अनुसार कार्य करनेकी कौन कहे, उसका चिह् तक नहीं प्रकट होने देते। यदि कहीं पर यह नियम है कि इतना रूपया देकर लोग कोई कार्य करने पाएँ तो जो व्यक्ति रूपया वसूल करने पर नियुक्त होगा वह किसी ऐसे दीन अकिंचन को देख जिसके पास एक पैसा भी न होगा, दया तो करेगा पर नियम के वशीभूत हो उसे वह उस कार्य को करने से रोकेगा। राजा हरिश्चंद्र ने अपनी रानी शैव्या से अपने ही मृत पुत्र के कफन का टुकड़ा फड़वा नियम का अद्भुत पालन किया था। पर यह समझ रखना चाहिए कि यदि शैव्या के स्थान पर कोई दूसरी स्त्री होती तो राजा हरिचंद्र के उस नियम पालन का उतना महत्व न दिखाई पड़ता; करूणा ही लोगों की श्रद्धा को अपनी ओर अधिक खींचती है। करूणा का विषय दूसरे का दु:ख है। अपना दु:ख नहीं। आत्मीय जनों का दु:ख एक प्रकार से अपना ही है। इससे राजा हरिश्चंद्र के नियम पालन का जितना स्वार्थ से विरोध था उतना करूणा से नहीं।

न्याय और करूणा का विरोध प्राय: सुनने में आता है। न्याय से ठीक प्रतिकार का भाव समझा जाता है। यदि किसी ने हमसे 1000 रूपये उधार लिए है तो न्याय यह है कि वह हमें 1000 रूपये लौटा दे। यदि किसी ने कोई अपराध किया तो न्याय यह है कि उसको दंड मिले। यदि 1000 रू लेने के उपरांत उस व्यक्ति पर कोई आपत्ति पड़ी और उसकी दशा अत्यंत सोचनीय हो गई तो न्याय पाने के विचार का विरोध करूणा कर सकती है। इसी प्रकार यदि अपराधी मनुष्य बहुत रोता, गिड़गिड़ाता और कान पकड़ता है तथा पूर्ण दंड की अवस्था में अपने परिवार की घोर दुर्दशा का वर्णन करता है, तो न्याय के पूर्ण निर्वाह का विरोध करूणा कर सकती है। ऐसी अवस्थाओं में करूणा करनेका सारा अधिकार विपक्षी अर्थात् जिसका रूपया चाहिए या जिसका अपराध किया गया है उसको है, न्यायकर्ता या तीसरे व्यक्ति को नहीं। जिसने अपनी कमाई के 1000 रू अलग किए या अपराध द्वारा जो क्षतिग्रस्त हुआ. विश्वात्मा उसी के हाथ में करूणा ऐसी उच्च सद्वृत्ति के पालन का शुभ अवसर देती है। करूणा सेंत का सौदा नहीं है। यदि न्यायकर्ता को करूणा है तो वह चाहे तो दुखिया ऋणी को हजार, पांच सौ अपने पास से दे दे या दंडित व्यक्ति तथा उसके परिवार की और प्रकार से सहायता कर दे। उसके लिए भी करूणा का द्वारा खुला है।

11.6 निबंध का सार: करूणा

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लिखित मनोविकार सम्बंधी निबंधों में 'करूणा' का अत्यधिक महत्त्व है। यह निबंध आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के सर्वश्रेष्ठ निबंधों में से एक है।

दूसरों के दुख के परिज्ञान से जो दुख होता है वह करूणा दया आदि नामों से पुकारा जाता है। करूणा दुख का ही एक भेद है। करूणा का उल्टा क्रोध है क्योंकि उसके उत्पन्न होने पर हम दूसरों की हानि की चेष्टा करते हैं। करूणा उत्पन्न होने पर उसकी भलाई का उद्योग करते हैं। दूसरी तरफ लोभ आनंद की

श्रेणी में है पर लोभी अपनी प्रिय वस्तु को हानि नहीं पहुँचाता है, उल्टे रक्षा करता है।

मनष्य समाजिक प्राणी है और उसके सुख-दुख का बहुत सा अंश दूसरों के कामों और उनकी अवस्था पर निर्भर करता है। दूसरों के दुख से दुखी होना और सुख से सुखी होना उसके लिए स्वाभाविक है। जहाँ यह नियम है वहाँ यह भी देखा गया है कि हम दूसरों के सुख से सुखी होने की अपेक्षा उनके दुख से दूखी अधिक और शीघ्र होते हैं। करूणा की तीव्रता का सापेक्ष-विधान जीवन निर्वाह की सुगमता और कार्यविभाग की पूर्णता के उद्देश्य से समझना चाहिए यह भी स्वाभाविक ही है कि परिचितों के दुख पर हम अपरिचितों के दुख से अधिक दुखी होते हैं।

कृपा और करूणा में भेद यह है कि कृपा में आत्मभाव छिपा रहता है और उसके द्वारा पहुँचाया सुख एक प्रकार का प्रतीकार है। पर करूणा द्वारा पहुँचाया सुख दु:ख की निवृत्ति है जिसकी जीवनमें अत्यन्त आवश्यकता है। प्रिय के वियोजनित दुख में करूणा का जो अंश रहता है उसका विषय प्रिय के सुख का अनिश्चय है। अनिश्चयत बात पर दुखी होना ज्ञानियों के निकट अज्ञान है। इसीलिए किसी प्रान्तीय भाषा में करूणा को मोह भी कहते है। मनुष्य संसार आपने आप बनाता है। संसार कहने सुनने के लिए है।

वास्तव में किसी मनुष्य का संसार तो वे ही लोग हैं, जिनसे उसका संसर्ग या व्यवहार है। सहानुभूति उस वेग सहित दु:ख को कहते हैं जो अपने परिचितों के थोड़े से क्लेश या दु:ख को देखकर होती है। करूणा में आदान – प्रदान का भाव नहीं रहता तथा साथ ही स्मृति और अनुमान, भावों के केवल सहायक हैं। जीवन में मनोवेगों को मारना अच्छा नहीं है। करूणा का सीधा और व्यवहारिक संबंध हृदय की सत्यता, तटस्थता एवं आत्मिक त्याग से है। करूणा के साथ-साथ शुद्ध असत्यता को नहीं रखा जा सकता ,करुणा शुद्ध, सात्विक मनोविकार है।

11.7 करूणा : संदर्भ सहित व्याख्या

(क)जब बच्चे को ..... चैन से रक्खा।

शब्दार्थ -

संबंध ज्ञान	– संयोग या संगति से प्राप्त ज्ञान
करूणा	- दुख का वह भेद जिसका संबन्ध ज्ञान से है
विवेचनक्रम	- भले बुरे ज्ञान, निर्णय
आरोप	- संस्थापन, कल्पाना

कार्य- कारण सम्बन्ध- प्रत्येक कार्य के मूल में एक कारण होता है

अभ्यस्त - आदी, चेष्टा, प्रयास

उद्योग – प्रयत्न उत्तेजना, प्रोत्साहन

वाक्यार्थ- बिना संबंध की प्रवृत्ति को जाने दुख की आधारभूमि पर स्थापितकरूणा नाम मनोविकार की नींव नहीं पड़ती जब एक छोटा बच्चा पहले-पहले अपने और दूसरे व्यक्ति के मध्य के संबंध को जानता है तभी वह करूणा के स्वरुप या मानसिकता को समझ सकता है। एक बार संबंधों की पहचान हो जाने पर ही दुख की अधिकता के फलस्वरूप मानव दुख की वास्तविक अनुभूति को समझता चलता है। दुख की श्रेणी में प्रवृत्ति के विचार से करूणा का उल्टा क्रोध है. करूणा और क्रोध दोनों की उत्पत्ति कुछ दुख से है पर परिणाम दोनों का भिन्न है। करूणा के द्वारा हम दूसरे को लाभ पहुंचाते हैं परन्तु क्रोध के द्वारा हम दूसरे को हानि ही पहुंचाना चाहते हैं।

(ख) ऊपर कहा जा..... हो जाता है।

शब्दार्थ -

अवलम्बित	-	आधारित
प्रवाह	-	प्रसार, फैलाव
तुष्टि	-	सुख सनतोष, आनंद
अपेक्षा	-	आवश्यकता
सुहृदय	-	प्रिय,
परिज्ञान	-	निश्चय, परिचय
निर्जन	-	एकान्त, निर्वाह- वयतीत, कोटि-श्रेणी
निर्लिप्त	-	नि:स्वार्थ
वितृत्ति	-	छुटकारा, त्याग
निराकरण	-	दूर करना, त्याग
प्रतीकर	-	बदला
आत्मभाव	-	अपनापन

वाक्यार्थ- जैसा कि पहले कहा गया था कि जब मनुष्य के मनोविकारों के क्षेत्र का फैलाव मनुष्य के सामाजिक संबंधों की अपेक्षा में होते हैं । जैसे-जैसे मनुष्य का सामाजिक दायरा बढ़ता जाता है वैसे-वैसे मनुष्य का आन्तरिक मनोजगत भी अपना विस्तार करता जाता है। समान्यत: हमें दूसरों का दुख देखकर दुख होता है तथा उत्साह एवं सुख देखकर

उत्साहित एवं सुखी अनुभव करता है। निबंधकार मानवीय स्वाभाव की एक विशेष प्रवृत्ति की तरफ इंगित करते हुए कहता है कि यह बात सत्य है कि हम किसी अंजान व्यक्ति के दुख को देखकर स्वयं दुखित हो जाते हैं परन्तु किसी राह चलते अंजान व्यक्ति की खुशी को देखकर खुशी का अनुभव नहीं करने लगते हैं । साथ ही यदि किसी व्यक्ति के दुख का कारण उसके बुरे तथा अमानवीय कार्य है तो उस स्थिति में हमारा उस अपराधी व्यक्ति के लिए दुख खत्म होकर क्रोध का रूप धारण कर लेता है।

(ग) दूसरों के दुख .....नहिं अधमाई।

शब्दार्थ-तीव्रता - अधिक्य, तेजी

शील - सदाचार

सद्वृत्ति - बोलचाल में चित्त की कोमलता

कुपित - क्रोधित, नाराज

समकक्ष - समान

वर्जित - रहित, त्याज्य

वाक्यार्थ - आचार्य शुक्ल कहते हैं कि सुख एवं दुख मनुष्य के भीतर मनोजनित मनोविकारों की विशिष्ट श्रेणी के भाव है। शील या सदाचार सम्बंधी करूणा और सहानुभूति में अनतर है। पहले में विवेक है, दूसरे में प्रबल गति। शील का सीधा संबंध मानव के भीतर स्थापित नैतिक सत्यता एवं उसकी दृढ़ता से है। उसके समकक्ष रूखे नियम बंधन को नहीं रखा जा सकता है. सिद्धान्तों की सहायता से आप सदाचार का निर्माण कर सकते हैं-उनसे सहायता ले सकते हैं पर नियम और शील को बराबर कहना बड़ी भूल कही जाएगी शील का संबंध भान सत्य से न होकर मनुष्य की मूल नैतिक प्रवृत्ति से होता है जबकि नियम- सिद्धान्त का ताल्लुक मात्र अपराध-दण्ड विधान से होता है। जिस काम के करने को अन्त: कारण स्वीकार न करेंउसे करना पाखण्ड है। बिना वास्तविक भावों के आचरण करना दिखावा है, मनुष्य के मन में सात्विकता की ज्योति जगाने वाली यही करूणा है। महाकवि तुलसीदास के शब्दों को उद्धृत करते हुए लेखक कहता है कि-''दूसरों का अच्छा करने के अतिरिक्त और कोई बड़ा धर्म नहीं एवं साथ ही दूसरों को पीड़ा पहुँचने के अतिरिक्त और कोई बड़ी दुष्टता नहीं।

(घ) जिस व्यक्ति .....विकल होते हैं।

शब्दार्थ –

व्यक्त	–	प्रगट
खण्डित	-	टूटना, भ्रष्ट होना
कुव्यवहार	-	दुर्व्यवहार
विश्वात्मा	-	ईश्वर
चंचल	-	अस्थिर
मुण्डे-मुण्डे भिन्न वस्तु-		प्रत्येक व्यक्ति अलग है
वक्ता	-	भाषणकर्ता, बोलने वाला।

वाक्यार्थ - अपने जीवन में हम जिस भी व्यक्ति से घनिष्ठ रूप से संबंधित होते हैं वह हमारे जीवन के बहुत से मनोभावों से सम्बंध रखते हैं हम अपना सामाजिक जीवन स्वयं ही निर्मित करते हैं। हम जिन व्यक्तियों के साथ रहते हैं वही हमारे सामाजिक जीवन की प्रवृत्ति को निश्चित करते हैं. करूणा का तीव्रता के साथ हमारे भीतर उपस्थित होना इसी प्रिय व्यक्ति के आंशिक अथवा पूर्ण वियोग पर निर्भर करता है. वियोग के पश्चात् उस व्यक्ति से संबंध स्मृतियाँ हमारे मन में निरंतर उपस्थित होती है तथा पूर्व में घटित प्रत्येक घटना का स्मरण क्रमश: होता जाता है।

(ड) करूणा अपना बीज ..... न रहती है।

शब्दार्थ

आलंबन	-	सहारा, आधार, कारण
औपन्यासिक	-	उपन्यासपरक, उपन्यास से संबंधित
प्रभावोत्मादक	-	अति प्रभावकारी
दक्ष	-	चतुर प्रवीण
परिमित	-	सीमा के भीतर, छोटा

वाक्यार्थ - प्रस्तुत गद्यांश की प्रथम पंक्ति एक विशिष्ट सूक्ति है जो कि सम्पूर्ण निबंध की बीज पंक्ति है । लेखक कहता है कि किसी के प्रति प्रदर्शित करूणा के बदले कभी करूणा नहीं पाई जाती है। यदि हम किसी के प्रति प्रेम प्रदर्शित करते हैं तो बदले में प्रेम पाते हैं वैसे ही यदि हम किसी के प्रति क्रोध प्रदर्शित करते हैं तो बदले में हमें भी क्रोध अथवा घृणा प्राप्त होती है परन्तु यदि हम किसी के प्रति करूणा प्रदर्शित करते हैं तो उसके बदले हमें करूणा प्राप्त नहीं होती है। आचार्य शुक्ल के अनुसार आमान्य रूप से मनुष्य का ज्ञान संकुचित होती है। मनुष्य को जितना जगत-रूप-व्यापार सीधे दिखई देता है वही उसका ज्ञान क्षेत्र होता है परनतु अपनी

स्मृति एवं मनोविकारों की सहायता से मनुष्य अपने ज्ञान एवं अनुभव क्षेत्र का बहुविध विकास करता चलता है। मानव मन के मनोविकारों का वास्तविक महत्व यही है कि वह मानव मात्र के ज्ञान, अनुभव व समाज का विस्तार प्रत्यक्ष दृष्टि की अपेक्षा अधिक करता है।

11.8 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के सम्पूर्ण व्यक्तिगत एवं साहित्यिक जीवन को जान चुके होंगे।
- आचार्य शुक्ल के साहित्यिक व्यक्तित्व के क्रमबद्ध विकास तथा हिन्दी साहित्य में उनके महत्त्वको जान चुके होंगे।
- मानव मन के भीतर व्याप्त मनोविकारों में महत्वपूर्ण 'करूणा' के भाव की जानकारी तथा उसकी आंतरिक बुनावट को समझ गए होंगे।
- मानव जीवन में 'करूणा' के महत्त्व तथा साहित्य में करूणा की उपयोगिता एवं उसकी प्रायोगिक अभिव्यक्ति का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे

11.9 शब्दावली

संबंधज्ञान	-	संयोग से प्राप्त ज्ञान
विवेचनक्रम	-	भले-बुरे का निर्णय
परिज्ञान	-	निश्चय, परिचय
निवृत्ति	-	छुटकारा
पूर्वापर	-	आगे पीछे का
मातहत	-	नीचे काम करने वाला कर्मचारी
अंकिचन	-	निर्धन
वैचारिक	-	विचार से संबंधित
प्रवृत्ति	-	आदत
परिमार्जित	-	शुद्ध
अशक्त	-	दुर्बल
छद्म शिष्टता	-	बनावटी व्यवहारिक रूप,

11.10अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) करुणा ,उत्साह, काव्य में प्राकृतिक - दृश्य, कविता क्या है .

(क) अति लघु उत्तरीय प्रश्न-

1. जन्म सन् 4 अक्टूबर 1884 , मृत्यु 2 फरवरी 1941

2. 1929 ई.
3. विचार वीथी (1930 ई.)

(ख) सही विकल्प चुनिए- 1. कल्पना का आनंद

11.11संदर्भ ग्रंथ सूची

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, रामचन्द्र तिवारी,2005, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली पृ. 7-10
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृष्ठ 505
3. हिन्दुस्तानी त्रैमासिक, इलाहाबाद, पृष्ठ 137
4. चिंतामणि- भाग 1, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान दिल्ली
5. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, रामचंद्र तिवारी, 2005, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, पृष्ठ-43
6. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ग्रन्थावली (सं.) ओमप्रकाश सिंह, 2007, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली,
   पृष्ठ. 366-374
7. चिंतामणि दर्शन,डा. हरिहरनाथ टण्डन, 1957, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, पृष्ठ-157-159

11.12 सहायक पाठ्य सामग्री

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ग्रंथावली (सं.) ओमप्रकाश सिंह, 2007, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
3. आचार्य रामचंद्र शुक्ल का चिंतन जगत, कृष्णदत्त पालीवाल, 1984
4. रामचंद्र शुक्ल, मलयज, 1987, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।
5. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, रामचन्द्र तिवारी,2005, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली

11.13 निबंधात्मक प्रश्न –

(क) आचार्य रामचंद्र शुक्ल का जीवन एवं साहित्यिक परिचय विस्तार से लिखिए।

(ख) हिन्दी साहित्य में आचार्य रामचंद्र शुक्ल के महत्व को प्रतिपादित करते हुए करूणा निबंध का सार अपने शब्दों में लिखिए।

इकाई 12 उत्तराखण्ड में संतमत और संत साहित्य: परिचय, पाठ एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 डा. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल: व्यक्तित्व एवं कृत्तित्व
12.4 उत्तराखण्ड में संतमत और संत साहित्य : पाठ
12.5 निर्गुण संत मत और डा. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल
12.6 सारांश
12.7 शब्दावली
12.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.9 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई स्नातक स्तर के पाठ्यक्रम से सम्बद्ध है। इस से पूर्व आपने हिंदी साहित्येतिहास के निबंध साहित्य का ज्ञान प्राप्त किया।

प्रस्तुत इकाई में आप उत्तराखण्ड के बहुप्रतिष्ठित विद्वान एवं निर्गुण साहित्य के मर्मज्ञ डा. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल द्वारा लिखित 'उत्तराखण्ड में संतमत तथा संत साहित्य'का अध्ययन करेंगे। यह इकाई मात्र विद्यार्थियों के अध्ययन एवं ज्ञानार्जन के लिए है इस से परीक्षा में व्याख्या हेतु प्रश्न नहीं पूछे जायेंगे।

12.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- डा. पीताम्बर बड़थ्वाल के जीवन एवं साहित्य से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- हिंदी साहित्येतिहास के अन्तर्गत निर्गुण सम्प्रदाय की स्थिति तथा उत्तराखंड की भूमि में प्रसारित संत मत विशेषतः निर्गुण संत मत एवं साहित्य के संबंध में ज्ञान लाभ कर सकेंगे।

12.3 डा. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल: व्यक्तित्व एवं कृत्तित्व

पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल का जन्म शुक्रवार 24 मार्गशीर्ष सं0 1958 (13 दिसम्बर, 1901) को गढ़वाल में लैंसडाउन के पास पाली नामक एक छोटे से गांव में हुआ था। इनके पिता का नाम पं. गौरीदत्त बड़थ्वाल था। वे अच्छे ज्योतिषी तथा कर्मकाण्डी विद्वान थे। बालक पीताम्बर का पालन उनके ताऊ पं. मणिराम बड़थ्वाल ने किया, जिनकी अपनी कोई सन्तान नहीं थी। वैसे भी जब बालक पीताम्बर केवल दस वर्ष के थे तो उनके पिता पं. गौरीदत्त जी का देहावसान हो गया था।

आरम्भ में घर पर रहकर ही उन्होंने संस्कृत की पढ़ाई अमरकोष के अध्ययन से आरम्भ की। कुछ समय समीपस्थ विद्यालय में अध्ययन करने के बाद वे श्रीनगर (गढ़वाल) गवर्नमेंट हाई स्कूल में अध्ययन करने चले गए, परन्तु वहां उपयुक्त में कालीचरण हाई स्कूल में प्रवेश लिया, जहां उस समय हेडमास्टर के पद पर हिंदी के दिग्गज बाबू श्यामसुन्दरदास काम कर रहे थे। बाबू श्यामसुन्दरदास अपने विद्यार्थी पीताम्बर दत्त से अत्यधिक प्रभावित हुए और यह परिचय घनिष्ठ होकर बाद में साहित्यिक सहयोग में परिवर्तित हो गया। 1920 में हाई स्कूल सम्मान सहित पास कर, वे एफ.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। तदुपरान्त बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में बी.ए. करने के लिए नाम लिखा लिया था, परन्तु बीमार पड़ने के कारण पढ़ाई न कर सके। लगभग दो वर्ष तक बीमारी की हालत में गांव में रहे। इसी दौरान इनके ताऊ का भी देहान्त हो गया। 1924 में उन्होंने बनारस जाकर इन्हीं दिनों बनारस पुन: पढ़ाई आरम्भ किया। सन् 1926में बी0ए0 की परीक्षा पास की। सौभाग्यवश इन्हीं दिनों बनारस विश्वविद्यालय में एम0ए0 परीक्षा में प्रथम श्रेणी स्थान प्राप्त किया। उन्हें हिंदी विभाग में शोध कार्य पर नियुक्त किया गया। वे अपना

शोध कार्य बड़े मनोयोग से करने लगे और इसी दौरान 1926 में उन्होंने एल.एल.बी. की परीक्षा भी उत्तीर्ण कर ली . 1930में वे बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में लेक्चरार नियुक्त किए गए।

अध्यापन कार्य के बाद उन्हें जो भी समय मिलता था उसे वे शोधकर्ता में लगाते थे। उनकी अध्ययनशीलता को देखकर काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने उन्हें अपने खोज विभाग का अवैतनिक संचालक नियुक्त किया, साथ-साथ वे स्वयं डाक्टरेट की तैयारी में लगे रहे। दो-तीन वर्ष परिश्रम करने के बाद उन्होंने अपना शोध निबंध 'दि निर्गुण स्कूल ऑफ हिंदी पोयट्री' प्रस्तुत किया।

अपनी साहित्य साधना में वे निरन्तर लगे रहे। जिसके परिणामस्वरूप वे विद्वानों में गिने जाने गले और जगह-जगह महत्वपूर्ण सम्मेलनों में बड़े आदर से बुलाए जाने लगे। यह सब होते हुए भी बनारस में इन्हें असिस्टेंट प्रोफेसर का वेतनमान नहीं दिया गया। महामना मालवीय जी आदि ने हिंदी अध्यापकों को अन्य विषयों के अध्यापकों के समकक्ष वेतन देने से इन्कार कर दिया। डॉ.बड़थ्वाल ने वाइस-चांसलर को सम्बोधित कर अपने 6 मार्च 1938 के अभ्यावेदन में स्पष्ट रूप से लिखा था कि ''अन्य विषयों के डी. लिट्. के समकक्ष मुझे वेतन ने दिए जाने कारण एक ही दिखाई देता है और वह है मेरा हिंदी का स्नातक होना।'' इसके बाद वे लखनऊ चले गए, वहां हिंदी विभाग के प्राध्यापक के रूप में काम करने लगे। परन्तु चाहे जो भी कारण रहा हो लखनऊ का वातावरण उन्हें माफिक नहीं रहा और धीरे-धीरे उनकी शारीरिक तथा मानसिक अस्वस्थता बढ़ती गई। जब काम करना असम्भव हो गया तो अपने गांव आकर रहने लगे जहां सोमवार 24 जुलाई, 1944(सं0 2001 के श्रावण मास की शुक्ल चतुर्थी) को उनका देहावसान हो गया।

डॉ. बड़थ्वाल का जीवन संघर्ष का जीवन रहा। एक ओर पारिवारिक चिन्ताएँ, दूसरी ओर अर्थाभाव उन्हें घेरे रहा। फिर भी वे निरन्तर हिंदी की सेवा करते रहे।" (सच्चिदानंद कबटियाल)

12.4 उत्तराखण्ड में संतमत और संत साहित्य : पाठ

सन्त विचार-परम्परा का गढ़वाल से विशेष संबंध है। संत मत मूल्त: निवृत्ति मार्ग है। उसके सर्वप्रथम आचार्य सनत्कुमार थे छांदोग्य के अनुसार इस संतमत अथवा अध्यात्म-विद्या को सनत्कुमार से नारद से सीखा। इन्हीं नारद की प्रचार की हुई भक्ति में कबीर आदि संतों ने भी डुबकी लगायी। सनत्कुमार ने नारद की वृत्ति को धीरे-धीरे अन्तर्मुख किया। वेद, अन्न, स्मृति, आशा, प्राण, सत्य, मति, श्रद्वा, भूमा आदि के मार्ग से ले जाते हुए वे नारद को वास्वविक आत्मानुभूति की अवस्था तक पहुँचा देते हैं। महाभारत के नारदोपाख्यान के अनुसार नारद की अध्यात्म मार्ग को सीखने के लिए ऐकांतिकों के पास श्वेतद्वीप गये थे। श्वेतद्वीप सूमेरू से उत्तर दिशा में क्षीरसागर के उत्तर तट पर एक द्वीप था। थियासफी के योगविदों के अनुसार यह स्थान चीन के गोबी नामक विस्तीर्ण मरू में-जहाँ पहले क्षीरसागर रहा होगा, अब भी विद्यमान है और

इस सृष्टिकाल के सबसे बड़े आचार्य सनत्कुमार अब भी वहाँ रहते हैं। पंडित नरदेव शास्त्री तो हिमगिरि को ही श्वेतद्वीप मानते हैं और गढ़वाल को सनत्कुमार का स्थान।महाभारत के अनुसार जिन लोगों से अध्यात्म-विद्या सीखने के लिए नारद श्वेतद्वीप गये थे वे 'नारायण पर' थे और उसमें संदेह नहीं कि समेरू के निकट नारायणीय धर्म के संबंध रखने वाला सबसे प्रसिद्व स्थान बदरिकाश्रम है जिसका महाभारत-काल में भी आजकल ही के समान अत्यन्त आदर था।

बदरीनाथ बदरीनारायण हैं। बदरिकाश्रम नारायणाश्रम है और नारायण के अवतार व्यासजी का भी मूल आश्रय वही है। वहीं उन्होंने अध्यात्मविद्याके आधार ग्रथ ब्रह्मसूत्र का प्रणयन किया था। वस्तुत: उत्तराखंउ का यह प्रदेश सच्ची तपोभूमि है। प्राचीन काल में तपस्या के द्वारा यहीं बड़े-बड़े तपस्वियों को ज्ञान प्राप्त हुआ। अष्टावक्र ऋषि यहीं विदेहावस्था को प्राप्त हुए। व्यासाश्रम (व्यासगुफा), वसिष्ठाश्रम (हिंदाव) परशुरामाश्रम, बालखिल्याश्रम इस बात का प्रचुर साक्ष्य देते हैं कि यह प्राचीन ऋषियों की तपोभूमि है।

मध्य-युग के सबसे बड़े महात्मा गोरखनाथ ने भी यहीं अपनी सिद्वि प्राप्त की। "रख्वाली" (शरीर-रक्षा के) मंत्रों से पता चलता है कि उन्होंने अपनी घोर तपस्या 'धौलया उढ्यारी' (धवल गुहा) नामक गुफा में की थी। यह स्थान दक्षिण गढ़वाल में अत्यन्त निर्जन और बीहड़ स्थान में है। यहींवीर राजा काली हरपाल को उसकी माता ने बाल्यावस्था में बड़ी कठिनाइयों का यामना करते हुए पाला था। इस सथान का इस प्रकार गढ़वाल के इतिहास में ही नहीं संतों के इतिहास में भी बड़ा महत्व है। स्वयं गोरखनाथ ने तप के क्षेत्र में उत्तराखण्ड का बड़ा महत्व माना है।

दक्षिणी जोगी रंगा चंगा, पुरबी जोगी वादी।
पछिमी जोगी बाला भोला, सिंध जोगी उतराधी।।

गढ़वाल के मंत्र-साहित्य में गुरू गोरखनाथ का बड़ा प्राधान्य रहा है। जान पड़ता है कि किसी समय में नाथों का भी यहाँ बड़ा प्राधान्य था। अभी भी गढ़वालमें गोरखपंथी नाथ बहुत हैं। ओले, अति वर्षण आदि ईतियों के निवारण के लिए जिन डलियों को 'डाडवार' (वार्षिक वृत्ति) प्रत्येक गढ़वालीघर से मिलता है, वे नाथ ही हैं। दक्षिण गढ़वाल में बहुत नाथ रहते हैं।श्रीनगर में भी नाथों को एक अलग मुहल्ला है। गढ़वाल में बहुत नाथ रहते हैं। गढ़वाल में गोरखपंथियों का सबसे बड़ा स्थान देवलगढ़ के सत्यनाथ का मंदिर है। मूलत: देवलगढ़ देवी का पवित्र स्थान है। त्रिगर्त(काँगड़ा) के देवल नाम के एक प्राचीन राजा ने इस स्थान पर गौरा देवीका मंदिर स्थापित किया था ऐसा परंपरागत प्रवाद है देवल राजा ही के नाम से इस स्थान का नाम देवलगढ़ पड़ा है। देवी का यह मंदिर अब तक देवलगढ़ में विद्यमान है और गोरजा देवीके मंदिर के नाम से प्रख्यात है। गढ़वाल के पँवार राज्यवंश का स्थापित किया हुआ राज-राजेश्वरी का मंदिर भी यहाँ है, परन्तु संतमत की दृष्टि से सत्यनाथ का मंदिर बड़ा महत्वपूर्ण है। इसके पीछेएक ऐतिहासिक परंपरा है जो एक बड़े ऐतिहासिक तथ्य की ओर संकेत करती है। कहा जाता है कि राजा अजयपाल को भैरवनाथ ने सत्यनाथ ने सत्यनाथ योगी के रूप में यहीं दर्शन दिये और उन्हें कंधे पर चढ़ा कर अपना आकार बढ़ते हुए कहा कि जहां तक तुम्हारी दृष्टिजाती है, वहां तक तुम्हारा

राज्य फैल गया और उसनेसत्यनाथ से प्रार्थनाकी कि अब अपना आकार न बढ़ाइए। राजा की दृष्टि हिमालय से लेकर शिवालिक (सपाद लक्ष) पर्वत-श्रेणीतक पहुँची और वहाँ तक उसका राज्य फैल गया।

किसी समय उत्तर-भारत में नाथों का खूब बोलबाला रहा है। वे केवल निरीह साधु ही नहीं रहे हैं नवीन राज्यों की स्थापना करने वाले और राज्य-शक्ति का परिचालन करने वाले भी रहे हैं। इसमें तो संदेह नहीं कि गोरखा राजा का नाम गोरखनाथ के नाम से पड़ा है। गोरखा राजा अपने आपको केबल दीवान मानते हैं, गद्दी का वास्वविक स्वामी तो गोरखनाथ माना जाता है। जान पड़ता है कि शिशोदियों की जो शाखा 94वीं शताब्दी के लगभग गोरख और पीछे नेपाल राज्य में अधिष्ठित हुई, उसको वहां लाने के कारण गोरखनाथ ही थे। जोधपुर में 97वीं 98वीं शताब्दी के नाथ लोगों के ही हाथामें प्राय:सारेराज्य की बागडोर रही है। गढ़वाल में पँवार-वंश को गहरी नींव देने में भी जान पड़ता है कि नाथों का कुछ साहाय्य रहा है, यह ऊपर के परंपरागत जनवाद से स्पष्ट है और कई प्रकार से इसकी पुष्टि होती है। गढ़वाल के गाँव-गाँव में सिद्वों के स्थानों का होना इस बात का सूचक है कि गोरक्ष आदि सिद्वों को यहाँ बड़ा माना था। सिद्वों ने गढ़वाल में ग्राम-देवताओं का स्थान ग्रहण कर लिया है और भैरव तथा देवी के साथ-साथ उनकी भी पूजा होती है। बल्कि भैरव और देवी की तो कभी-कभी याद आती है, सिद्वि का स्परण पद-पद पर किया जाता है। गढ़वाल में मंत्र-साहित्य में गोरखनाथ, सत्यनाथ, मछिंद्रनाथ, गरीबनाथ, कबीरनाथ, आदि सिद्वों की आणें पड़ती है।

जान पड़ता है कि देवलगढ़ में सत्यनाथ के मन्दिर की स्थापना संवत् 1683 में आषाढ़18 गते को हुई। उससे पहले वह केवल गुफा मात्र रही होगी। मन्दिर रूप में बन जाने पर पहले पीर हंसनाथ जी थे जिनका नाम मंदिर में संवत् के साथ लिखा हुआ है। किसी प्रभावशाली व्यक्ति प्रभातनाथ ने सम्भवत: उसी समय एक बड़ा भारी भंडारा भी किया था। उसका भी उल्लेख शिलालेख में है। यह भी सम्भव है कि मन्दिर की स्थापना हंसनाथजी ने बहुत प्राचीन काल में की हो और प्रभातनाथजी ने संवत् 1683 में मन्दिर की केवल मरम्मत और भंडारा किया हो। स्वर्गीय वजीर पं. हरीकृष्णजी रतूड़ी का मत है कि राजा अजयपाल ने राज-राजेश्वरी और सत्यनाथ दोनों मन्दिरों की स्थापना संवत् 1512 के लगभग की राजधानी चाँदपुर से हटा कर देवलगढ़ में स्थापित हुई।यह अजयपाल राजा वही हैं जिन्होंने गढ़वाल में बहुत कुछ शांति स्थापित की। इनके समय का चला हुआ देवलिया पाथा (पात्र भर कर अन्न नापने का एक परिणाम द्यूल्या पाथो 'देवलीय प्रस्थ') अब तक गढ़वाल में प्रचलित है। इसके प्रचार संबंधी शिलालेख भी अब तक देवलगकढ़ में विद्यमान हैं।

जान पड़ता है कि नाथों का जो मान अजयपाल ने किया उसके कारण स्वयं वे भी महात्माओं की श्रेणी में आ गये हैं। नाथों या सिद्वों में केवल अजयपाल अजयपाल भरथरी और गोपीचन्द ही ऐसे हैं जिनके नाम से आगे नाथ या पाव ('पाद'-'पा' भी यही है) नहीं आये हैं इससे पता चलता है कि गोपीचन्द और भरथरी के समान सिद्व अजयपाल भी राजा था। कबीर का संत-मत से धनिष्ठ संबंध है। वह भी गढ़वाल में सिद्व मानाजाता है। कहीं-कहीं पर उसको

कबीरनाथ भी कहा है। गढ़वाल में कबीर के मत का भी प्रचार हुआ था। गढ़वाल के डोम जो निंकार (निराकर) को पूजा चढ़ाया करते हैं, वस्तुत: कबीर के ही अनुयायी हैं। निरंकार की पूजा में कबीर की 'जागर' लगती है। यद्यपि कबीर अहिंसावादी थे फिर भी डोम निरंकार की पूजामें बड़ी निर्दयता से सुअरों का बलिदान करते हैं। किन्तु इस बलिदान को भी उन्होंने विलक्षण रूप से कबीर के साथ जोड़ दिया है।

जागर के अनुसार कबीर ने निरंकार को एक टोकरी अन्न और दो नारियल अग्याल (मनौती की अग्रिम भेंट) के रूप में चढ़ाये थे। कबीर जब कहीं बाहर गये हुए थे तब निरंकर स्वयं एक लंगड़े मँगता के वेश में कबीर के घर आया और उसकी स्त्री से भीख माँगने लगा। कबीर की स्त्री ने कहा कि घर में निरंकरकी अग्याल के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। मँगता ने उसी में से अपने छोटे खप्पर को भरकर भीख मिल जाने का आग्रह किया। कबीर की स्त्री यह आग्रह न टाल सकी। किंतु मँगता का खप्पर तब जाकर भरा जब सारी अग्याल उसमें डाल दी गयी। कबीर की स्त्री अपने किए पर पछताती हुई खाली पात्र रखने के लिए भीतर गयी तो उसने सारा कमरा अन्न से भरा हुआ पाया। अब उसे सूझा कि हो न हो यह भिखमंगा स्वयं निरंकार ही था। परन्तु इससे पहले कि वह बाहर निकल कर उसके चरणों पर पड़े और अनुनय-विनय करे वह लंगड़ाता हुआ भाग खड़ा हुआ। भागने में उसके खप्पर में से दोनों नारियल एक मैले स्थान पर गिर गये और सुअर के रूप में परिवर्तित हो गये। तब से निरंकार के लिए सुअरों की बलि दी जाती है। एक प्रकार से सुअर सुअर नहीं, नारियल हैं और उनको चढ़ाने से अहिंसा का विरोध नहीं होता।

मैं तो समझता हूं कि मुसलमान कुल में पैदा हुए गुरू के चेलों को जब लोग मुसलमान ही गिनने लगे तब उनमें से कुछ को अपना मुसलमान न होना सिद्व करने के लिए शूकर-वध का यह उपाय काम में लाना पड़ा। यह कहा जा चुका है कि व्यासजी ने ब्रह्मसूत्र की रचना बदरिकाश्रम में ही की थी। हिन्दी का भी थोड़ा-सा आध्याम्तिक साहित्य गढ़वाल में लिखा हुआ मिलता है।

मोलाराम का नाम चित्रकारी के लिए प्रसिद्व है। उसने चित्रकारी के साथ-साथ कविता भी की थी। मोलाराम ने नाना विषयों पर लिखा है। मोलाराम ने जो कुछ लिखा है उसका काव्य की दृष्टि से से विशेष महत्व नहीं परन्तु अन्य दृष्टियों से उसका बहुत महत्व है। गढ़वाल के तत्कालीन इतिहास पर उनकी कविताओं से अच्छी तरह प्रकाश पड़ाता है। थोड़ा बहुत अध्यात्म विद्या पर भी उन्होंने लिखा है। साधना पंथ के मनोविज्ञान की दृष्टि से इन कविताओं का बड़ा महत्व है।

कुछ मनस्तत्ववेत्ताओं का मत है कि मनुष्य के सब भावों का मूल्य प्रेरक श्रृंगार ही है। यही एक भाव नाना रूप धारण कर मनुष्य के विविध क्रिया-कलापों में प्रकट होता है। जान पड़ता है कि मोलाराम के विषय में गढ़वाल में भी एक साधना-पंथ ऐसा था जिसके आचार्यो को इस मनोवैज्ञानिक तथ्य का ज्ञान था और उसी पर उन्होंनेइस पंथ की नींवडाली थी। इस पंथ का नाम मोलाराम के अनुसार मनमथ-पंथ था। यह पंथ का नाम मोलाराम के अनुसार आदि शक्ति

ही सर्वोपरि और सृष्टि का मूल है। अकल रूप में वह सदाशिव है, निर्गुण है। सकल या सगुण रूप धारण कर वही सृष्टि रचती है।

आदि शक्ति रचना जब रची या विश्व माहिं
मन मथि कै ध्यान धर् यो मनमथ हुलासा है।
मनमथ, सौ इच्छा भई भेग और विलास हूँ की
ताके हेत ब्रह्म हरि रूद्र कौं प्रकासा है।।

इस प्रकार मोलाराम के अनुसार आध्यात्मिक साधना धर्मनीति, समाजनीति, राजनीति, साहित्य, संगीत, कला, वाणिज्य-व्यवसाय सब क्षेत्रों में एक ही मूल प्रवृत्ति नाना रूपों में काम करती है। मनमथ, कामदेव आदि शब्दों के व्यवहार से यह नहीं समझना चाहिए कि जिस पंथ का वर्णन मोलाराम ने किया है, वह व्यभिचार फैलाने वाला पंथ है। मोलाराम ने स्पष्ट शब्दों में कुमार्ग का त्याग दया दाक्षिण्य मुक्त गृहस्थ धर्म को पालना, मन को साधना और अंतर्मुख जीवन बिताना आवश्यक बतलाया है।

है तुहू अन्दर बैठ निरंतर लेख्यो लिलाट कही नहीं जावैं।
छाड़ि कुमारग मारग मैं रहौ, धृस्य कौं मूल दया हितरावै।।
साधन तें मन साधले आपनों मोलाराम महा सुष पावै।
है तुहु अन्दर दुइत मन्दर क्यौं जग बन्दर सौं भरमावै।

वस्तुत: इस पंथ ने मनुष्य की वास्तविक प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया है और अपनी साधना को दृढ़ आधारशिला पर रखा है, जिससे साधक धोखे में न पड़े। जैसा 'यत: प्रवृति प्रसृता पुराणी' से पता चलता है। गीता भी मानती है कि फैलाव जितना है प्रवृत्ति का है। इसलिए वही पंथ जो इस प्रवृत्ति को ध्यान में रख कर चलता है, वस्तुत: लाभदायक हो सकता है। अतएव मोलाराम ने जीव से सीव (शिव-ब्रह्म) होने को एक मात्र उपय बताया है। इन मन:शक्ति को उपयुक्त रूप में मंथन कर उसे नाना दिशाओं में दौड़ने से रोक कर एक ही स्थान में लाना यही सारी साधना का सार है, इसी का दूसरा नाम निवृत्ति तथा योग है: मन के साथ जोब-जबर से काम नहीं चलता। उसे बलात एक स्थान पर सिमटाना असंभव है। उसीलिए मन को समझाने का उपदेश है:

काहू सौं बकवाद नहीं हम करैं करावैं।
मनमथ पंथी होय अपनो मन समझावैं।
कहा बाद मैं स्वाद जो हम काहूँ सों बादैं।
जे सज्जन कुलतन्त सं सो मन कौ साधैं।
मोलाराम विचार कही सुनो पंच प्रवीन तुम।
भये भक्त जग माहिं जे सब दासन के दास हम।।

जितने योग के साधन हैं, सबका उद्देश्य मन को समझा-बुझा कर एक ठिकाने पर लाना है। जप, तप, षटचक्र-वेध नादानुसंधान, ज्योति दर्शन सबका मनमथ पंथ में मोलाराम के अनुसार

उचित स्थान है। यहाँ पर इतना स्थान नहीं है कि मोलाराम के इस संबंध के पूरे उद्धरण दें। परन्तु इतना तो स्पष्ट हो गया है कि मोलाराम का यह मनमथ पंथ मनस्तत्व और दर्शन के उच्च सिद्वांतों पर टिका हुआ एक शुद्व साधना मार्ग है। इसमें प्राचीन परम्परा से आती हुई उन बातों का मोलाराम ने सिद्वांत रूप से संवत् 1850 के लगभग उल्लेख कियाथा जिनको मनस्तत्व के क्षेत्र में बड़े-बड़े विद्वान् समझ रहे है कि हम ही पहले पहल आविष्कार कर रहे हैं। उन्हीं बातों के कारणमोलाराम के अनुसार यह पंथ अमृत का सार है। जो उसे जानते हैं उन्हें ब्रह्मनन्द लाभ होता है।

मनमथ को पथ ऐसो, इमृत को सार जैसो।
जानत हैं सोई संत ब्रह्म को बिलासा है।।

इसी प्रकार स्वामी शशिधर का भी गढ़वाली संत साहित्यकारों में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। महात्मा हरिमुनि शर्मा इनका बड़ा आदर करते थे। सं.1882 में ये ब्रह्मलीन हुए। इनके रचे हुए 1- दोहों की पुस्तक (दोहावली), 2- ज्ञानदीप, 3-सच्चिदानंद लहरी, और 4- योग-प्रेमावली का विवरण नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट (1912-1994) में मिलता है।

ये बड़ी पहुँच के ज्ञानी थे। जीवन-मुक्त होकर इसी शरीर से वे उस ब्रह्म पर को प्राप्त हो गये थे, जहाँ ब्रह्म की सृष्टि और विष्णु के अवतारों की पहुँच नहीं। रूपक की भाषा में उन्होंने ऐसे शहर में व्यापार करने की बात कही है:

ब्रह्म न रचे जहाँ विष्णु को नहि अवतार।
ऐसो सहर में सदा करै सब बसि बजार।।
एहि जाने सो ताको पंडित, करै मुतबाल बसाइ।
जाने बिना मिले नहीं, मूढ़ करि होत थकाइ।।

सब को वे उस स्थान तक पहुँचने का आदेश देते हैं। ब्रह्मानुभव के आनंद का उन्होंने बड़ा अच्छा वर्णन किया है:

ध्यान भजन तहाँ नहिं पूजा, आपे आप अतीत आवरण दूजा।।
बंधन-मोक्ष तहाँ पूरण आनंद, आपे आप सहज खेले निरबंदा।।

-सच्चिदानन्द लहरी

इस पद तक पहुँचने का उन्होंने जो मार्ग बतलायाहै उसमें भी मन की शक्तियों का भली-भाँति ध्यान रखा गया है। उन्होंने कहा है कि ब्रह्म-लीन होने के लिए ब्रह्म-बोध होना आवश्यक है और ब्रह्म-बोध तब तक नहीं हो सकता जब तक मन को बोध विषय की प्रतीति नहीं होती।

मैं क्या कहूँ कहँ यति सति सभ कोई,
सभ सभी गावै जो बुझै सो सभ होई।
प्रतित सें बोध होवै बोध से लय लागे मन,
मन के गति मुनि जाने जाके मिलि गये तन। - ज्ञानदीप

मन को बिना कष्ट पहुँचाये सुख से अंतर्मुख करने के लिए उन्होंनेमन के सामने कृष्ण का परम प्रेमालुप्त स्वरूप रखा है:

नमस्ते नन्द कुमार नमस्ते गोपिका बर ।
बोधात्मा साधनी गावै दीन दास शशिधर।।

भगवत्भजन और प्रपत्ति की भी उन्होंने महत्ता गायी है।

काया कर निकर मुख राम भजि
भक्ति मन आत्मा जागला।
येति निज नाम खेवा खियायि
भवाब्धि की बड़ पार लागला।। -योग-प्रमावली

यहां पर साधना के अतिरिक्त 'जागला'और 'लागला'आदि में उनकी भाषा का पहाड़ीपन ध्यान देने योग्य है।

गढ़वाल में संत-साहित्य का मिलना कोई आश्चर्य की बात नहीं। तितिक्षा और वैराग्य का पाठ पढ़ने युग-युगान्तर से साधक लोग इस तपोभूमि में आते रहे हैं। ब्रह्म विद्या का तो इसे घर होना चाहिए। मैंने जो कुछ यहां लिखा है वह तो लेशमात्र है जो मुझे आसानी से प्राप्त हेा गया। गढ़वाल ही नहीं समस्त पर्वतीय देशों में अध्यात्म विद्या के ही नहीं किसी प्रकार के साहित्य का भी अभी तक अच्छी तरह से अन्वेषण नहीं हुआ है। उन्मेषशील युवक समाज से आशा की जातीहै कि वह उत्साहपूर्वक इस काम को अपनेहाथ में लेगा। हमारे वयोवृद्व उन्हें साहित्य के कल्याण-मार्ग पर सत्प्रेरणा दें और श्रीमंत उनकी कठिन साधना से प्राप्त सामग्री को प्रकाश में लाने के साधन सुलभ करें जिससे एक परिश्रम का साफल्य उत्तरोत्तर और परिश्रमों तथा प्रयत्नों की प्रेरणा करता रहे।("डा. पीताम्बर दत्त बडथ्वाल के श्रेष्ठ निबंध " पुस्तक से साभार)

12.5 निर्गुण संत मत और डा. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल

डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल हिंदी शोध और आलोचना के अग्रदूत रहे है। एक समय जब उच्च कक्षाओं में हिंदी का अध्ययन और अध्यापन नहीं होता था और प्राचीन हिंदी ग्रंथों की पर्याप्त खोज नहीं हुई थी, तब डा. बड़थ्वाल ने पं. रामचंद्र शुक्ल और श्याम सुन्दरदास के साथ हिंदी शोध ओर आलोचना की गहरी नींव डाली। पं. रामचंद्र शुक्ल और बाबू श्याम सुन्दर दास आलोचना के क्षेत्र में व्यस्त रहे जब कि डा. बड़थ्वाल ने शोध का कार्य अपनाया। उन्होंने अपने शोध के लिए संत साहित्य को चुना जो तब अंधकार में पड़ा था और जो साहित्य रूप में विशेष चर्चा का विषय भी न था। उन्होंने पहली बार मूल स्रोत तक पहुँचने की कोशिश की और नई मान्यताएं स्थापित की। कबीर आदि संतों और गोरख, रामानंद आदि पर उन्होंने जो कार्य किया वह आज भी नींव के पत्थर की तरह है। डा. बड़थ्वाल ने अनेक दुष्प्राप्य हस्तलिपियों का संग्रह किया था, जिनके अध्ययन के आधार पर उन्होंने नागार्जुन, चौरंगीनाथ, कणोरिपाव, स्वामी राद्यवानन्द, सिद्धान्त पंचमात्रा निरंजनी धारा, हिंदी कविता में योग प्रभाव, कबीर का जीवन वृत,

कबीर के कुल का निर्णय आदि जटिल विषयों पर लेख लिखे। डा. बड़थ्वाल के सबसे महत्वपूर्ण लेख वे हैं जो हिंदी साहित्य के इतिहास की पृष्ठभूमि स्पष्ट करते हैं तथा श्रृंखला को जोड़ने में सहायक होते हैं। डा. बड़थ्वाल ने अनेक ग्रंथ लिखे हैं जिनमें गोरखवानी युग प्रवर्तक रामानंद, सूरदास, रामचंद्रिका, सूरदास, योग प्रवाह, मकरंद आदि उल्लेखनीय हैं। किंतु उनका सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ 'हिंदी काव्य में निर्गुण धारा' है जो डी.लिट्. का पहला-पहला शोध प्रबंध माना जाता है, प्रस्तुत ग्रंथ शोध और आलोचना का एक मानक प्रस्तुत करता है। संतमत पर उनकी खोजों ने आगे के शोधकर्त्ताओं का मार्ग प्रशस्त किया है हमें इस आधारभूत ग्रंथ को प्रस्तुत करते हुए अपार हर्ष है।

" हिंदी-काव्य के इतिहास का पूर्व-रूप हमें पहले-पहल उन काव्य-संग्रहों में दीख पड़ता है जिन्हें समय-समय पर, कुछ व्यक्तियों ने, अपनी रूचि के अनुसार प्रस्तुत किया था और जिनमें, कवियों से अधिक उनकी कृतियों पर ही ध्यान दिया गया था। इसके अनन्तर कविताओं के साथ-साथ उनके रचयिताओं के संक्षिप्त परिचय भी दिये जाने लगे और उक्त प्रकार से संगृहीत रचनायें, क्रमशः केवल उदाहरणों का रूप ग्रहण करने लगी। ऐसे कवियों का नामोल्लेख, उस समय अधिकतर वर्णक्रमानुसार किया जाता था तथा उनके समय व स्थानादि का निर्देश कर दिया जाता था। उनकी कविताओं में उपलब्ध साम्य व उनकी वर्गीकरण की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। इस दूसरे प्रकार के विवरणों का देना, उस समय से आरम्भ हुआ, जब कुछ प्रतिनिधि कवियों के अनुसार काल-विभाजन की भी प्रथा चल निकली और प्रत्येक वर्ग की चर्चा उसके काल क्रमानुसार की जाने लगी। ऐसा करते समय उन कवियों की विशेषताएं बतलायी जाने लगीं, उनकी पारस्परिक तुलना की जाने लगी और कभी-कभी उनकी रचनाओं का आलोचनात्मक परिचय भी दे दिया जाने लगा। इस प्रकार उक्त कोरे काव्य-संग्रहों का रूप क्रमशः काव्य के इतिहास में परिणत होने लगा और कवियों के साथ-साथ गद्यलेखकों की भी चर्चा आ जाने के कारण इस प्रकार की रचनाएं पूरे हिंदी साहित्य का इतिहास बनकर प्रसिद्ध हो चली। परन्तु नामानुसार किया गया उक्त काल-विभाजन भी आगे चलकर उतना उपयुक्त नहीं समझा गया। कवियों एवं लेखकों की विभिन्न रचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन करते समय अब उनके रचना-काल की परिस्थितियों पर भी कुछ अधिक विचार किया जाने लगा और तात्कालिक समाज के भीतर उनकी भावधारा तथा रचनाशैली की विशेषताओं के कारणों की भी खोज की जाने लगी। तदनुसार एक समान रचनाओं के किसी काल विशेष में ही उपलब्ध होने के कारण क्रमशः उनके रचनाकाल की प्रमुख विचारधाराओं का भी पता लगाना आवश्यक हो गया है और इस प्रकार उक्त काल-विभाजन के आधार में आमूल परिवर्तन कर दिया गया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सर्वप्रथम अपने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' की रचना बहुत कुछ इसी दृष्टिकोण के अनुसार सं. 1986 में की थी और तब से वैसे अन्य इतिहासकार भी अधिकतर इसी नियम का पालन करते आये हैं। वे प्रमुख प्रवृत्तियों का विश्लेषण उनकी विभिन्न धाराओं के अंतर्गत भिन्न-भिन्न कवियों का वर्गीकरण करते हैं और उनका वर्णन करते समय कृतियों की समीक्षा पर भी विशेष ध्यान देते आये हैं। फलतः हिंदी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल के

अंतर्गत 'निर्गुणधारा' एवं 'सगुणधारा' नाम की दो भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियों की कल्पना की गयी है और 'निर्गुणधारा' को भी 'ज्ञानाश्रयी' तथा 'प्रेमाश्रयी' नामक दो शाखाओं को विभाजित कर, कबीर, नानक आदि कवियों का परिचय 'ज्ञानाश्रयी शाखा' के अंतर्गत किया जाने लगा है।
कबीर, नानक, रैदास, दादू जैसे संतों के नामों से लोग बहुत दिनों से परिचित थे और उनकी विविध बानियों का प्रचार भी अनेक वर्षों से बढ़ता ही चला जा रहा था। स्वयं उन संतों ने अपने पूर्ववर्ती संतों के नाम बड़ी श्रद्धा के साथ लिये थे और बहुधा उन्हें सफल साधकों व भक्तों की श्रेणी में गिनते हुए उनका स्मरण किया था। इसी प्रकार भक्तमालों के रचयिताओं ने भी अपने पूर्वकालीन संतों के चमत्कारपूर्ण जीवन की झांकियां दिखलाई थी और कभी-कभी उनकी विशेषताओं की ओर लक्ष्य करते हुए उनके महत्व का मूल्यांकन करने की भी चेष्टा की थी। परन्तु, इस प्रकार के वर्णन अधिकतर पौराणिक पद्धति का ही अनुसरण करते आये और इसी कारण इनमें उनके सर्वांगपूर्ण परिचय के उदाहरण नहीं पाये जाते। इसी प्रकार हम उन आलोचनात्मक परिचयों को भी एकॉगी ही कह सकते हैं जो यूरोप तथा भारत के कतिपय विद्वानों-द्वारा विविध धर्मों के इतिहासों में दिये गये मिलते हैं और जिनमें इन संतों की सांप्रदायिक प्रवृत्ति और इनकी सुधार-पद्धति की ओर ही विशेष ध्यान दिया गया है। संतों की कृतियों का अध्ययन उनमें केवल धार्मिक दृष्टिकोध से ही करने का प्रयत्न किया गया है और इनके नामों के आधार पर निकले हुए पंथों का इतिहास भी बतलाया गया है। इस कारण ऐसी पुस्तकों में विशेष कर प्रचलित भेदों और उपासना-पद्धतियों का विस्तृत वर्णन ही पाया जाता है।

उपर्युक्त साहित्यिक अथवा सांप्रदायिक परिचयों में इन संतों का वर्णन सामूहिक रूप में किया गया नहीं दीख पड़ता। पहले प्रकार के ग्रंथों में इन्हें अन्य कवियों की ही भांति पृथक-पृथक परिचित करा कर इनकी रचनाओं के कुछ विवरण दे दिये गये हैं और इसी प्रकार, उक्त धार्मिक इतिहासों में भी इन्हें निरा धार्मिक प्रचारक मानकर इनका वर्णन अलग-अलग कर दिया गय है। संतों को एक वर्ग-विशेष में गिनते हुए उनके सिद्धान्तों तथा साधनाओं का सामूहिक परिचय देने अथवा उनकी कथनशैली व प्रचार पद्धति पर भी पूर्ण प्रकाश डालने का काम उक्त दोनों में से किसी प्रकार की भी पुस्तकों में किया गया नहीं दीख पड़ता। वास्तव में इन संतों के विषय में सर्व साधारण की धारणा पहले यही रहती आई थी कि ये लोग केवल साधारण श्रेणी के भक्तमात्र थे, इन्होंने अपने-अपने समय के धार्मिक आन्दलनों में भाग लेकर अपने-अपने नामों पर नवीन पंथ चलाने की चेष्टा की थी और अपनी विचित्र प्रकार के रहन-सहन एवं अटपटी बानियों के कारण इन्होंने अपने लिए बहुत से अनुयायी भी बना लिए थे। इनकी अन्य भक्तों से भिन्नता, इनके सिद्धान्तों की एकरूपता, इनकी साधनाओं की विलक्षणता अथवा इनकी मुख्य देन के प्रति किसी ने विचार नहीं किया था।

संतों की इस परंपरा को एक सूत्र में ग्रंथित करने तथा उनके मत का व्यापक रूप निश्चित करने में कई कठिनाइयाँ भी पड़ती थी। केवल दो-एक को छोड़कर इनमें से अन्य संतों का कोई साधारण परिचय भी उपलब्ध नहीं था। इनकी बानियों या तो इनके अनुयायियों के पास हस्तलिखित रूप से सुरक्षित पायी जाती थीं अथवा विकृत होकर यत्र-तत्र बिखरी पड़ी हुई मिल

जाया करती थी। इसके सिवाय इन संतों के नामों पर चलने वाली विविध पंथों के रूप और प्रचार-पद्धति में भी महान् अन्तर आ गया था। जिस उद्देश्य को लेकर उसका सर्वप्रथम संघटन हुआ उसे, काल पाकर, वे भूल से गये थे और अन्य प्रकार के प्रचलित संप्रदायों के अनुकरण में अधिक लग जाने के कारण, वे क्रमशः साधारण हिंदू समाज में ही विलीन होते जा रहे थे। इन पंथों के अनुयायियों ने अपने प्रवर्त्तकों को दैवी शक्तियों से सम्पन्न मानकर उनकी पौराणिक चरितावली भी बना डाली थी और उनके मौलिक सिद्धान्तों के सच्चे अभिप्राय को समझने की प्रायः कुछ भी चेष्टा न करते हुए उन पर अपने काल्पनिक विचारों को आरोपित कर दिया था। इस कारण वास्तविक रूप जान लेना अथवा उनके महत्त्व का समुचित मूल्यांकन करना कोई सरल काम नहीं था।

उक्त बाधाओं के बने रहने के कारण इन संतों के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों की भी धारणा भ्रांतिपूर्ण हो गयी थी। इनकी बानियों को ऐसे लोग अत्यन्त साधारण नहीं दीख पड़ती थी। संत लोग इनके समक्ष कतिपय निम्नश्रैणी की जातियों में उत्पन्न अशिक्षित व्यक्ति थे जिन्हें प्राचीन धर्मग्रंथों अथवा शास्त्रादि का कुछ भी ज्ञान नहीं था और जिन्हें इसी कारण, सच्चे मार्ग की पहचान तक नहीं हो सकती थी। ये उनके लिए सर्वसाधारण में घूम-फिर कर ऊटपटांग बातों का प्रचार करने वाले निरे साधू व फकीर-श्रेणी के लोग थे और इनके उपदेशों का कोई सुदृढ़ आधार व उद्देश्य भी नहीं था। संतों की बानियों में बिखरे हुए विचारों की संगति वे, किसी पूर्वगत विचारधारा से, लगा पाने में प्रायः असमर्थ रहा करते थे, और इस कारण, उन्हें इनमें कोई व्यवस्था नहीं दीख पड़ती थी और इनकी सार बातें उन्हें किन्हीं अस्पष्ट व क्रमहीन का संग्रहमात्र प्रतीत होती थी। अतएव संतपरम्परा, संतसाहित्य व संतमत की ओर उनका ध्यान पहले एक प्रकार की उपेक्षा का ही रहता चला आया था। इस दिशा में उनका ध्यान सर्वप्रथम उस समय से आकृष्ट होना आरम्भ हुआ जब संतों की बानियों का यत्र-तत्र संग्रह किया जाने लगा और इस प्रकार के ग्रंथ कभी-कभी प्रकाशित भी होने लगे।

विक्रम की बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से ही वास्तव में संतों और उनकी कृतियों का क्रमशः प्रकाश में आना आरम्भ हुआ। उसके पहले डा.विल्सन के ''ए स्केच ऑफ दि हिंदू सेक्ट्स''सं.1988में उनके विषय में थोड़ा-बहुत लिखा जा चुका था, गार्सा द तासी ने अपने 'इस्त्वार द ला लितरेत्योर ऐंदुई ए इंदुस्तानी (सं.1896) में कुछ संतों व उनकी रचनाओं की चर्चा की थी और डॉ.ग्रियर्सन ने भी अपने ''मार्डन वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान सं. 1946 में उनका एक आलोचनात्मक परिचय दिया था जो अधिकतर 'शिवसिंह सरोज' पर आश्रित था। इन लेखकों ने अपने विचार बहुत कुछ अधूरी सामग्रियों के ही आधार पर निश्चित किए थे। उस समय तक न तो स्व.पं.चंद्रिका प्रसाद त्रिपाठी के ''अगबंधू'' व ''स्वामी दादूदयाल की वाणी'', (सं. 1964) स्व.बा.बालेश्वरप्रसाद की 'संतबानी पुस्तक माला' (सं. 1965) व स्व.डा.श्यामसुन्दरदास की 'कबीर ग्रंथावली' जैसे मूल साहित्य को प्रकाशन हो पाया था और न डाक्टर मेकॉलिफ के 'दि सिख रिलीजन सं. 1965 डा.रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'वन हण्ड्रेड पोयम्स आफ कबीर'सं. 1980 डॉ.तारादत्त गैरोला के साम आफ दादू सं. 1986 अथवा प्रो.तेजसिंह के '

दि जपजी जैसे सुन्दर अनुवाद ही निकल पाये थे जिनका अध्ययन कर कोई निर्णय किया जाता। रे.वेस्टकाट ; सं. 1964 डॉ.फर्कुहर ;सं.1977, डॉ.भंडारकर ;सं. 1985, डॉ.कीथ ;सं. 1988 जैसे विद्वानों की धार्मिक इतिहास सम्बन्धी रचनाएँ रे.प्रेमचन्द ;सं. 1968 व रे.अहमदशाह ;सं. 1972 द्वारा किए गए बीजक के अनुवाद तथा तथा मिश्रबंधुओं का विनोद ;सं0 1969, पं.रामचन्द्र शुक्ल ;सं. 1986 व डॉ.सूर्यकांत शास्त्री ;सं. 1989 साहित्यिक इतिहास भी इसी काल में निर्मित व प्रकाशित हुए और प्राय: इसी समय से इस विषय पर अच्छे-अच्छे निबंध भी लिखे जाने लगे।" (" हिन्दी काव्य की निर्गुण धारा " पुस्तक से साभार)

12.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- निर्गुण काव्य के मर्मज्ञ विद्वान डा. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल के जीवन एवं उनके साहित्य से परिचित हो चुके होंगे।
- हिंदी साहित्येतिहास में निर्गुण काव्य एवं सम्प्रदाय के प्रसार एवं महत्त्व को जान चुके होंगे।
- उत्तराखण्ड में व्याप्त निर्गुण सम्प्रदाय एवं संतमत-साहित्य के विषय में परिचयात्मक ज्ञान प्राप्त कर लिया होगा।

12.7 शब्दावली

दुष्प्राप्य	-	जो कठिनाई से प्राप्त हो
समकक्ष	-	बराबर
अवैतनिक	-	बिना वेतन के
प्रवाद	-	झूठी बात
मनस्तत्ववेत्ता	-	मनोवैज्ञानिक डाक्टर
अन्वेषण	-	खोज

12.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. गोविन्द चातक, डा. पीताम्बर दत्तर बड़थ्वाल के श्रेष्ठ निबंध, तक्षशिला नई दिल्ली
2. डा. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, हिंदी काव्य की निर्गुण धारा, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली
3. रामविलास शर्मा, भारतीय संस्कृति और हिन्दी -प्रदेश-2 ,किताबघर, नई दिल्ली
4. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, काशी नागरी, प्रचारिणी सभा, बनारस

12.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. डा. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल के जीवन एवं साहित्य पर विस्तार से एक निबंध लिखिए
2. उत्तराखण्ड में संत मत एवं निर्गुण साहित्य पर एक विस्तृत टिप्पणी लिखिए

इकाई 13 संस्मरण - पथ के साथी : परिचय,पाठ एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 संस्मरण साहित्य
13.3.1 संस्मरण साहित्य का इतिहास
13.3.2 संस्मरण साहित्य की विशेषता
13.4 संस्मरण और पथ के साथी
13.4.1 लेखिका परिचय
13.4.2 कृति परिचय
13.5 मूल पाठ
13.6 पाठ विश्लेषण
13.6.1 अंतर्वस्तु के धरातल पर
13.6.2 शिल्प के धरातल पर
13.7 सारांश
13.8 शब्दावली
13.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
13.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री
13.12 निबंधात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

यह प्रश्न पत्र विभिन्न गद्य विधाओं के परिचय, पाठ एवं आलोचना पर केंद्रित है। पूर्व में आपने अन्य गद्य विधाओं का अध्ययन किया। आपने इस क्रम में अध्ययन में जाना कि अन्य गद्य विधाओं का सम्बन्ध आधुनिक कालीन चेतना से है। आधुनिक युगीन चेतना को अभिव्यक्त करने के क्रम में जब पुरानी साहित्यिक विधाएँ अपर्याप्त सिद्ध होने लगीं तो नई साहित्यिक विधाओं का, विशेषकर गद्य विधाओं का जन्म हुआ। मानव जीवन दिन-प्रतिदिन जटिल होता जा रहा है। जटिल परिस्थितियों की अभिव्यक्ति के लिए साहित्यिक विधाओं के स्वरूप में भी परिवर्तन आया। 'संस्मरण' विधा की उत्पत्ति इसी क्रम में है।

आधुनिक अन्य गद्य विधाओं में संस्मरण का महत्वपूर्ण स्थान है। संस्मरण का संबंध स्मृति से है। संस्मरण में लेखक द्वारा अतीत की वह स्मृतियाँ रचना का अंग बनती हैं, जिसमें वह ऐसे व्यक्तित्व को याद करता है जो उसके जीवन के अभिन्न अंग रहे है और उसे प्रभावित किया हो। एक दृष्टि से देखा जाये तो संस्मरण विशिष्ट व्यक्तियों पर लेखक द्वारा स्मृतिचित्र है। जैसा कि संकेत किया गया कि संस्मरण विधा आधुनिक विधा है। विशेषकर इस विधा का संबंध 20वीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों से है। राष्ट्रीय आन्दोलन की गतिशील चेतना ने इस विधा के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। संस्मरण विधा के उन्नयन में महादेवी वर्मा का महत्वपूर्ण योगदान है। आलोच्य स्ंस्मरण 'पथ के साथी' पुस्तक से संबंधित है, जिसमें उन्होंने सुभद्राकुमारी चौहान के व्यक्तित्व को बड़ी ही आत्मीयतापूर्ण ढंग से स्मरण किया है।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- संस्मरण विधा की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
- संस्मरण विधा के इतिहास का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- संस्मरण विधा में महादेवी वर्मा के योगदान को समझ सकेंगे।
- 'पथ के साथी' रचना की अंतर्वस्तु से परिचित हो सकेंगे।
- संस्मरण विधा की प्रमुख रचनाओं का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- संस्मरण के माध्यम से सामाजिक परिस्थितियों को समझ सकेंगे।

13.3 संस्मरण साहित्य

13.3.1 संस्मरण साहित्य का इतिहास

आपने अध्ययन किया कि संस्मरण विधा आधुनिक काल की देन है। संस्मरण विधा के स्तर पर आधुनिक काल की देन हैं, लेकिन हमें यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि संस्मरण में स्मृति आधार बिन्दु है और प्राचीन काल से हर देश व संस्कृति में पूज्य पुरूषों एवं महापुरूषों के कृत्यों को स्मृरित किया जा रहा है। यहाँ प्रश्न उठता है कि प्राचीन स्मृति ग्रंथ एवं संस्मरण में मूलभूत अंतर क्या है ? प्राचीन स्मृति ग्रंथों में श्रद्धा, चमत्कार एवं अतिप्राकृत घटनाओं की बहुतायत रहती थी, किन्तु संस्मरण विधा में स्मृति-नायक को आत्मीय तटस्थता के साथ संस्मरणकार हमारे सामने प्रस्तुत करता है। एक के लिए श्रद्धा-स्तुति अनिवार्य है तो दूसरे के लिए तटस्थता-संपूर्णता। इसीलिए संस्मरण विधा को आधुनिक युग में आकर स्वीकृति मिली।

स्मरण विधा के इतिहास के संदर्भ में हम देखते हैं कि 20वीं शताब्दी के तीसरे दशक से इसकी शुरूआत होती है। सन् 1928 के लगभग प्रकाशित पद्मसिंह शर्मा के 'पद्मपराग' से संस्मरण विधा का प्रारम्भ स्वीकार किया जाता है। किन्तु व्यापक रूप से इसे स्वीकृति बाद के दशक में मिली। इस संदर्भ में महादेवी वर्मा विशेष उल्लेखनीय हैं। रेखाचित्र – संस्मरण विधा के संधि बिन्दु पर उनकी चार रचनाएँ प्रकाशित होती हैं। अतीत के चलचित्र (1941 ई.), स्मृति की रेखाएँ (1943 ई.), पथ के साथी (1956 ई.) और 'मेरा परिवार' (1972 ई.)। इन रचनाओं में संस्मरण की दृष्टि से स्मृति की रेखाएँ तथा पथ के साथी विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। इसी क्रम में बनारसीदास चतुर्वेदी की हमारे आराध्य, संस्मरण (1952 ई.), शिवपूजन सहाय रचित वे दिन वे लोग (1946 ई.), माखनलाल चतुर्वेदी कृत समय के पाँव (1962 ई.), जगदीशचन्द्र माथुर कृत दस तस्वीरें (1963 ई.), कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर रचित 'भूले हुए चेहरे' आदि रचनाएँ उल्लेख हैं। संस्मरण विधा की अन्य महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं –

- बच्चन निकट से (1968 ई.) अजित कुमार और ओंकार नाथ श्रीवास्तव
- गाँधी संस्मरण और विचार (1968 ई.) – काका कालेलकर
- संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ (1969 ई.) –रामधारी सिंह दिनकर
- व्यक्तित्व की झांकियाँ (1970 ई.) - लक्ष्मीनारायण सुधांशु
- अंतिम अध्याय (1972 ई.) – पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी
- स्मृति की त्रिवेणिका (1974 ई.) – लक्ष्मी शंकर व्यास
- चंद संतरें और (1975 ई.) – अनीता राकेश

- मेरा हमदम मेरा दोस्त (1975 ई.) – कमलेश्वर
- रेखाएँ और संस्मरण (1975 ई.) – क्षेमचन्द्र सुमन
- मैंने स्मृति के दीप जलाये (1976 ई.) – रामनाथ सुमन
- स्मरण को पाथेय बनने दो (1978 ई.) – विष्णुकान्त शास्त्री
- अतीत के गर्त से (1979 ई.) – भगवतीचरण वर्मा
- श्रद्धांजलि संस्मरण (1979 ई.) – मैथिलीशरण गुप्त
- पुन: (1979 ई.) – सुलोचना रांगेय राघव
- यादों की तीर्थयात्रा (1981 ई.) – विष्णु प्रभाकर
- औरों के बहाने (1981 ई.) – राजेन्द्र यादव
- जिनके साथ जिया (1981 ई.) – अमृतलाल नागर
- सृजन का सुख-दुख (1981 ई.) – प्रतिभा अग्रवाल
- युगपुरूष (1983 ई.) – रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'
- दीवान खाना (1984 ई.) – पद्मा सचदेव
- स्मृति लेखा (1986 ई.) – अज्ञेय
- हजारी प्रसाद द्विवेदी कुछ संस्मरण (1988 ई.) – कमल किशोर गोयनका
- भारतभूषण अग्रवाल : कुछ यादें कुछ चर्चाएँ (1989 ई.) – बिन्दु अग्रवाल
- हम हशमत (1977 ई.) – कृष्ण सोबती
- आदमी से आदमी तक (1982 ई.) – भीमसेन त्यागी।

13.3.2 संस्मरण साहित्य की विशेषता

संस्मरण साहित्य पर टिप्पणी करते हुए डा. रामचन्द्र तिवारी ने लिखा है, "संस्मरण किसी स्मर्यमाण की स्मृति का शब्दांकन है। स्मर्यमाण के जीवन के वे पहलू, वे संदर्भ और वे चारित्रिक वैशिष्ट्य जो स्मरणकर्ता को स्मृत रह जाते हैं, उन्हें वह शब्दांकित करता है। स्मरण वही रह जाता है जो महत्, विशिष्ट, विचित्र और प्रिय हो। स्मर्यमाण को अंकित करते हुए लेखक स्वयं भी अंकित होता चलता है। संस्मरण में विषय और विषय दोनों ही रूपायित होते हैं। इसलिए इसमें स्मरणकर्ता पूर्णत: तटस्थ नहीं रह पाता। वह अपने 'स्व' का पुन: सर्जन करता है।" (हिंदी का गद्य-साहित्य, पृष्ठ 297) कहने का अर्थ यह हैं कि लेखक किसी व्यक्तिव की स्मृति को शब्दों के माध्यम से पुन: जीने की कोशिश करता है तो संस्मरण विधा की उत्पत्ति होती है। विधा के स्तर पर रेखाचित्र, जीवनी, आत्मकथा से संस्मरण का निकट का संबंध है। लेकिन संस्मरण विधा की अपनी निजी कुछ विशेषताएँ हैं जो इसे अन्य विधाओं से अलग करती हैं। जीवनी में भी किसी का जीवन केन्द्र में होता है। जीवनी और संस्मरण में भी, लेकिन दोनों में अंतर है। जीवनी जहाँ चरित नायक के जीवन के संपूर्ण पक्ष पर आधारित होती है वहीं संस्मरण

सीमित जीवन पर जीवनी की हर घटना में लेखक की सहभागिता अनिवार्य नहीं है लेकिन संस्मरण की प्रत्येक घटना लेखक द्वारा अनुभूत व संवेदित होनी अनिवार्य है। इस दृष्टि से संस्मरण में अंतरंगता की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। संस्मरणकार किसी व्यकित की जीवनी तथ्य-ब्यौरे के आधार पर भी लिख सकता है लेकिन संस्मरण तब तक नहीं लिखे जा सकते जब तक कि लेखक का स्मर्यमाण व्यक्ति से अंतरंग संबंध न हो। यहाँ तक कि रेखाचित्र के लिए भी अंतरंगता उतनी अनिवार्य नहीं है जितनी संस्मरण लेखक के लिए। किसी पागल को सड़क पर देखकर रेखाचित्र तो लिखा जा सकता है, लेकिन संस्मरण नहीं। लेखक किसी व्यक्ति से जब तक हार्दिक रूप से किसी व्यक्तित्व से नहीं जुड़ता तब तक वह उस व्यक्ति के आन्तरिक व्यक्तित्व का न तो चित्रण कर सकता है और न ही मूल्यांकन । संस्मरण उसी व्यक्ति पर लिखा जा सकता है जिस व्यक्ति से लेखक का घन्टिष्ठ संबंध है। संस्मरण का नायक इसके केन्द्र में होता है। लेकिन जीवनी विधा की तरह केवल नायक ही इसकी रचना के केन्द्र में नहीं होता बल्कि इसमें लेखक की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है। संस्मरण लेखक और नायक के संबंध, लगाव व हार्दिकता से जुड़ी रचना है। एक तरह से यह रचना लेखक की दृष्टि में स्मर्यमाण व्यक्ति का चरित्रांकन है, इसलिए इसमें विषय और विषयी दोनों का महत्व होता है। संस्मरण के लिए अतीत अनिवार्य है। इसलिए इसमें 'स्मृति' का बहुत महत्व है। लेखक अतीत की घटनाओं को अपनी स्मृति के माध्यम से पुन: जीवंत करता, इस क्रम में काल एवं स्मृति का कुशल संयोजन संस्मरण की विशेषता है। संस्मरण में चूँकि वही घटनाएँ स्थान पाती हैं इसलिए इसमें सघनता का गुण पाया जाता है। अतीत की स्मृति में वही चीजें स्थायी हो पाती हैं, जो अति-महत्वपूर्ण होती हैं। अत: इस दृष्टि से संस्मरण अतीत की स्मृति का सृजनात्मक प्रयास है। अतीत की स्मृति महत्वपूर्ण होकर भी लेखक का ध्येय नहीं है बल्कि महत्वपूर्ण है वह रचनात्मक प्रयास जो पाठक को दिशा दे सके या प्रभावित कर सके। संस्मरण के संदर्भ में यह प्रश्न हमेशा उठाया जाता है कि संस्मरण क्यों लिखा जाता है या संस्मरण लेखन के उद्देश्य क्या हैं ? संस्मरण विधा अन्य सृजनात्मक विधाओं की ही तरह मानवीय जरूरतों की पूर्ति का एक 'स्मृति-प्रयास' है। संस्मरण तब ज्यादा लिखे जाते हैं जब सृजनात्मक व्यक्तित्व का अधिकता किसी समाज में ज्यादा हो। राष्ट्रीय आन्दोलन के समय में या राष्ट्रीय आन्दोलन की ऊर्जा से निर्मित व्यक्तित्व ही हिंदी संस्मरण विधा में रचना का केन्द्र बने हैं। इससे स्पष्ट है कि संस्मरण के केन्द्र में व्यक्तित्व निर्माण का प्रयास आधारभूत रूप में है। लेकिन जीवनी की तरह यह सामाजिक प्रेरणा के वशीभूत होकर ही नहीं रचित होता। इस विधा में संस्मरणनायक का संस्मरणकार के ऊपर पड़े प्रभाव की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। एक तरह से यह बर्हिमुखी और आत्ममुखी दोनों गुणों से युक्त विधा है।

अभ्यास प्रश्न

निर्देश : (1) रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

1. महादेवी वर्मा का जन्म.....वर्ष में हुआ।
2. महादेवी वर्मा को.....कृति पर ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला।
3. महादेवी वर्मा मुख्यत: .....हैं।
4. पथ के साथी का प्रकाशन वर्ष.....है।
5. संस्मरण विधा के प्रारंभिक लेखक .....हैं।

(2) सत्य/असत्य का चुनाव कीजिए।

1. महादेवी वर्मा के संस्मरण और रेखाचित्र एक दूसरे के बहुत निकट हैं।
2. मेरा हमदम मेरा दोस्त की रचना है।
3. स्मृति लेखा अज्ञेय की रचना है।
4. संस्मरण विधा वर्तमान पर आधारित विधा है।
5. संस्मरण के लिए लेखक का नायक से साहर्चय अनिवार्य है।

(3) सुमेलित कीजिए

रचना	**रचनाकार**
स्मृति की रेखाएँ	विष्णुकांत शास्त्री
पद्मपराग	बनारसीदास चतुर्वेदी
संस्मरण	महादेवी वर्मा
वे दिन वे लोग	पद्मसिंह शर्मा
औरों के बहाने	शिवपूजन सहाय
स्मरण को पाथेय बनने दो	राजेन्द्र यादव

13.4 संस्मरण और पथ के साथी

13.4.1 लेखिका परिचय

छायावाद चतुष्टय के नाम से प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी वर्मा प्रसिद्ध हैं। महादेवी वर्मा काव्यमय व्यक्तित्व से सम्पन्न थी। वे जीवन की कृत्रिमताओं से मुक्त उन्मुक्त हंसनेवाली एवं शुभ व उज्ज्वल नारी थी।

26 मार्च 1907 को होली के शुभ दिन पर उत्तरप्रदेश के फरूखाबाद जिले में महादेवी वर्मा का जन्म हुआ था। इनका परिवार सुसम्पन्न व सुशिक्षित था लेकिन इस परिवार में लगभग सात पीढ़ियों तक कन्याएं जन्म के साथ मार-डाली जाती थी। दो सौ सालों के बाद कन्या के रूप

में इनका जन्म हुआ था अतः इनके बाबू बांके बिहारी जी ने नाम महोदवी (घर की देवी) रख दिया। महादेवी वर्मा ने स्वयं इसका उल्लेख किया है ''जैसे ही दबे स्वर से लक्ष्मी के आगमन का समाचार दिया गया वैसे ही घर एक कोने से दूसरे कोने तक एक दरिद्र निराशा व्याप्त हो गई। ''महोदेवी वर्मा के हृदय में बचपन से ही जीवमात्र के प्रति दया थी, करूणा भावना थी। उनके रेखाचित्रों से बाल्य जीवन की झांकिया मिल जाती है। अतीत के चलचित्र के पहले तीन संस्मरणों में 'रामा', 'भाभी' तथा 'बिन्दा' का सम्बन्ध इनके बाल्यजीवन से है। महादेवी वर्मा की शादी बचपन में मात्र 9 वर्ष की अवस्था में कर दी गई थी। परन्तु इन्होंने अपनी पढ़ाई 1932 तक जारी रखी और प्रयाग विश्वविद्यालय से एम. ए. संस्कृत विषय में उत्तीर्ण किया। बाद में प्रधानाचार्य के रूप में शिक्षा क्षेत्र की सेवा में लग गईं।

होली के दिन जन्मी महादेवी का व्यक्तित्व होली की विविधता और रंगमयता से भरा था। इनके व्यक्तित्व में संवेदना, दृढ़ता व आक्रोश का अद्भुत संतुलन मिलता है। वे विदुषी, अध्यापिका, कवि, गद्यकार, चित्रकार, कलाकार व समाजसेवी के रूप में हमारे सामने आती हैं। अध्ययनशील व संवेदनशील मनोवृत्ति, सफाई व स्वच्छता प्रिय, गंभीरता व धैर्य इनमें विशिष्ट गुण थे।

महादेवी वर्मा 1952 को उत्तर प्रदेश की विधान परिषद की सदस्य मनोनीत की गई। महादेवी को कई पुरस्कार व सम्मान से नवाजा गई। महादेवी की रचनाएं आरम्भ काल से अर्थात् 1930 से 1975 तक साहित्य जगत को आकर्षित करती रहीं। भारत सरकार द्वारा इन्हें मरणोपरांत 'पद्य विभूषण' उपाधि से अलंकृत किया गया। महादेवी वर्मा हिन्दी साहित्य जगत की प्रसिद्ध कवयित्री और उल्लेखनीय गद्य लेखिका थीं। उन्हें नीरजा कृति पर 1933 में सेकसरिया पुरस्कार मिला। 1944 को हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने 'मंगलाप्रसाद' पुरस्कार और उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा 'विशिष्ट साहित्य पुरस्कार' सन् 1973 को प्रदान कर इनकी सेवाओं को सम्मानित किया गया। 1969 में विक्रम विश्वविद्यालय और 1980 को दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा डी. लिट. की उपाधि दी गई। 1982 में लखनऊ के हिन्दी संस्थान द्वारा 'भारत-भारती' पुरस्कार प्रदान किया गया। 1983 को उनके काव्य संग्रह 'यामा' और 'दीपशिखा' के लिए भारतीय ज्ञानपीठ ने अपने पुरस्कार से वर्मा जी का सम्मान किया। 11 सितम्बर 1987 को महादेवी का निधन हुआ था।

परिग्रही जीवन को अस्वीकार करके इन्होंने अपना कोई सीमित परिवार नहीं बनाया, पर इनका अपना विशाल परिवार व उनका पोषण सब के वश की बात नहीं है। गायें, हिरण,गिलहरी, बिल्लियां, खरगोश, मोर, कबूतर तो इनके चिरसंगी रहे। वृक्ष, पुष्प, लताएं इनकी ममता के आगोश में पले-बढ़े थे। परिवार के नौकर पारिवारिक सदस्य ही थे।महादेवी वर्मा जैसे प्रतिभाशाली व्यक्तित्व का परिचय सुमद्रा कुमारी चौहान, कृष्णा, हरिसिंह (जवाहरलाल नेहरू की बहन), सुमित्रानन्दन पंत, निराला, गोपीकृष्ण गोपेश, महात्मा गांधी जैसी विभूतियों से था।बचपन से ही महादेवी वर्मा जी का स्वभाव रहा कि इन्होंने अपने जीवन-विकास के लिए जो उचित और उपयुक्त समझा सो किया, हठ और भीषण विद्रोह के साथ किया। प्रारम्भ में बौद्ध भिक्षुणी बनने की इच्छा ने शायद इनको पारिवारिक जीवन व गृहस्थ से दूर रहने की प्रेरणा दी

होगी। व्यक्तित्व में करूणा का अंश और भीतर के द्वन्द्व का समन्वय करने में सफलता इसीलिए प्राप्त हुई। महादेवी वर्मा अत्यन्त सरल व विनम्र, गंभीर व महान हृदया थी।

जीवन और साहित्य के पट में इतने विभिन्न रंगी सूत्रों का सम्मिलन बहुत ही विरल होता है। रहस्यवादी कवि, यथार्थवादी गद्यकार, समन्वयवादी समालोचक होने के साथ ही वे अद्वितीय रेखाचित्रकार, संस्मरण लेखिका, सामाजिक एवं ललित निबंधकार, उच्चकोटि की चित्र कर्त्रा और प्रबुध समाज सेविका तथा राष्ट्रीय संस्कृति की संरक्षिका थीं। इनके रचनात्मक कार्यों के प्रतीक प्रयाग महिला विद्यापीठ और साहित्यकार संसद के अतिरिक्त अन्य अनेक संस्थायें और पाठशालाएँ हैं। विशेषता यह है कि इन सभी क्षेत्रों में इनके व्यक्तिव की अखण्डता सर्वथा अक्षुण्ण है।

कृतित्व

विद्यार्थी जीवन में ही महोदेवी वर्मा ने कविताएं लिखनी शुरू कर दी थी। प्रारम्भिक कविताएं छन्दबद्ध थीं और 'रोला', 'हरिगीतिका' छन्द में लिखी गईं। महादेवी वर्मा की काव्य कृतियां नीहार (1930), रश्मि (1932), नीरजा (1935), सांध्यगीत (1936), दीपशिखा (1942), सप्तपर्णा (अनुदित)(1966), हिमालय (1963), अग्निरेखा (1980) है। महादेवी का प्रथम काव्य संग्रह नीहार है। नीहार में जीवन संसार की नश्वरता, वेदना व करूणा में खो जाने की इच्छा है। 'रश्मि' कविता संकलन में कवयित्री ने अतृप्ति, अभाव और दुख आदि को मनुष्य के जीनव का मौलिक सत्य माना है। सांध्यगीत में उनकी कविताओं में उपासना का भाव है। विरह का अभिशाप वरदान के रूप में है और विरह व अभाव आनन्द देने वाला है। दीपशिखा महादेवी के चित्रमय काव्य का मूर्त रूप है। इन गीतों में उनके निर्भय व स्वाभिमानी भावना का परिचय मिलता है जैसे ''पंथ होने दो अपरिचित, प्राण, रहने दो अकेला"- इसी तरह ''तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देखलूं उस पार क्या है?" 'सप्तपर्णा' संकलन संस्कृति और पाली भाषा के साहित्य के कुछ चुने हुए अशों का अनुवाद है। 'अग्निरेखा में' दीपक को प्रतीक मानकर रचना की गई है।

बाल कविताएं -

बाल कविताओं के दो संग्रह छपे हैं (क) ठाकुर जी भोले हैं (ख) आज खरीदेंगे हम ज्वाला। ठाकुर जी बोले है संग्रह बच्चों के भावों को इस प्रकार व्यक्त किया है -

ठण्डा पानी से नहलाती
ठण्डा चन्दन इन्हें लगाती
इनका भोग हमें दे जाती
फिर भी कभी नहीं बोलें है
माँ के ठाकुर जी भोले हैं।

महादेवी की गद्य कृतियां :-

अतीत के चलचित्र (1941), श्रृंखला की कड़ियां (1942), स्मृति की रेखाएं (रेखा चित्र)(1943), पथ के साथी (संस्मरण)(1956), क्षणदा (निबन्ध)(1956), साहित्यकार की आस्था

और अन्य निबन्ध (1960), संकल्पिता (आलोचना)(1963), मेरा परिवार (पशु-पक्षी संस्मरण)(1971) और चिन्तक के क्षण (1986) आदि महादेवी वर्मा द्वारा रचित गद्य रचनाएं हैं।

13.4.2 कृति परिचय

महादेवी वर्मा के संस्मरण की प्रसिद्ध पुस्तक 'पथ के साथी' का प्रकाशन 1956 ईसवी में हुआ था। 'पथ के साथी' में महादेवी वर्मा ने अपने साथी साहित्यकारों की सृजन यात्रा का स्मरण किया है। पथ के साथी में महादेवी वर्मा ने सबसे पहले रवीन्द्रनाथ टैगोर को स्मरण किया है। इसी कम में बाद में उन्होंने मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, निराला, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत और सियारामशरण गुप्त को स्मरण किया है। पथ के साथी में महादेवी वर्मा ने जिस कलात्मकता, संयम एवं गतिशीलता में अपने साथी साहित्यकारों को स्मरण किया है वह अद्भुत है। डा. रामचन्द्र तिवारी ने इस रचना पर टिप्पणी करते हुए लिखा है – "महादेवी ने उन स्मृति-संदर्भों को सँजोकर जिनमें उनके अग्रज और छवियाँ अंकित की हैं वे अपनी संश्लिष्टता में अन्यतम हैं। बाहत आकार-प्रकार, उनमें लक्षित होने वाली जीवन-संघर्ष, जीवन-संघर्ष की तीव्रता के सामाजिक कारण और सामाजिक दबाव के कारण व्यक्तित्व में उभरने वाली मानसिक असंगतियाँ यह सब दबे-उभरे रूप में साकार हो गये हैं। यही नहीं महादेवी ने अपने पथ के साथियों के साहित्य में उनके व्यक्तित्व की असंगतियों का सामन्जस्य भी ढूँढ़ने की चेष्टा की है और वे प्राय: सफल रही हैं। इससे उनकी तलस्पर्शी दृष्टि और मनोवृत्ति विश्लेषिणी प्रज्ञा का परिचय मिलता है। महादेवी की चित्र-व्यन्जना का चरम विकास 'पथ के साथी' में लक्षित होता है।

13.5 मूल पाठ

हमारे शैशवकालीन अतीत और प्रत्यक्ष वर्तमान के बीच में समय-प्रवाह का पाठ ज्यों-ज्यों चौड़ा होता जाता है त्यों-त्यों हमारी स्मृति में अनजाने ही एक परिवर्तन लक्षित होने लगता है। शैशव की चित्रशाला के जिन चित्रों से हमारा रागात्मक संबंध गहरा होता है, उनकी रेखायें और रंग इतने स्पष्ट और चटकीले होते चलते हैं कि हम वार्धक्य की धुंधली आँखों से भी उन्हें प्रत्यक्ष देखते रह सकते हैं। पर जिनसे ऐसा संबंध नहीं होता वे फीके होते-होते इस प्रकार स्मृति से धुल जाते हैं कि दूसरों के स्मरण दिलाने पर भी उनका स्मरण कठिन हो जाता है।

मेरे अतीत की चित्रशाला में बहिन सुभद्रा से मेरे सख्य का चित्र, पहली कोटि में ही रखा जा सकता है, क्योंकि इतने वर्षों के उपरान्त भी उनकी सब रंग-रेखायें अपनी सजीवता में स्पष्ट हैं।

एक सातवीं कक्षा की विद्यार्थिनी, एक पाँचवी कक्षा की विद्यार्थिनी से प्रश्न करती है, क्या तुम कविता लिखती हो? दूसरी ने सिर हिला कर ऐसी अस्वीकृति दी जिसमें हाँ और नहीं तरल हो कर एक हो गये थे। प्रश्न करने वाली ने इस स्वीकृति-अस्वीकृति की संधि से खीझ कर कहा, 'तुम्हारी क्लास की लड़कियाँ तो कहती हैं कि तुम गणित की कापी तक में कविता लिखती हो! दिखाओं अपनी कापी' और उत्तर की प्रतीक्षा में समय नष्ट न कर वह कविता

लिखने की अपराधिनी को हाथ पकड़ कर खींचती हुई उसके कमरे में डेस्क के पास ले गई। नित्य व्यवहार में अपने वाली गणित की कापी को छिपाना संभव नहीं था, अतः उसके साथ अंकों के बीच में अनधिकार सिकुड़ कर बैठी हुई तुकबंदियाँ अनायास पकड़ में आ गई। इतना दंड ही पर्याप्त था। पर इससे संतुष्ट न होकर अपराध की अन्वेषिका ने एक हाथ में वह चित्र-विचित्र कापी थामी और दूसरे में अभियुक्ता की उँगलियाँ कस कर पकड़ी और वह हर कमरे में जा-जाकर इस अपराध की सार्वजनिक घोषणा करने लगी।

उस युग में कविता रचना अपराधों की सूची में थी। कोई तुक जोड़ता है, यह सुनकर ही सुनने वालों के मुख की रेखायें इस प्रकार वक्रकुंचित हो जाती थीं मानों उन्हें कोई कटु-तिक्त पेय पीना पड़ता हो।

ऐसी स्थिति में गणित जैसे गंभीर महत्वपूर्ण विषय के लिए निश्चित पृष्ठों पर तुक जोड़ना अक्षम्य अपराध था। इससे बढ़कर कागज का दुरूपयोग और विषय का निरादर और हो ही क्या सकता था। फिर जिस विद्यार्थी की बुद्धि अंकों के बीहड़ वन में पग-पग पर उलझती है उससे तो गुरू यही आशा रखता है कि वह हर साँस को अंक जोड़ने-घटाने की क्रिया बना रहा होगा। यदि वह सारी धरती को कागज बना कर प्रश्नों को हल करने के प्रयास से नहीं भर सकता तो उसे कम से कम सौ-पचास पृष्ठ, सही न सही तो गलत प्रश्न-उत्तरों से भर लेना चाहिए। तब उसकी भ्रान्त बुद्धि को प्रकृतिदत्त मान कर उसे क्षमा दान का पात्र समझा जासकता है, पर जो तुकबन्दी जैसे कार्य से बुद्धि की धार गोंठिल कर रहा है वह तो पूरी शक्ति से दुर्बल होने की मूर्खता करता है, अतः उसके लिए न सहानुभूति का प्रश्न उठता है न क्षमा का।

मैंने होंठ भींच कर न रोने का जो निश्चय किया वह टूटा तो न टूटा। अन्त में मुझे शक्ति परीक्षा में उत्तीर्ण देख सुभद्रा जी ने उत्फुल्ल भाव से कहा, 'अच्छी तो लिखती हो। भला सवाल हल करने में एक दो तीन जोड़ लेना कोई बड़ा काम है! 'मेरी चोट अभी दुख रही थी, परन्तु उनकी सहानुभूति और आत्मीय भाव का परिचय पाकर आँखे सजल हो आईं 'तुमने सब को क्यों बताया? का सहास उत्तर मिला 'हमें भी तो यह सहना पड़ता है। अच्छा हुआ अब दो साथी हो गए।'

बहिन सुभद्रा का चित्र बनना कुछ सहज नहीं है क्योंकि चित्र की साधारण जान पड़ने वाली प्रत्येक रेखा के लिए उनकी भावना की दीप्ति 'संचारिणी दीपशिखेव' बनकर उसे असाधारण कर देती है। एक-एक कर के देखने से कुछ भी विशेष नहीं कहा जाएगा, परन्तु सब की समग्रता में जो उद्भासित होता था, उसे दृष्टि से अधिक हृदय ग्रहण करता था।

मझोले कद तथा उस समय की कृश देहयष्टि में ऐसा कुछ उग्र या रौद्र नहीं था जिसकी हम वीरगीतों की कवयित्री में कल्पना करते हैं। कुछ गोल मुख, चौड़ा माथा, सरल भृकुटियाँ, बड़ी और भावस्नात आँखे, छोटी सुडौल नासिका, हँसी को जमा कर गढ़े हुए से ओठ और दृढ़ता सूचक ठुड्ढी.....सब कुछ मिला कर एक अत्यन्त निश्छल, कोमल, उदार व्यक्तित्व वाली भारतीय नारी का ही पता देते थे। पर उस व्यक्तित्व के भीतर जो बिजली का छन्द था, उसका पता तो तब मिलता था, जब उनके और उनके निश्चित लक्ष्य के बीच में कोई बाधा आ

उपस्थित होती थी। 'मैंने हँसना सीखा है मैं नहीं जानती रोना' कहने वाली की हँसी निश्चय ही असाधारण थी। माता की गोद में दूध पीता बालक जब अचानक हँस पड़ता है, तब उसकी दूध से धुली हँसी जैसी निश्चिन्त तृप्ति और सरल विश्वास रहता है, बहुत कुछ वैसा ही भाव सुभद्रा जी की हँसी में मिलता था। वह संक्रामक भी कम नहीं थी क्योंकि दूसरे भी उनके सामने बात करने से अधिक हँसने को महत्व देने लगते थे।

वे अपने बचपन की एक घटना सुनाती थीं। कृष्ण और गोपियों की कथा सुनकर एक दिन बालिका सुभद्रा ने निश्चय किया कि वह गोपी बन कर ग्वालों के साथ कृष्ण को ढूँढ़ने जायेगी।

दूसरे दिन वह लकुटी लेकर गायों और ग्वालों के झुंड के साथ कीकर और बबूल से भरे जंगल में पहुँच गई। गोधूली वेला में चरवाहे और गायें तो घर की ओर लौट गए, पर गोपी बनने की साधवाली बालिका कृष्ण को खोजती ही रह गई। उसके पैरों में काँटे चुभ गए, कँटीली झाड़ियों में कपड़े उलझा कर फट गए, प्यास से कंठ सूख गया और पसीने पर धूल पर्त जम गई, पर वह धुनवाली बालिका लौटने को प्रस्तुत नहीं हुई। रात होते देख घर वालों ने उन्हें खोजना आरम्भ किया और ग्वालों से पूछते-पूछते अँधेरे करील-वन में उन्हें पाया।

अपने निश्चित लक्ष्य-पथ पर अडिग रहना और सब-कुछ हँसते-हँसते सहना उनका स्वभावजात गुण था। क्रास्थवेट गर्ल्स कॉलेज में जब वे आठवीं कक्षा की विद्यार्थिनी थीं, तभी उनका विवाह हुआ और उन्होंने पतिगृह के लिए प्रस्थान किया। स्वतन्त्रता के युद्ध के लिए सन्नद्ध सेनानी पति को वे विवाह से पहले देख भी चुकी थीं और उनके पति को अवकाश है न लेने का उन्हें। वस्तुतः जिस विवाह में मंगल-कंकण ही रण-कंकण बन गया, उसकी गृहस्थी भी कारागार में ही बसाई जा सकती थी। और उन्होंने बसाई भी वहीं। पर इस साधना की मर्मव्यथा को वही नारी जान सकती है जिसने अपनी देहली पर खड़े होकर भीतर के मंगल चौक पर रखे मंगल कलश, तुलसी चौरे पर जलते हुए घी के दीपक और हर कोने से स्नेहभरी बाहें फैलाए हुए अपने घर पर दृष्टि डाली हो और फिर बाहर के अंधकार, आँधी और तूफान को तौला हो और तब घर की सुरक्षित सीमा पार कर, उसके सुन्दर मधुर आह्वान की ओर से पीठ फेर कर अँधेरे रास्ते पर काँटों से उलझती चल पड़ी हो। उन्होंने हँसते-हँसते ही बताया था कि जेल जाते समय उन्हें इतनी अधिक फूल-मालायें मिल जाती थीं कि वे उन्हीं का तकिया बना लेती थीं और लेटकर पुष्पशैय्या के सुख का अनुभव करती थी।

एक बार भाई लक्ष्मणसिंह जी ने मुझसे सुभद्रा जी की स्नेहभरी शिकायत की, 'इन्होंने मुझ से कभी माँगने का अधिकार माँग लिया था महादेवी! यह ऐसे ही होशियार हैं, माँगती तो वचन-भंग का दोष मेरे सर पड़ता, नहीं माँगा तो इनके अहंकार को ठेस लगती है।'

घर और कारागार के बीच में जीवन का जो क्रम विवाह के साथ आरंभ हुआ था वह अंत तक चलता ही रहा। छोटे बच्चों को जेल के भीतर और बड़ों को बाहर रखकर वे अपने मन को कैसे संयत रख पाती थीं। यही सोचकर विस्मय होता है। कारागार में जो सम्पन्न परिवारों की सत्याग्रही मातायें थीं, उनके बच्चों के लिए बाहर से न जाने कितना मेवा-मिष्ठान आता रहता था।

सुभद्रा जी की आर्थिक परिस्थितियों में जेल-जीवन का एक और क्लास समान ही था। एक बार जब भूख से रोती बालिका को बहलाने के लिए कुछ नहीं मिल सका तब उन्होंने अरहर दलने वाली महिला-कैदियों से थोड़ी-सी अरहर की दाल ली और उसे तवे पर भून कर बालिका को खिलाया। घर आने पर भी उनकी दशा द्रोणाचार्य जैसी हो जाती थी, जिन्हें दूध के लिए मचलते हुए बालक अश्वत्थामा को चावल के घोल से सफेद पानी देकर बहलाना पड़ा था! पर इन परीक्षाओं से उनका मन न कभी हारा न उसने परिस्थितियाँ को अनुकूल बनाने की लिए कोई समझौता स्वीकार किया।

उनके मानसिक जगत में हीनता की किसी ग्रंथि के लिए कभी अवकाश नहीं रहा, घर से बाहर बैठ कर वे कोमल और ओज भरे छंद लिखने वाले हाथों से गोबर के कंडे पाथती थीं। घर के भीतर तन्मयता से आँगन लीपती थीं, बर्तन माँजती थीं। आँगन लिपने की कला में मेरा भी कुछ प्रवेश था, अतः प्रायः हम दोनों प्रतियोगिता के लिए आँगन के भिन्न-भिन्न छोरों से लीपना आरम्भ करते थे। लीपने में हमें अपने से बड़ा कोई विशेषज्ञ मध्यस्थ नहीं प्राप्त हो सका, अत: प्रतियोगिता का परिणाम सदा अघोषित ही रह गया पर आज मैं स्वीकार करती हूँ कि ऐसे कार्य में एकान्त तन्मयता केवल उसी गृहणी में संभव है जो अपने घर की धरती को समस्त हृदय से चाहती हो और सुभद्रा ऐसी ही गृहिणी थीं। उस छोटे से अधबने घर की छोटी-सी सीमा में उन्होंने क्या नहीं संगृहीत किया। छोटे-बड़े पेड़, रंग-बिरंगे फूलों के पौधों की क्यारियाँ, ऋतु के अनुसार तरकारियाँ, गाय, बच्छे आदि-आदि बड़ी गृहस्थी की सब सज्जा वहाँ विराट दृश्य के छोटे चित्र के समान उपस्थित थी। अपने इस आकार में छोटे साम्राज्य को उन्होंने अपनी ममता के जादू से इतना विशाल बना रखा था कि उसके द्वार पर न कोई अनाहूत रहा और न निराश लौटा। जिन संघर्षों के बीच से उन्हें मार्ग बनाना पड़ा वे किसी भी व्यक्ति को अनुदार और कटु बनाने में समर्थ थे। पर सुभद्रा के भीतर बैठी सृजनशील नारी जानती थी कि काँटो का स्थान जब चरणों के नीचे रहता है तभी वे टूट कर दूसरों को बेचने की शक्ति खोते हैं। परीक्षायें जब मनुष्य के मानसिक स्वास्थ्य को क्षत-विक्षत कर डालती हैं तब उनमें उत्तीर्ण होने-न-होने का कोई मूल्य नहीं रह जाता।

नारी के हृदय में जो गंभीर ममता-सजल वीर-भाव उत्पन्न होता है वह पुरूष के उग्र शौर्य से अधिक उदात्त और दिव्य रहता है। पुरूष अपने व्यक्तित्व या समूहगत रागद्वेष के लिए भी वीर धर्म के लिए या अपनी कल्याणी सृष्टि की रक्षा के लिए रूद्र बनती है। अतः उसकी वीरता के समकक्ष ही भीमाकृति चंडी,वत्सला अम्बा भी है, जो हिंसात्मक पाशविक शक्तियों को चरणों के नीचे दबारक अपनी सृष्टि के मंगल की साधना करती है।

सुभद्रा जो महिमामयी माँ थी, उसकी वीरता का उत्स भी वात्सल्य ही कहा जा सकता है। न उनका जीवन किसी क्षणिक उत्तेजना से संचालित हुआ न उनकी ओज भरी कविता वीर-रस की घिसी-पिटी लीक पर चली। उनके जीवन में जो एक निरन्तर निखरता हुआ कर्म का तारतम्य है वह ऐसी अंतर-व्यापिनी निष्ठा से जुड़ा है जो क्षणिक उत्तेजना का दान नहीं मानी जा सकती। इसी से जहॉ दूसरों को यात्रा का अन्त दिखाई दिया वहीं उन्हें नई मंजिल का बोध हुआ।

थक पर बैठने वाला अपने न चलने की सफाई खोजते-खोजते लक्ष्य पा लेने की कल्पना कर सकता है, पर चलने वाले को इसका अवकाश कहाँ!

जीवन के प्रति ममता भरा विश्वास ही उनके काव्य का प्राण है:

सुख भरे सुनहले बादल
रहते हैं मुझको घेरे।
विश्वास प्रेम साहस हैं।
जीवन के साथी मेरे।

मधुमक्षिका जैसे कमल से लेकर भटकटैया तक और रसाल से लेकर आक तक, सब मधुर तिक्त एकत्र करके उसे अपनी शक्ति से एक मधु बनाकर लौटती, बहुत कुछ वैसा ही आदान-सम्प्रदान सुभद्रा जी का था। सभी कोमल-कठिन, साह्य-असह्य अनुभवों का परिपाक दूसरों के लिए एक ही होता था। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उनमें विवेचन की तीक्ष्ण दृष्टि का अभाव था। उनकी कहानियाँ प्रमाणित करती हैं कि उन्होंने जीवन और समाज की अनेक समस्याओं पर विचार किया और कभी अपने निष्कर्ष के साथ और कभी दूसरों के निष्कर्ष के लिए उन्हें बड़े चमत्कारिक ढंग से उपस्थित किया।

जब स्त्री का व्यक्तित्व उसके पति से स्वतंत्र नहीं माना जाता था तब वे कहती हैं, 'मनुष्य की आत्मा स्वतंत्र है। फिर चाहे वह स्त्री-शरीर के अन्दर निवास करती हो चाहे पुरूष-शरीर के अन्दर। इसी से पुरूष और स्त्री का अपना-अपना व्यक्तित्व अलग रहता है।' जब समाज और परिवार की सत्ता के विरूद्ध कुछ कहना अधर्म माना जाता था तब वे कहती हैं, 'समाज और परिवार व्यक्ति को बन्धन में बाँधकर रखते हैं। ये बन्धन देशकालानुसार बदलते रहते हैं और उन्हें बदलते रहना चाहिए वरना वे व्यक्तित्व के विकास में सहायता करने के बदले बाधा पहुँचाने लगते हैं। बन्धन कितने ही अच्छे उद्देश्य से क्यों न नियत किए गये हों, हैं बंध नही, और जहाँ बन्धन है वहाँ असन्तोष है तथा क्रान्ति हैं।'

परंपरा का पालन ही जब स्त्री का परम कर्त्तव्य समझा जाता था तब वे उसे तोड़ने की भूमिका बाँधती है, 'चिर-प्रचलित रूढ़ियों और चिर-संचित विश्वासों को आघात पहुँचाने वाली हलचलों को हम देखना-सुनना नहीं चाहते। हम ऐसी हलचलों को अधर्म समझ कर उनके प्रति आँख मींच लेना उचित समझते हैं, किन्तु ऐसा करने से काम नहीं चलता। वह हलचल और क्रांति हमें बरबस झकझोरती है और बिना होश में लाये नहीं छोड़ती।'

अनेक समस्याओं की ओर उनकी दृष्टि इतनी पैनी है कि सहज भाव से कही सरल कहानी का अंत भी हमें झकझोर डालता है।

वे राजनीतिक जीवन में ही विद्रोहिणी नहीं रहीं, अपने पारिवारिक जीवन में भी उन्होंने अपने विद्रोह को सफलतापूर्वक उतार कर उसे सृजन का रूप दिया था।

सुभद्रा जी के अध्ययन का क्रम असमय ही भंग हो जाने के कारण उन्हें विश्वविद्यालय की शिक्षा तो नहीं मिल सकी, पर अनुभव की पुस्तक से उन्होंने जो सीखा उनकी प्रतिभा ने सर्वथा निजी विशेषता दे दी है।

भाषा,भाव,छंद की दृष्टि से नये, 'झांसी की रानी' जैसे वीर-गीत तथा सरल स्पष्टता में मधुर प्रगीत मुक्त, यथार्थवादी मार्मिक कहानियाँ आदि उनकी मौलिक प्रतिभा के ही सृजन हैं।

ऐसी प्रतिभा व्यावहारिक जीवन को अछूता छोड़ देती तो आश्चर्य की बात होती।

पत्नी की अनुगामिनी, अर्धांगिनी आदि विशेषताओं को अस्वीकार कर उन्होंने भाई लक्ष्मणसिंह जी को पत्नी के रूप में ऐसा अभिन्न मित्र दिया जिसकी बुद्धि और शक्ति पर निर्भर रह कर अनुगमन किया जा सके।

अजगर की कुंडली के समान, स्त्री के व्यक्तित्व को कस चर-चर कर देने वाले अनेक सामाजिक बंधनों को तोड़ फेंकने में उनका जो प्रयास लगा होगा, उसका मूल्यांकन आज संभव नहीं है।

उस समय बच्चों के लालन-पालन में मनोविज्ञान को इतना महत्वपूर्ण स्थान नहीं मिला था और प्रायः सभी माता-पिता बच्चों को शिष्टता सिखाने में स्वयं अशिष्टता की सीमा तक पहुँच जाते थे। सुभद्रा जी का कवि-हृदय यह विधान कैसे स्वीकार कर सकता था! अतः उनके बच्चों को विकास का जो मुक्त वातावरण मिला उसे देख कर सब समझदार निराशा से सिर हिलाने लगे। पर जिस प्रकार यह सत्य है कि सुभद्रा जी ने अपने किसी बच्चे को उसकी इच्छा के विरूद्ध कुछ करने के लिए बाध्य नहीं किया, उसी प्रकार यह भी सत्य है कि किसीबच्चे ने ऐसा कोई कार्य नहीं किया जिससे उसकी महीयसी माँ को किंचित् भी क्षुब्ध होने का कारण मिला हो। उनके वात्सल्य का विधान ऐसा ही अलिखित और अटूट था।

अपनी संतान के भविष्य को सुखमय बनाने के लिए उनके निकट कोई भी त्याग अकरणीय नहीं रहा। पुत्री के विवाह के विषय में तो उन्हें अपने परिवार से भी संघर्ष करना पड़ा।

उन्होंने एक क्षण के लिए भी इस असत्य को स्वीकार नहीं किया कि जातिवाद की संकीर्ण तुला पर ही वर की योग्यता तोली जा सकती है। इतना ही नहीं, जिस कन्यादान की प्रथा का सब मूक-भाव से पालन करते आ रहे थे उसी के विरूद्ध उन्होंने घोषणा की, 'मैं कन्यादान नहीं करूँगी। क्या मनुष्य मनुष्य को दान करने का अधिकारी है ? क्या विवाह के उपरांत मेरी बेटी नहीं रहेगी ? उस समय तक किसी ने, और विशेषतः किसी स्त्री ने, ऐसी विचित्र और परंपरा-विरूद्ध बात नहीं कही थीं।

देश की जिस स्वतंत्रता के लिए उन्होंने अपने जीवन के वासंती सपने अँगारों पर रख दिए थे, उसकी प्राप्ति के उपरांत भी जब उन्हें सब ओर अभाव और पीड़ा दिखाई दी जब उन्होंने अपने संघर्षकालीन साथियों से भी विद्रोह किया। उनक उग्रता का अंतिम परिचय तो विश्ववन्द्य बापू की अस्थिविसर्जन के दिन प्राप्त हुआ। वे कई सौ हरिजन महिलाओं के जुलूस के साथ-साथ सात मील पैदल चलकर नर्मदा किनारे पहुँची। पर अन्य सम्पन्न परिवारों की सदस्यायें मोटरों पर ही जा सकीं। जब अस्थिप्रवाह के उपरांत संयोजित सभा के घेरे में इन पैदल आने वालों को

स्थान नहीं दिया गया तब सुभद्रा जी का क्षुब्ध हो जाना स्वाभाविक ही था । उनका क्षात्रधर्म तो किसी प्रकार के अन्याय के प्रति क्षमाशील हो नहीं सकता था। जब उन हरिजनों को उनका प्राप्य दिला सकीं तभी वे स्वयं सभा में सम्मिलित हुई।

सातवीं और पाँचवी कक्षा की विद्यार्थिनियों के सख्य को सुभद्रा जी के सरल स्नेह ने ऐसी अमिट लक्ष्मण-रेखा से घेर कर सुरक्षित रखा कि समय उस पर कोई रेखा नहीं खींच सका। अपने भाई-बहनों में सबसे बड़ी होने के कारण मैं अनायास ही सब की देखरेख और चिंता की अधिकारिणी, बन गई थी। परिवार में जो मुझसे बड़े थे उन्होंने भी मुझे ब्रह्मसूत्र की मोटी पोथी में आँखे गड़ाये देखकर अपनी चिंता की परिधि से बाहर समझ लिया था। पर केवल सुभद्रा पर न मेरी मोटी पोथियों का प्रभाव पड़ा न मेरी समझदारी का। अपने व्यक्तिगत संबंधों में हम कभी कुतूहली बाल-भाव से मुक्त नहीं हो सके। सुभद्रा के मेरे घर आने पर भक्तिन तक मुझ पर रौब जमाने लगती थी। क्लास में पहुँच कर वह उनके आगमन की सूचना इतने ऊँचे स्वर में इस प्रकार देती कि मेरी स्थिति ही विचित्र हो जाती 'ऊ सहोदरा विचरि अऊ तो इनका देखै बरे आइ के अकेली सूने घर माँ बैठी हैं। अउर इनका कितबियन से फुरसत नाहिन बा'। एम0ए0, बी0ए0 के विद्यार्थियों के सामने जब एक देहातिन बुढ़िया गुरू पर कर्त्तव्य-उल्लंघन का ऐसा आरोप लगाने लगे तो बेचारे गुरू की सारी प्रतिष्ठा किरकिरी हो सकती थी। पर इस अनाचार को, रोकने का कोई उपाय नहीं था। सुभद्रा जी के सामने न भक्तिन को डाँटना संभव था न उसके कथन की अपेक्षा करना। बँगले में आकर देखती कि सुभद्रा जी रसोई घर में या बरामदे में भानमती का पिटारा खोले बैठी हैं और उसमें से अद्भुत वस्तुएँ निकल रही हैं। छोटी-छोटी पत्थर या शीशे की प्यालियाँ, मिर्च का अचार, बासी पूरी, पेड़े, रंगीन चकला-बेलन, चुटीली, नीली सुनहरी चूड़ियाँ आदि-आदि सब कुछ मेरे लिए आया है, इस पर कौन विश्वास करेगा! पर वह आत्मीय उपहार मेरे निमित्त ही आता था।

ऐसे भी अवसर आ जाते थे जब वे किसी कवि-सम्मेलन में आते-जाते प्रयाग उतर नहीं पाती थीं और मुझे स्टेशन जाकर ही उनसे मिलना पड़ता था। ऐसी कुछ क्षणों की भेंट में भी एक दृश्य की अनेक आवृत्तियाँ होती ही रहती थीं। वे अपने थैले से दो चमकीली चूड़ियाँ निकाल कर हँसती हुई पूछती, 'पसंद हैं ? मैंने दो तुम्हारे लिएदो अपने लिए खरीदी थीं। तुम पहनने में तोड़ डालोगी। लाओ अपना हाथ, मैं पहना देती हूँ ।' पहन लेने पर वे बच्चों के समान प्रसन्न हो उठतीं।

हम दोनों जब साथ रहती थीं तब बात एक मिनिट और हँसी पाँच मिनट का अनुपात रहता था। इस से प्रायः किसी सभा-समिति में जाने के पहले न हँसने का निश्चय करना पड़ता था। एक दूसरे की ओर बिना देखे गंभीर भाव से बैठे रहने की, प्रतिज्ञा करके भी वहाँ पहुँचते ही एक-न-एक वस्तु या दृश्य सुभद्रा के कुतूहल मन को आकर्षित कर लेता और मुझे दिखाने के लिए वे चिकोटी तक काटने से नहीं चूकतीं। तब हमारी शोभा-सदस्यता की जो स्थिति हो जाती थी, उसका अनुमान सहज है।

अनेक कवि-सम्मेलनों में हमने साथ भाग लिया था, पर जिस दिन मैंने अपने न जाने का निश्चय और उसका औचित्य उन्हें बता दिया उस दिन से अंत तक कभी उन्होंने मेरे निश्चय के विरूद्ध कोई आग्रह नहीं किया। आर्थिक स्थितियाँ उन्हें ऐसे निमंत्रण स्वीकार करने के लिए विवश कर देती थीं, परंतु मेरा प्रश्न उठते ही वे कह देती थीं, 'मैं तो विवशता से जाती हूँ, पर महादेवी नहीं जायेगी, नहीं जायेगी।

साहित्य-जगत में आज जिस सीमा तक व्यक्तिगत स्पर्द्धा, ईर्षा-द्वेष है, उस सीमा तक तब नहीं था, यह सत्य है। पर एक दूसरे के साहित्य-चरित्र-स्वभाव संबंधी निंदा-पुराण तो सब युगों में नानी की कथा के समान लोकप्रियता पा लेता है। अपने किसी भी परिचित-अपरिचित साहित्य-साथी की त्रुटियों के प्रति सहिष्णु रहना और उसके गुणों के मूल्यांकन में उदारता से काम लेना सुभद्रा जी की निजी विशेषता थी। अपने को बड़ा बनाने के लिए दूसरों को छोटा प्रमाणित करने की दुर्बलता उनमें असंभव थी।

वसंत पंचमी को पुष्पाभरणा, आलोकवसना धरती की छवि आँखों में भर कर सुभद्रा ने विदा ली। उनके लिए किसी अन्य विदा की कल्पना ही कठिन थी।

एक बार बात करते-करते मृत्यु की चर्चा चल पड़ी थी। मैंने कहा, 'मुझे तो उस लहर की-सी मृत्यु चाहिए जो तट पर दूर तक आकर चुपचाप समुद्र में लौट कर समुद्र बन जाती है।' सुभद्रा बोली, 'मेरे मन में तो मरने के बाद भी धरती छोड़ने की कल्पना नहीं है। मैं चाहती हूँ मेरी एक समाधि हो, जिसके चारों ओर नित्य मेला लगता रहे, बच्चे खेलते रहें, स्त्रियाँ गाती रहें और कोलाहल होता रहे। अब बताओं तुम्हारी नामधाम रहित लहर से यह आनंद अच्छा है या नहीं।

उस दिन जब उनके पार्थिव अवशेष को त्रिवेणी ने अपने श्यामल-उज्जवल अंचल में समेट लिया तब नीलम-फलक पर श्वेत चंदन से बने उस चित्र की रेखाओं में बहुत वर्षों पहले देखा एक किशोर-मुख मुस्कराता जान पड़ा।

'यही कहीं पर बिखर गई वह छिन्न विजय-माला-सी!

13.6 पाठ विश्लेषण

पाठ विश्लेषण का तात्पर्य है – मूल पाठ की सामाजिक उपयोगिता की जाँच करना है या मूल्यांकन करना। पाठ विश्लषण तब ज्यादा प्रमाणिक हो उठता है जब मूल पाठ पाठक के सामने हो और आलोचक उसकी व्याख्या कर रहा हो। इस विश्लेषण की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है इसमें पाठक को आलोचक की दृष्टि आरोपित रूप में ग्रहण नहीं करनी पड़ती। मूल पाठ का उपलब्धता से पाठक स्वयं पाठ विश्लेषण कर सकता है या आलोचक के पाठ विश्लषण की जाँच कर सकता है। आलोच्य संस्मरण महादेवी वर्मा की लेखनी की सजीवता का सुन्दर उदाहरण है। आइए हम आलोच्य संस्मरण के पाठ विश्लेषण द्वारा उसकी अंतर्निहित संभावना को समझें।

13.6.1 अंतर्वस्तु के धरातल पर

संस्मरण के प्रारम्भ में ही महादेवी वर्मा ने संस्मरण लिखने के कारण का जिक्र करते हुए लिखा- "शैशव की चित्रशाला के जिन चित्रों से हमारा रागात्मक संबंध गहरा होता है, उनकी रेखायें और रंग इतने स्पष्ट और चटकीले होते चलते हैं कि हम वार्धक्य की धुंधली आँखों से भी उन्हें प्रत्यक्ष देखते रह सकते है।" स्पष्ट है कि संस्मरण उन्हीं पर लिखा जा सकता है जिनसे रागात्मक संबंध लेखक का रहा हो। लेखिका ने संस्मरण की शुरूआत-नायिका लेखिका से दो कक्षा आगे है, इस थोड़े से बड़े होने का एहसास उसे है और स्वयं लेखिका को भी हैं। स्नेहवश प्रश्न–प्रतिप्रश्न के बीच-'हमें भी तो यह सहना पड़ता है। अच्छा हुआ अब दो साथी हो गए।' विकसित होता है। लेखिका ने सुभद्रा जी के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है – "अपने निश्चित लक्ष्य-पथ पर अडिग रहना और सब कुछ हँसते-हँसते सहना उनका स्वभावजात गुण था।" सुभद्रा जी की यह अडिगता संस्मरण में जगह-जगह दिखती है। "नववधू के रूप में उनका जो प्राप्य है उसे देने का न पति को अवकाश है न लेने का उन्हें। वस्तुत: जिस विवाह में मंगल-कंकण ही रण-कंकण बन गया, उसकी गृहस्थी भी कारागार में ही बसाई जा सकती थी।और उन्होंने बसाई भी वहीं।"

"उन्होंने हँसते-हँसते ही बताया था कि जेल जाते समय उन्हें इतनी अधिक फूल-मालायें मिल जाती थीं कि वे उन्हीं का तकिया बना लेती थीं।" सुभद्रा जी के जीवन संघर्ष के साथ ही उनके संतुलन और संयम का चित्र भी लेखिका ने खींचा है – "घर और कारागार के बीच में जीवन का जो क्रम विवाह के साथ आरम्भ हुआ था वह अंत तक चलता ही रहा। छोटे बच्चों को जेल के भीतर और बड़ों को बाहर रखकर वे अपने मन को कैसे संयत रख पाती थीं यह सोचकर विस्मय होता है।" इसी प्रकार सुभद्रा जी कर्मठ एवं सहज जीवन का चित्र महादेवी ने इस प्रकार खींचा है –"उनके मानसिक जगत में हीनता की किसी ग्रंथि के लिए कभी अवकाश नहीं रहा, घर से बाहर बैठकर वे कोमल और ओज भरे छन्द लिखने वाले हाथों से गोबर के कंडे पाथतीं थी। घर के भीतर तन्मयता से आँगन लीपती थीं, बर्तन माँजती थीं।" सुभद्रा कुमारी चौहान को प्राय: वीररस की कवयित्री मानकर इतिश्री कर दिया जाता है। इस प्रवृत्ति से असंतोष प्रकट करते हुए महादेवी वर्मा ने लिखा है –"उनकी कहानियाँ प्रमाणित करती हैं कि उन्होंने जीवन और समाज की अनेक समस्याओं पर विचार किया है।" अपने इस कथन को पुष्ट करने के लिए लेखिका ने सुभद्रा जी के मूल वक्तव्य भी उद्धत किए हैं। इसी प्रकार लेखिका ने सुभद्रा जी बाल मनोविज्ञान की समझ को भी सराहा है। सुभद्रा जी न केवल श्रेष्ठ कवयित्री थीं, वरन् सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ने में भी अग्रणी थीं – "पुत्री के विवाह के विषय में तो उन्हें अपने परिवार से भी संघर्ष करना पड़ा। उन्होंने एक क्षण के लिए भी इस असत्य को स्वीकार नहीं किया कि जातिवाद की संकीर्ण तुला पर ही वर की योग्यता तोली जा सकती है। इतना ही नहीं, जिस कन्यादान की प्रथा का सब मूक भाव से पालन करते आ रहे थे उसी के विरूद्ध उन्होंने घोषणा की, "मैं कन्यादान नहीं करूँगी। क्या मनुष्य मनुष्य को दान करने का अधिकार है ? उस समय तक किसी ने, और विशेषत: किसी स्त्री ने, ऐसी विचित्र और परम्परा-विरूद्ध बात नहीं कही थी।"

इसके अतिरिक्ति संस्मरणकार ने सुभद्रा जी के उनके बाल स्वभाव एवं सदाशयता का परिचय जगह-जगह दिया है।

13.6.2 शिल्प के धरातल पर

संस्मरण की भाषा एवं शिल्प से यह अपेक्षा की जाती है कि वह कथ्य को सघन, संक्षिप्त एवं प्रभावी रूप में प्रस्तुत कर पा रहा है या नहीं। महादेवी वर्मा मूलत: कवियत्री हैं, इसलिए उनकी संस्मरण की भाषा भी कहीं-कहीं काव्यात्मक अलंकरण से अलंकृत हो गई है, जो संस्मरण को और अधिक प्राणवान और जीवंत बनाने में सफल हुआ है। महादेवी वर्मा के भाषा की विशेषता जहाँ सघनता से युक्त है वहीं वह अपनी केंद्राभिसारी प्रभावान्विति में भी सफल है। आलोच्य पंक्तियों में एक ओर लेखिका ने जहाँ संस्मरण की मूल विशेषता को लक्षित किया है वहीं घटना के समय की शुरूआत का संकेत भी कर दिया है – "हमारे शैशवकालीन अतीत और प्रत्यक्ष वर्तमान के बीच में समय-प्रवाह का पाठ ज्यों–ज्यों चौड़ा होता जाता है त्यों-त्यों हमारी स्मृति में अनजाने ही एक परिवर्तन लक्षित होने लगता है। शैशव की चित्रशाला के जिन चित्रों से हमारा रागात्मक संबंध गहरा होता है, उनकी रेखायें और रंग इतने स्पष्ट और चटकीले होते चलते हैं कि हम वार्धक्य की धुंधली आँखों से भी उन्हें प्रत्यक्ष देखते रह सकते हैं।" इन पंक्तियों में लेखिका की भाषा सघनता एवं संकेतात्मकता से तो परिपूर्ण है ही इसके साथ ही वह उसकी भाषा की विशेषताओं को भी इंगित कर रही है। लेखिका की भाषा में एक ओर जहाँ तत्सम शब्दों की बहुतायत है (वार्धम्य, शैशवकालीन, लक्षित, मधुमक्षिका, मधुर, तिक्त इत्यादि) वहीं वह लोक रंगों से भी अछूती नहीं है – 'ऊसहोदरा विचारि अऊ तो इनका देखै बरे आइ के अकेली सूने घर माँ बैठी हैं। अउर इनका कितबियन से फरसत नाहिन बा।'

महादेवी वर्मा चित्र उकेरने की कला में सिद्धस्त हैं। वह कवयित्री होने के साथ-ही-साथ रेखाचित्रकार भी हैं, जिससे उनके संस्मरण भी जीवंत बन पड़े हैं। सुभद्रा जी का परिचय देने में उनकी चित्रात्मक शैली देखते ही बनती है – "मझोल कद तथा उस समय की कृश देहयष्टि में ऐसा उग्र या रौद्र नहीं था जिसकी हम वीरगीतों की कवयित्री में कल्पना करते हैं। कुछ गोल मुख, चौड़ा माथा, सरल भृकुटियाँ, बड़ी और भावस्नात आँखें, छोटी सुडौल नासिका, हँसी को जमा कर गढ़े हुए से ओठ और दृढ़ता सूचक ठुड्ढी.....सब कुछ मिला कर एक अत्यंत निश्छल, कोमल, उदार व्यक्तित्व वाली भारतीय नारी का ही पता देते थे।" संस्मरण चूँकि पूर्वदीप्ति शैली की रचना है, अत: इस विधा में वही सफल हो सकता है जिसमें चित्रात्मक भाषा में, अपनी स्मृति को पात्रानुकूल ढ़ालने की क्षमता हो। महादेवी वर्मा ने परिस्थितिजन्य एवं पात्रानुकूल भाषा-शिल्प का परिचय देकर श्रेष्ठ संस्मरण लिखे हैं और आलोच्य संस्मरण भी उपयुक्त गुणों से परिपूर्ण है।

13.7 सारांश

इस इकाई का आपने अध्ययन किया। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि –

- संस्मरण विधा आत्मीयता पूर्ण ढंग से संपर्क में आये हुए व्यक्तियों की स्मृति की रचनात्मक प्रस्तुति है।
- 'पथ के साथी' रचना अपनी आत्मीयता एवं सहज संप्रेष्य शैली में विशिष्ट रचना है।
- सुभद्राकुमारी चौहान न केवल कवयित्री रही हैं वरन् मनुष्यता के धरातल पर भी उनके व्यक्तित्व में महानता के तत्व रहे हैं।

13.8 शब्दावली

वार्धक्य	-	बुढापा
वक्र-कुंचित	-	टेढ़ी-मेढ़ी
कटु-तिक्त	-	कड़वा और तीखा
कृश	-	कमजोर
संचारिणी दीपशिखा		निरंतर जलने वाली दीये की लौ
भाव स्नात	-	भाव से सराबोर
कीकर	-	बबूल
आलोकवसना	-	प्रकाश के वस्त्र पहने हुए

13.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) रिक्त स्थान पूर्ति

1. 1907
2. यामा
3. कवयित्री
4. 1956
5. पद्मसिंह शर्मा

(2) सत्य/असत्य

1. सत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. असत्य
5. सत्य

(3) सुमेलित कीजिए –

स्मृति की रेखाएँ - महादेवी वर्मा

पद्मपराग - पद्म सिंह शर्मा
संस्मरण - बनारसी दास चतुर्वेदी
वे दिन वे लोग - शिवपूजन सहाय
औरों के बहाने - राजेन्द्र यादव
स्मरण को पाथेय बनने दो - विष्णुकांत शास्त्री

13.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. तिवारी, रामचन्द्र, हिंदी का गद्य साहित्य – विश्वविद्यालय प्रकाशन।
2. वर्मा, धीरेन्द्र – हिंदी साहित्य कोश 1, ज्ञानमण्डल प्रकाशन।

13.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. नगेन्द्र, डॉ – महादेवी वर्मा
2. मानव, विश्वम्भर – महादेवी वर्मा

13.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. महादेवी वर्मा के गद्य साहित्य की रचना शैली पर प्रकाश डालिए।
2. संस्मरण और अन्य गद्य विधाओं का पारस्परिक साम्य/वैषम्य निरूपित कीजिए।

इकाई 14: नैनीताल में(राहुल सांकृत्यायन) : पाठ एवं मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 यात्रावृत्त का पाठ: नैनीताल में
14.4 यात्रावृत्त का सार
14.5 संदर्भ सहित व्याख्या
14.6 स्थानीयता व तथ्यात्मकता
14.7 आत्मीयता व वैयक्तिकता
14.8 कल्पनाशीलता व रोचकता
14.9 संरचना शिल्प
14.9.1 भाषा
14.9.2 शैली
14.10 प्रतिपाद्य
14.11 सारांश
14.12 पारिभाषिक शब्दावली
14.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.14 संदर्भ ग्रंथ सूची
14.15 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
14.16 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

आप इस इकाई में राहुल सांकृत्यायन के यात्रावृत्त का अध्ययन करने जा रहे हैं। आपका जन्म 9 अप्रेल, 1893ई. में उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिले के पंदहा ग्राम में हुआ। इनका मूल नाम केदारनाथ पाण्डे था। ये सन् 1930 में श्री लंका गए और बौद्ध धर्म में दीक्षित होकर रामोदर साधु से 'राहुल' हुए और सांकृत्य गौत्र से सांकृत्यायन कहलाए। ये जन्मजात घुमक्कड़ थे और उनके जीवन का अधिकांश भाग भ्रमण में व्यतीत हुआ। आपकी यात्राओं में श्रीलंका, तिब्बत, जापान, रूस तथा हिमालय आदि उल्लेखनीय हैं। आपने सन् 1937 में रूस के लेनिनग्राद में संस्कृत अध्यापक की नौकरी भी की।

राहुल जी की घुमक्कड़ प्रवृत्ति ने हिन्दी यात्रा साहित्य को अनेक अनमोल यात्रावृत्त दिए हैं। इन यात्रावृत्तों में स्थान विशेष के भूगोल, इतिहास, समाज, और संस्कृति की झलक दृष्टव्य है। उन्होंने 'तिब्बत में सवा वर्ष'(1933), 'मेरी यूरोप यात्रा'(1935), 'मेरी तिब्बत यात्रा'(1937), 'मेरी लद्दाख यात्रा'(1939), 'यात्रा के पन्ने', 'लंका', 'जापान', 'ईरान', 'किन्नर देश में'(1948), 'राहुल यात्रावलि'(1949), 'रूस में पच्चीस मास'(1952), 'एशिया के दुर्गम भूखण्डों में', 'हिमालय परिचय', 'कुमाऊँ परिचय', 'गढ़वाल परिचय', तथा 'दार्जीलिंग परिचय आदि यात्रा साहित्य की रचना की। इसके अतिरिक्त आपने उपन्यास, कहानी संग्रह, आत्मकथा, जीवनी, आदि भी लिखी, जिनका विवरण निम्नवत् है:-

उपन्यास: 'सिंह सेनापति'(1944), 'जय यौधेय(1944), 'भागो नहीं दुनिया बदलो', 'विस्मृति के गर्भ में'।

कहानी संग्रह: 'सतमी के बच्चे', 'वोल्गा से गंगा'(1944), 'बहुरंगी मधुपुरी', 'कनैला की कथा'।

आत्मकथा: 'मेरी जीवन यात्रा'(पाँच खण्ड)।

जीवनी: 'स्तालिन'(1953), 'बचपन की स्मृतियाँ'(1953) 'कार्ल मार्क्स'(1954), 'लेनिन'(1954), 'माओ चे तुंग'(1956), 'मेरे असहयोग के साथी'(1956)।

आपने विपुल साहित्य हिन्दी को दिया, हिन्दी यात्रा साहित्य को परिणाम और विविधता से समृद्ध किया। जीवन के अंतिम वर्षों में आप दार्जिलिंग(पश्चिमी बंगाल) में रहने लगे, वहीं 14 अप्रेल सन् 1963 को आपका निधन हो गया।

14.2 उद्देश्य:

इस इकाई में आप राहुल सांकृत्यायन के यात्रावृत्त 'नैनीताल में' का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- यात्रावृत्त की विषयवस्तु का सार अपने शब्दों में लिख सकेंगे।
- यात्रावृत्त के महत्त्वपूर्ण अंशों की व्याख्या कर सकेंगे।
- यात्रावृत्त के तत्वों के आधार पर प्रस्तुत यात्रावृत्त की समीक्षा कर सकेंगे।
- भाषा और शैली की दृष्टि से यात्रावृत्त पर विचार कर सकेंगे।
- यात्रावृत्त के प्रतिपाद्य का विवेचन कर सकेंगे।

14.3 यात्रावृत्त का पाठ: नैनीताल में

डॉ0 सत्यकेतु विद्यालंकार से पहले ही पत्र-व्यवहार हो चुका था। वह भी हमारे आजकल आने की प्रतीक्षा कर रहे थे, अर्थात् रामगढ़ के लिए हम निश्चिन्त नहीं थे। नैनीताल का श्रृंगार वहाँ का ताल है, जो किसी भी पर्वतीय विलासपुरी में नहीं है। बस का अड्डा तल्ली (निचले) ताल में है। यहाँ भी बाजार है और बड़ा डाकखाना भी यहीं है। कुलियों पर सामान उठवाकर ताल को बाईं छोड़ते हम सड़क के आगे बढ़े। थोड़ी ही दूर आगे पहाड़ की ओर दूकानें और होटल शुरू हो गए। यहीं सिनेमा भी है। ताल के परले छोर को मल्ली(उपरला) ताल कहते हैं। होटल में पहुँचने से पहले डॉक्टर साहब के ज्येष्ठ पुत्र श्री विश्वरंजन जी मिले। फिर डॉक्टर साहब भी आए। सामान गोदाम में और हम दोनों रहने के कमरे में चले गए।पहली ही नजर देखने पर हमने लिख मारा- ''निश्चय ही नैनीताल के सामने शिमला और दार्जिलिंग कुछ भी नहीं हैं।'' लेकिन साथ ही यह भी लिखा है-''कमी है, तो यही कि यह हिमालय के बाहरी क्षेत्र में है।'' लेकिन, इससे भी बड़ी कमियाँ नैनीताल की मालूम हुई-यहाँ आदमी को मालूम होता है कुएँ में है, जिसके किनारे पहाड़ की विशाल दीवारें खड़ी हैं।

11 मार्च को किराये का बंगला देखने गए। अँग्रेजों के जाने के बाद इन विलासपुरियों पर साढ़े साती सनीचर का कोप है। नैनीताल में अँग्रेज किराए के बंगलों में रहते थे, जिन्हें भारतीयों ने अँग्रेजों के आराम की दृष्टि से ही बनाया था। जिन बंगलों को किराये पर चढ़े वर्षों हो गए, वह जीर्ण, गन्दे, पुराने या टूटे फर्नीचर वाले हों, तो क्या ताज्जुब? अल्मा कॉटेज और ग्लेनमोर दो बंगले अच्छी हालत में थे, लेकिन उनमें आठ-आठ, नौ-नौ कमरे थे, जिनकी सफाई के लिए एक अलग आदमी चाहिए। ग्लेनमोर बाजार से एक मील पर अवस्थित है। कमला को पसन्द आया।

12 मार्च को उसके मालिक के साथ ग्लेनमोर बंगला देखने गए। अधिकांश बंगलों के मालिक कुमाउनी शाह लोग हैं। यह व्यवसायी बहुत कुछ नीचे के अग्रवाल बनियों से हैं। ग्लेनमोर बहुत बड़ा बंगला था, इसमें छः बड़े-बड़े कमरे थे। फर्नीचर भी

था। हमने उसके गुण ही देखे, उसी पर मुग्ध होकर कह दिया, दो कमरे कल तैयार कर दिए जाएँ। किराया हजार ठीक हुआ, लेकिन शाहजी ने कहा, आदमी ज्यादा रहेंगे, तो किराया बढ़ा देंगे।

13 मार्च को फिर बँगलों की खोज में निकले। सबेरे स्नाउडन गए। स्नाउडन की दो-मंजिला इमारत और उसके अच्छे साफ-सुथरे कमरे हमें बहुत पसन्द आए। चौकीदार को कह दिया कि मालिक से पूछो, यदि नौ सौ रुपया वार्षिक पर देना चाहें, तो ले लेंगे। उधर हीरालाल जी शाह को ग्लेनमोर के स्वामी के पास उतने ही किराए पर देने के लिए टेलीफोन करने को कहा। दोपहर बाद चन्द्रलाल शाह के बंगलों, डलहौसी विला, डलहौजी कॉटेज, हटन हाल और हटन कॉटेज देखने को गए।14 मार्च को तीन बँगलों का आफर आया, लेकिन सबसे पहले ग्लेनमोर से। तेरह कुलियों के साथ हम 2 बजे ग्लेनमोर पहुँचे। 6 बड़े-बड़े कमरे जरूर थे, लेकिन शीशे सबके टूटे हुए थे, चिटकनियों और काँचों को खास तौर से तोड़ा गया था। शाम को सोने के लिए दरवाजा बन्द करने लगे, तब मालूम हुआ कि यहाँ तो सभी चीजे खुली हुई हैं और भीतर घुसने की सारी बाधाएं दूर करके रखी गई हैं।

रात को ही बँगले का छोड़ जाने का निश्चय कर लिया। अभी एक ही रात रहे थे, और बँगले के बारे में लिखा-पढ़ी नहीं हुई थी। तुरन्त दूसरी जगह जाने का प्रबन्ध करना पड़ा। चाय पीकर एक चिट्ठी श्री हीरालाल शाह को मकान के नापसन्द होने के बारे में लिखी और स्वयं श्री बाँकेलाल कंसल के पास पहुँचे। ओक लाज में पहुँचे। वह इस सारे बँगले के किरायेदार थे, नीचे उनका परिवार रहता था, ऊपर एक भाग में गुप्ताजी ओवरसियर थे, और दूसरे भाग में दो कमरे और बराण्डा खाली था।

नए मकान में वैसे भी आदमी को कुछ अड़चने मालूम होती हैं। इस मकान के गुण के लिए यही कह सकते हैं कि ग्लेनमोर से निकलने के बाद इसने शरण दी। अब पुस्तकें लिखने में लगना था और कमला को इस साल साहित्य सम्मेलन की विशारद परीक्षा अवश्य देनी थी। अगले दिन हमने छः बक्सों की पुस्तकें निकाल कर जहाँ तहाँ रख दीं। अपने तो जैसे भी गुजारा कर सकते थे, लेकिन चिन्ता थी मेहमानों के आने पर क्या किया जायेगा। जो भी हो, अब नैनीताल में 16 जून तक के लिए हम ओक लाज के हो गए।

मसूरी ने बीच में आकर फिर हमारे दिमाग में अनिश्चिन्तता पैदा कर दी। नैनीताल के लिए आकर्षण नहीं रह गया। तो भी मकान तो किराए पर ले चुके थे, इसलिए उसकी सद्गति करानी जरूरी थी, और वर्षा के बाद ही यहाँ से चल सकते थे। आर्थिक स्थिति का पता अब हमें मालूम होने लगा था, क्योंकि ‘‘अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम‘‘ की वृत्ति पर गुजारा नहीं हो सकता था।

मार्च का अन्त जाड़े का समय नहीं था, लेकिन साढ़े 6000 फुट ऊपर बसे नैनीताल (ओक लाज 7000 फुट) में अब भी जाड़ा था। 22 को पानी और ओला पड़ा। आड़ू, खुमानी, नाशपाती के फूल झड़ गये, अब उनमें फल आने की सम्भावना नहीं थी। 23 मार्च को सबेरे उठे, तो देखा सभी ऊँचे स्थान बर्फ से ढँके थे। हमारे बंगले के आसपास भी बर्फ थी, जो दोपहर तक पिघल गयी थी। सर्दी बहुत बढ़ गई थी। नैनीताल को अब ग्रीष्म राजधानी कहने में हमारे प्रभुओं को संकोच हो रहा था, क्योंकि अंग्रेजोके बहुत से दफ्तरों को लखनऊ से यहाँ भेजना बन्द कर दिया था। लेकिन, वह अभी आरम्भिक दिन थे, कांग्रेसी नेता आदर्शवाद के लिए शर्म करते भी झुकते थे। अभी उस समय के आने में कुछ देर थी, जब कि फिर मुख्यमंत्री और दूसरे मंत्रियों को नैनीताल में फिर से बसाना था, और तब नैनीताल के भाग्य में कुछ परिवर्तन होना भी जरूरी था।अंग्रेजों के जाने से यहाँ के बंगलों की क्या दुर्गति हुई, इसके बारे में हम कुछ बतला आए हैं। दूर-दूर के बंगलों के दिन लौटेंगे, इसकी आशा नहीं थी। नैनीताल में बहुत से युरोपियन स्कूल थे, जो थोड़े से भारतीय लड़कों को भी ले लिया करते थे। अब उनमें से कितने ही बन्द हो चुके थे और कुछ को दूसरों ने लेकर अपनी संस्था खोली थी। बिड़ला विद्या मंदिर उन्हीं में से एक था। हमारे निवास में मालिक से मरम्मत करने की आशा नहीं थी, और कुछ टूटे हुए शीशों से सर्दी और हवा भीतर पहुँच रही थी, इसलिए उन्हें अपने ही लगवाया। 26 मार्च को कुछ घण्टों तक बजरी पड़ती रही। ओला बर्फ जैसा कठोर होता है, और नरम पिलपिले ओले को बजरी कहते हैं, जिसके गिरने पर टीन की छत भड़भड़ाती नहीं और आदमी की खोपड़ी पर चोट नहीं पहुँचती। सर्द स्थानों में टेम्परेचर गिरने के साथ बरसता पानी बजरी के रूप में परिणत होता है, और कुछ सर्दी और बढ़ने पर वह हिम बन जाता है। अधिक सर्दी होने पर कणों के रूप में नहीं, बल्कि रूई के बड़े-बड़े फाहों के रूप में हिम हवा में तैरते हुए गिरने लगता है।

9 अप्रेल को श्री शीतलप्रसाद जी, बाँकेलालजी, उनके मझले भाई तथा दो-एक और भद्रजनों के साथ हम लड़िया कांठा गए। कांठा यहाँ चोटी को कहते हैं, जिसे कहीं कंठा भी कहा जाता है। लड़िया कांठा से कहीं ऊँची चोटी चीना पीक है। पर लड़ियाकांठा गिरिमेखला से हटकर है, जो उसका खास महत्व है। स्थान तीन मील पर होगा। हम लोग कोठे पर पहुँचे। अन्त का 15-20 गज का रास्ता बहुत खराब था। देखने के लिए लकड़ी की दर्शन-बैठक बनी हुई थी। बाँकेलाल जी के मझले भाई अब मैदानी नहीं रह गये थे। किसी भी कड़ी से कड़ी चढ़ाई में वह बकरे की तरह खट्-खट् चले जाते थे।इस समय अप्रेल के महीने में बुरांस(रोडंड्रन) के निरगंध पर सुंदर अतिरक्त वर्ण फूल बहुत खिले हुए थे। पर्वतीय तरूणियाँ कितनी ही जगहों पर इससे अपने बालों का श्रृंगार करती हैं। लेकिन, कुमाऊं या गढ़वाल में मैदानी असर बहुत पड़ा है, इसलिए वहाँ की तरूणियों में यह शौक नहीं देखा जाता।

नैनीताल के निचले भाग से सामने पश्चिम की ओर देखने पर सबसे ऊँचा जो शिखर दिखाई देता है, वही चीना पीक है। यह अंग्रेजों का दिया हुआ नाम है। पहले यह निर्जन-सा स्थान था और केवल पशुपालक यहाँ करते थे। सिर्फ साल में एक दिन नैनी देवी के मेले के लिए झील के किनारे जंगल में मंगल हो जाता था। अंग्रेजों ने इस अद्भुत ताल का पता नेपाल से कुमाऊँ छीनने (1814) के बाद पाया। फिर यहाँ बंगले बनने लगे तथा धीरे-धीरे नैनीताल प्रदेश की ग्रीष्म राजधानी बन गया।23 अप्रेल को सर्वोच्च शिखर पर हमारे जाने की सलाह हुई। नैनीताल जाने वाले पिकनिक के लिए एकाध बार वहाँ जरूर आते हैं। सड़क से कितनी ही दूर जा गिरीमेखला में डाँडे को पार कर पगडण्डी पकड़ ऊपर शिखर पर पहुँचे। एक पत्थर पर सामने दिखाई देनेवाले हिमाच्छादित शिखरों के नाम लिखे हुए थे, जो रेखा की सीध में देखने से सामने दिखलाई पड़ते थे। आज हमारे दुर्भाग्य से अधिकतर शिखर बादल से ढँके थे। बदरीनाथ से जमुनोत्री(बन्दरपूँछ) तक के शिखर ही नहीं देख सकते, बल्कि पूर्व में नेपाल के शिखर भी सामने पड़ते हैं।

हम 6 आदमी थे। रास्ते भर चुहुल और विनोद होता गया। यहाँ बैठकर वनभोज हुआ। सामने नीचे की ओर ताल में नावों को दौड़ते और आगे मैदानी भूमि देखते रहे। सवा 6 बजे वहाँ से लौटे। दूसरे रास्ते से, जो केमल पीक(ऊँट-शिखर) की ओर से होकर आता है। चीना चुंगी तक हमें सड़क मिली। अब सूर्य भी डूब गया, और हमारे साथियों ने पगडण्डी पकड़ ली, जिसमें कितनी जगह सीधी खड़ी उतराई उतरनी थी। ऐसी ही जगह यदि पैर काँपने लगे, तो दोष क्या? जब सड़क पर पहुँचे, तो जान में जान आई। अन्धेरा हो जाने पर 8 बजे घर लौटे।

चन्द्रकांत जी कुल्लु से से लिख रहे थे कि मनाली में सेबों के बाग के साथ एक बहुत अच्छा 'बंगला' बिक रहा है। मनाली की सुषमा मेरे लिए आकर्षक हो सकती थी, लेकिन कमला उसके लिए तैयार नहीं थी। नैनीताल से अब मन उचट ही गया था। डॉ0 सत्यकेतु के मसूरी चले जाने पर हमारी भी डोरी उधर ही लगी हुई थी।

अभ्यास प्रश्न:आपने उपर्युक्त यात्रावृत्त का ध्यानपूर्वक पाठ किया है। अब आप निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दीजिए और उत्तरों को इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाइए।

अभ्यास प्रश्न-1निम्न कथन सत्य हैं या असत्य बताइए?

(क) नैनीताल में राहुल सांकृत्यायन हटन कॉटेज में रहे।(सत्य/असत्य)

.....

.....

(ख) अंग्रेजों के शासनकाल में नैनीताल प्रदेश की ग्रीष्मकालीन राजधानी थी।(सत्य/असत्य)

.....

.....

(ग) अंग्रेजों ने नैनी झील का पता नेपाल से कुमाऊँ छीनने(1814) के बाद पाया।(सत्य/असत्य)

.....

.....

अभ्यास प्रश्न-2अंग्रेजों के जाने के बाद नैनीताल की स्थिति में क्या परिवर्तन हुए? दो पक्तियों में उत्तर
दीजिए?

.....

.....

....

अभ्यास प्रश्न-3नैनीताल समुद्र सतह से कितने फुट की ऊँचाई पर स्थित है?

(क) लगभग 7000 फुट
(ख) लगभग 6000 फुट
(ग) लगभग 6500 फुट
(घ) लगभग 8000 फुट

.....

.....

अभ्यास प्रश्न-4नैनीताल का सर्वोच्च शिखर कौन सा है? एक पंक्ति में उत्तर दीजिए?

.....

.....

अभ्यास प्रश्न-5 नैनीताल का मुख्य आकर्षण है?

(क) नैना देवी मंदिर
(ख) नैनी झील
(ग) पर्वत
(घ) बाजार

14.4 यात्रावृत्त का सार

राहुल सांकृत्यायन ने लगभग सन् 1956 में अपनी धर्मपत्नी कमला के साथ नैनीताल में निवास किया। आरम्भ में वे वर्णनात्मक शैली में नैनी झील, बस अड्डे, तल्ली ताल, बाजार, डाकखाना, होटल, सिनेमा तथा मल्ली ताल आदि स्थलों का वर्णन करते हैं। 11 मार्च को किराए का बंगला देखने जाते हैं। बंगलों की तलाश करते हुए वे अल्मा कॉटेज, ग्लेनमोर, फर्न कॉटेज, हटन कॉटेज, डलहौसी कॉटेज, स्नाउडन कॉटेज, ओक लॉज आदि देखने जाते हैं। पहले इन बंगलोंमें अंग्रेज निवास करते थे। इन स्थलों का भ्रमण करते हुए वे इन बंगलों के वर्तमान मालिक कुमाउनी शाह लोग, जो व्यवसायी होते हैं, का वर्णन करते हुए कुमाउनी समाज पर भी दृष्टि डालते हैं। 14 मार्च को वे ग्लेनमोर बंगले में निवास करते हैं, वहाँ की अव्यवस्था देखकर वे सिर्फ एक रात गुजारकर दूसरे दिन ओक लॉज में निवास करते हैं।

इस यात्रावृत्त में राहुल जी नैनीताल के इतिहास व भौगोलिकता का भी रोचक वर्णन करते हैं।नैनीताल के इतिहास का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं, अंग्रेजों ने इस अद्भुत ताल का पता नेपाल से कुमाऊँ के छीनने(1814) के बाद पाया। फिर यहाँ बंगले बनने लगे तथा धीरे-धीरे नैनीताल प्रदेश की ग्रीष्म राजधानी बन गया। भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् अंग्रेजों के चले जाने से, जो नैनीताल चहल-पहल से युक्त था, वह अब सुनसान हो गया। उन्होंने अंग्रेजों के जाने से बंगलों व विद्यालयों की बुरी दशा का भी वर्णन किया है। इसमें नैनी झील, लड़ियाकंाठा, चीना पीक आदि पर्वत श्रेणियों के प्राकृत्रिक सौन्दर्य का सुंदर चित्रण किया। लड़ियाकांठा व चीना पीक पर्वत शिखर की यात्रा का रोचक वर्णन करते हुए लेखक ने यहाँ की वनस्पतियों बुरांश, व फलदार वृक्षों आड़ू, खुमानी, नाशपाती आदि का भी वर्णन किया है। अतः राहुल जी इस यात्रावृत्त में नैनीताल के प्राकृतिक सौन्दर्य, समाज, रहन-सहन, इतिहास व भौगोलिकता से पाठकों को अवगत कराते हुए उनका मनोरंजन और ज्ञानार्जन भी करते जाते हैं।

14.5 संदर्भ सहित व्याख्या

आपने यात्रावृत्त का ध्यान से अध्ययन किया है। आइए यहाँ हम महत्त्वपूर्ण अंशो की व्याख्या कर उसके अर्थ को ओर अधिक स्पष्ट करेगें। शेष महत्त्वपूर्ण अंशों की व्याख्या इकाई का अध्ययन कर आप स्वयं करने का प्रयास कीजिए।

उद्धरण: 1

नैनीताल को अब ग्रीष्म राजधानी कहने में हमारे प्रभुओं को संकोच हो हो रहा था, क्योंकि अंग्रेजों के बहुत से दफ्तरों को लखनऊ से यहाँ भेजना बन्द कर दिया गया था। लेकिन वह अभी आरम्भिक दिन थे, कांग्रेसी नेता आदर्शवाद के लिए शर्म करते भी झुकते थे। अभी उस समय के आने में कुछ देर थी, जब कि फिर मुख्यमंत्री और दूसरे मंत्रियों को नैनीताल फिर से बसाना था और तब नैनीताल के भाग्य में कुछ परिवर्तन होना भी जरूरी था।

संदर्भ: प्रस्तुत गद्यांश राहुल सांकृत्यायन के यात्रावृत्त 'नैनीताल में' से लिया गया है।

प्रसंग: अंग्रेजों के शासन में नैनीताल प्रांत की ग्रीष्म राजधानी होने से चहल-पहल से युक्त थी, उनके जाने के पश्चात् नैनीताल की स्थिति में जो परिवर्तन हुए, उसका वर्णन इसमें हुआ है।

व्याख्या: अंग्रेजों के शासनकाल में नैनीताल, प्रदेश की ग्रीष्म राजधानी थी। सन् 1947 में भारत के स्वतंत्र होने से अंग्रेज वापस अपने देश को चले गए। अब शासन चला रहे अधिकारियों को नैनीताल को प्रदेश की ग्रीष्म राजधानी बताने में शर्म महसूस हो रही थी। प्रदेश की राजधानी लखनऊ से अंग्रेजों के अनेक दफ्तरों का नैनीताल आना बंद हो गया था। अब नैनीताल जो पूर्व में चहल-पहल से युक्त था, एकदम सुनसान हो गया। लेखक ने कांग्रेसी नेताओं पर व्यंग्य करते हुए कहा है कि ये भारत की स्वतंत्रता के आरंभिक दिन थे, अतः कांग्रेसी नेता अपने को आदर्शवादी दिखाने का प्रयास करते थे। अब उस समय की प्रतीक्षा थी कि शासन फिर से मुख्यमंत्री और अन्य मंत्रियों को नैनीताल में बसाना आरम्भ करे, जिससे नैनीताल पुनः अपने खोए उत्कर्ष को प्राप्त कर सके।

विशेष:1. इसमें लेखक ने नैनीताल के अतीत से पाठकों को अवगत कराया है।

2. उक्त गद्यांश में सरल, सहज व बोलचाल की भाषा का प्रयोग हुआहै, इसमें व्यंग्यात्मक शैली द्वारा कांग्रेसी नेताओं के बनावटी आदर्शवाद पर व्यंग्य किया गया है।

उद्धरण: 2

नैनीताल के निचले भाग से सामने पश्चिम की ओर देखने पर सबसे ऊँचा जो शिखर दिखाई देता है, वही चीना पीक है। यह अंग्रेजो का दिया हुआ नाम है। पहले यह निर्जन-सा स्थान था और केवल पशुपालक यहाँ आया करते थे। सिर्फ साल में एक दिन नैना देवी के मेले के लिए झील के किनारे जंगल में मंगल हो जाता था। अंग्रेजों ने इस अद्भुत ताल का पता नेपाल से कुमाऊँ छीनने

(1814) के बाद पाया। फिर यहाँ बंगले बनने लगे तथा धीरे-धीरे नैनीताल प्रदेश की ग्रीष्म राजधानी बन गया।

संदर्भ: प्रस्तुत गद्यांश राहुल सांकृत्यायन जी के यात्रावृत्त 'नैनीताल में' से उद्धृत है।

प्रसंग: इस यात्रावृत्त में नैनीताल के नैसर्गिक सौन्दर्य का चित्रण किया गया है। लेखक यात्रा के साथ-साथ यहाँ के भौगोलिकता व इतिहास से भी पाठकों को परिचित कराते हुए चलता है।

व्याख्या: नैनीताल के नीचे के हिस्से से पश्चिम की ओर, जो सबसे ऊँची चोटी दिखाई देती है, उसका नाम चीन पीक है। यह नाम अंग्रेजों ने दिया था। आरम्भ में यह सुनसान और वीरान स्थल था, यहाँ पशुओं को चराने के लिए पशु-चालक आते थे। प्रतिवर्ष झील के किनारे स्थित नैना देवी के मंदिर में मेला लगता था और मेले से इस स्थान में चहल-पहल होती थी। पूर्व में कुमाऊँ व गढ़वाल क्षेत्र में नेपाल के गोरखों का शासन था, अंग्रेजों ने 1814 में गोरखों को पराजित कर यहाँ अपना शासन स्थापित किया। यहीं से अंग्रेजों को इस अद्भुत झील का पता चला। फिर उनके रहने के लिए बंगले बनने लगे तथा कालांतर में नैनीताल प्रदेश की ग्रीष्म राजधानी बन गई।

विशेष: 1. इसमें लेखक ने अंग्रेजों द्वारा नैनी झील का पता लगाने तथा नैनीताल के प्रदेश की ग्रीष्म राजधानी बनने की कथा को बड़ी रोचकता से प्रस्तुत किया है।

2. इस गद्यांश की भाषा सरल, सहज व मुहावरेदार है। 'जंगल में मंगल होना' जैसे मुहावरों के प्रयोग द्वारा भाषा की कलात्मकता निखरी है।

अभ्यास प्रश्न-6. निम्नलिखित उद्धरणों की सन्दर्भ सहित व्याख्या कीजिए ? अगर व्याख्या में कठिनाई महसूस हो तो निबंध को पुनः पढ़िए और इस इकाई का भी ध्यानपूर्वक अध्ययन कीजिए ?

उद्धरण: 1

मसूरी ने बीच में आकर फिर हमारे दिमाग में अनिश्चिन्तता पैदा कर दी। नैनीताल के लिए आकर्षण नहीं रह गया। तो भी मकान तो किराए, पर ले चुके थे, इसलिए उसकी सद्गति करनी जरूरी थी, और वर्षा के बाद ही यहाँ से चल सकते थे। आर्थिक स्थिति का पता अब हमें मालूम होने लगा था, क्योंकि ''अजगर करे ने चाकरी, पंछी करे न काम'' की वृत्ति पर गुजारा नहीं हो सकता था। एक जगह घर बनाकर रहना था, जिसका खर्च निश्चित था, इसलिए आमदनी भी निश्चित होनी चाहिए।

संदर्भ:.....

.....

.....

.....

प्रसंग:.....

.....

.....

.....

.....

व्याख्या:.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

विशेष:

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

उद्धरण: 2

मार्च का अन्त जाड़े का समय नहीं था, लेकिन साढ़े 6000 फुट ऊपर बसे नैनीताल (ओक लाज 7000 फुट) में अब भी जाड़ा था। 22 को पानी और ओला पड़ा। आड़ू, खुमानी, नाशपाती के फूल झड़ गये, अब उनमें फल आने की सम्भावना नहीं थी। 23 मार्च को सबेरे उठे, तो देखा सभी ऊँचे स्थान बर्फ से ढँके हैं। हमारे बंगले के आसपास भी बर्फ थी, जो दोपहर तक पिघल गई थी। सर्दी बहुत बढ़ गई थी।

संदर्भ:.....
.....
.....
.....

प्रसंग:.....
.....
.....
.....
.....

व्याख्या:.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....

.....

.....

विशेष:

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

14.6 स्थानीयता व तथ्यात्मकता

यात्रावृत्त, स्मारक साहित्य की महत्त्वपूर्ण विधा है, इसमें लेखक भ्रमण किए गए स्थानों का वर्णन अपनी स्मृतियों के आधार पर करता है। इसमें स्थानीयता,तथ्यात्मकता, आत्मीयता, वैयक्तिकता, कल्पनाशीलता, रोचकता एवं भाषा शैली आदि तत्व होते हैं। अब हम यात्रावृत्त 'नैनीताल में' की समीक्षा यात्रावृत्त के इन तत्वों के आधार पर करेंगे।

सर्वप्रथम हम यात्रावृत्त के मूल तत्व स्थानीयता व तथ्यात्मकता को समझने का प्रयास करेंगे। ये वे मूल तत्व हैं, जो यात्रावृत्त को स्मारक साहित्य की अन्य विधाओं से अलग करते हैं। स्थानीयता से अभिप्राय उस स्थान विशेष के प्राकृतिक सौन्दर्य, रीति-रिवाज, रहन-सहन तथा जीवन दर्शन आदि के चित्रण से है, जिसका यात्रा-वृतांत प्रस्तुत किया जा रहा है। प्रस्तुत यात्रावृत्त में राहुल जी ने नैनी झील एवं चीना पीक, लड़ियाकांठा, केमल पीम, आदि पर्वत शिखरों के प्राकृतिक सौन्दर्य को वर्णित किया है। यहाँ अंग्रेज बंगलों में रहते थे, इन बंगलों में अल्मा कॉटेज, स्नाउडन कॉटेज, ग्लेनमोर, फर्न कॉटेज, हटन कॉटेज, डलहौसी कॉटेज तथा ओक लाज आदि का उल्लेख इसमें हुआ है। अंग्रेजों के समय में नैनीताल प्रदेश की ग्रीष्म राजधानी थी, कालांतर में उसकी स्थिति में जो परिवर्तन हुए उसका वर्णन करते हुए लेखक ने लिखा है, ''दूर-दूर के बंगलों के दिन लौटेंगे, इसकी आशा नहीं थी। नैनीताल में बहुत से यूरोपियन स्कूल थे, जो थोड़े से भारतीय लड़कों को भी ले लिया करते थे। अब उनमें से कितने ही बन्द हो चुके थे और कुछ को दूसरों ने लेकर अपनी संस्था खोली थी। बिड़ला विद्यामंदिर उन्हीं में से एक था।'' इसमें पर्यटन नगरी के होटल व्यवसाय की बुरी स्थिति का भी वर्णन हुआ है।

यात्रावृत्त में तथ्यात्मकता से आशय, उस स्थान विशेष के तथ्यों के चित्रण से है। इस यात्रावृत्त में नैनीताल की विगत घटनाओं का वर्णन हुआ है। पूर्व में कुमाऊँ व गढ़वाल में नेपाल के गोरखों का शासन था। बाद में अंग्रेजों ने गोरखों को पराजित कर सन् 1813 में यह क्षेत्र अपने अधिकार में लिया। यहाँ की जलवायु उनके अनुकूल होने से धीरे-धीरे उन्होंने यहाँ बसना आरम्भ किया। कालांतर में नैनीताल प्रदेश की ग्रीष्म राजधानी बन गई। अतः इसमें लेखक ने नैनीताल की भौगोलिक पृष्ठभूमि के साथ-साथ यहाँ के अतीत का तथ्यात्मक वर्णन किया है।

अभ्यास प्रश्न-7 यात्रावृत्त से क्या अभिप्राय है और इसकी समीक्षा किन तत्वों के आधार पर की जाती है? चार पंक्ति में उत्तर दीजिए?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

अभ्यास प्रश्न-8'नैनीताल में' यात्रावृत्त में स्थानीयता व तथ्यात्मकता से आप क्या समझते हैं? तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए?

.....

.....

.....

.....

अभ्यास प्रश्न-9 निम्न कथन सत्य हैं या असत्य बताइए?

(क) स्थानीयता, यात्रावृत्त का वह मूल तत्व है, जो स्मारक साहित्य की अन्य विधाओं में भी मिलता

है। (सत्य/असत्य)

.....

(ख) तथ्यात्मकता से आशय स्थान विशेष के तथ्यों के चित्रण से है।(सत्य/असत्य)

.....

14.7 आत्मीयता व वैयक्तिकता

यायावर स्थान विशेष की यात्रा में उस भू-भाग या दृश्य के प्रति गहन आत्मीयता और लगाव अनुभव करता है, यही आत्मीयता से उसका यात्रा वर्णन उत्कृष्ट बन पाता है। राहुल सांकृत्यायन ने देश और विदेश की अनेक यात्राएँ की, पर उनका मन विदेश की अपेक्षा देश की यात्राओं में अधिक रमा है। देश की यात्राओं में हिमालय उनके आकर्षण का विशेष केन्द्र रहा है।

इस यात्रावृत्त में पर्वतीय नगरीय नैनीताल के प्रति उनकी गहन आत्मीयता को अनेक स्थलों पर अनुभव किया जा सकता है। एक उदाहरण दृष्टव्य है-'' नैनीताल को अब ग्रीष्म राजधानी कहने में हमारे प्रभुओं को संकोच हो रहा था, क्योंकि अंग्रेजों के बहुत-से दफ्तरों को लखनऊ से यहाँ भेजना बन्द कर दिया था।..... अभी उस समय के आने में कुछ देर थी, जबकि फिर मुख्यमंत्री और दूसरे मंत्रियों को नैनीताल को फिर से बसाना था, और तब नैनीताल के भाग्य कुछ परिवर्तन होना भी जरूरी था।''

इस यात्रावृत्त में लेखक ने अपने यात्रा स्थल में मिलने व्यक्तियों जैसे विश्वरंजन, हीरालाल शाह, बाँकेलाल कंसल, डॉ0 केसरवानी, डॉ0 मायादास, जगदीश नारायण, शीतल प्रसाद आदि का उल्लेख किया है। उन्होंने यहाँ की वनस्पतियों व फलदार वृक्षों बुरांश, आड़ू, खुमानी, नाशपाती के साथ-साथ बदलते मौसम बारिश, ओलावृष्टि, हिमपात आदि का भी आत्मीय चित्रण किया है।

यात्रा में लेखक को अपनी अभिरूचि का गहन बोध होता है। उसे प्रवास अवधि में अपनी वैयक्तिक रूचियों और रहन-सहन की आदतों के कारण असुविधाएं भी अनुभव होती हैं। उसकी यही वैयक्तिकता का तत्व स्मारक साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा यात्रा साहित्य में अधिक परिलक्षित होता है। एक उदाहरण दृष्टव्य है- ''मैनें झुँझलाकर कहा-''कमला की औंधी खोपड़ी इसे माने तब ना। जीभ औषध ग्रहण करने में रूकावट डाल रही है।'' अतः इस यात्रावृत्त में वैयक्तिकता अनेक स्थलों पर प्रकट हुई है।

14.8 कल्पनाशीलता व रोचकता

यात्रावृत्त में लेखक भम्रण किए गए स्थलों को कल्पना द्वारा ही स्मृति पटल पर लाता है। वह यात्रा में देखे गए दृश्यों, प्राणियों, और प्रकृति के विविध रूपों को अपनी कल्पनाशीलता द्वारा पुनः सृजित करता है। उसकी यह कल्पना यथार्थ पर आश्रित होती है।

नैनीताल की नैनी झील तथा अन्य पर्यटन स्थलों की प्राकृतिक सुषमा का लेखक ने कल्पनाशीलता द्वारा सजीव चित्रण किया है और पाठकों को यह अनुभव होता है, मानो वे स्वयं भी यात्रा कर रहे हों। एक उदाहरण दृष्टव्य है, ''नैनीताल का श्रृंगार वहाँ का ताल है, जो किसी भी पर्वतीय विलासपुरी में नहीं है।'' अतःलेखक की कल्पनाशीलता इस यात्रावृत्त में स्पष्ट अनुभव की जा सकती है।

रोचकता, यात्रावृत्त का आवश्यक तत्व है, इसके अभाव में यात्रा-वर्णन नीरस इतिहास के समान हो जाता है। इस यात्रावृत्त में लेखक ने अपने यात्रा अनुभव, रोमांचक घटनाओं आदि को रोचकता से वर्णित किया है। उसने नैनीताल के सर्वोच्च शिखर चीना पीक तथा लड़ियाकांठा की

यात्रा का रोचक वर्णन किया है। लेखक का विनोदी स्वभाव भी इस यात्रा में प्रकट हुआ है। एक उदाहरण दृष्टव्य है-'' हम छः आदमी थे। रास्ते भर चुहुल और विनोद होता गया। यहाँ बैठकर वनभोज हुआ। सामने नीचे की ओर ताल में नावों को दौड़ते और आगे मैदानी भूमि देखते रहे, ...अब सूर्य भी डूब गया और हमारे साथियों ने पगडण्डी पकड़ ली, जिसमें कितनी जगह सीधी खड़ी उतराई थी। ऐसी जगह यदि पैर काँपने लगे, तो दोष क्या? जब सड़क पर पहुँचे, तो जान में जान आई।''

अभ्यास प्रश्न-10 आत्मीयता व वैयक्तिकता से क्या तात्पर्य है? चार पंक्ति में उत्तर दीजिए?

.....
.....
.....
.....
.....
.....

अभ्यास प्रश्न-11 कल्पनाशीलता व रोचकता से आप क्या समझते हैं? चार पंक्ति में उत्तर दीजिए?

.....
.....
.....
.....
.....
.....

अभ्यास प्रश्न-12 निम्न कथन सत्य हैं या असत्य बताइये?

(क) राहुल सांकृत्यायन जी का मन देश की यात्राओं की अपेक्षा विदेशों में अधिक रमा है। (सत्य/असत्य)

.....
.....

(ख)वैयक्तिकता स्मारक साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा यात्रावृत्त में अधिक प्रकट होती है। (सत्य/असत्य)

.....
.....

(ग)रोचकता के अभाव में यात्रावृत्त नीरस इतिहास बन जाते हैं। (सत्य/असत्य)

.....

.....

14.9 संरचना शिल्प

राहुल सांकृत्यायन ने अपने यात्रावृत्तों के द्वारा आधुनिक युग के यात्रावृत्त की आधारशिला रखी है। वे जन्मजात घुमक्कड़ थे। उन्होंने यात्रा संबंधी प्रचुर रचनाएं हिन्दी साहित्य को दी है। संरचना शिल्प के अंतर्गत भाषा और शैली आदि तत्व आते हैं, आइए हम इस यात्रावृत्त की भाषा और शैली संबंधी विशेषताओं पर विचार करें

14.9.1 भाषा:

राहुल जी ने संस्कृतनिष्ठ पाण्डित्यपूर्ण हिन्दी की अपेक्षा सरल, सुबोध औरव्यावहारिक भाषा का प्रयोग किया है। उन्होंने भाषा को किलष्ट न बनाते हुए सरल और सुबोध बनाए रखने के लिए ही विषयानुकूल शब्दावली प्रयुक्त की है। इस यात्रावृत्त में मुख्यतः तत्सम, तद्भव, देशज, अरबी-फारसी तथा अंग्रेजी शब्दावली का प्रयोग हुआ है। इसमें तत्सम शब्दों में श्रृंगार, ज्येष्ठ, जीर्ण, अवस्थित, दुर्गति, परिणत, दुरारोह आदि शब्द प्रयोग हुए हैं। अरबी-फारसी शब्दों में इमारत, अफसोस, आमदनी, दफ्तर, बाजार, आराम, सफाई, किराया, मरम्मत आदि बोलचाल के शब्दों को भी मुक्त मन से प्रयुक्त किया है। अंग्रेजी शब्दावली में म्युनिसिपल लाइब्रेरी, काटेज, यूरोपियन, टेम्परेचर, पिकनिक आदि शब्दों को बिना किसी संकोच के अपनाया गया है।

उन्होंने वाक्य रचना में छोटे-छोटे सरल वाक्यों का प्रयोग इस यात्रावृत्त के अधिकांश स्थलों में किया है। एक उदाहरण- '' हमने उसके ही गुण ही देखे, उसी पर मुग्ध होकर कह दिया, दो कमरे कल तैयार कर दिये जाएँ।''

राहुल जी ने भाषा की चुस्ती और रोचकता को बनाए रखने के लिए आवश्यकतानुसार कहावतों और मुहावरों का भी प्रयोग किया है। जैसे- 'साढ़े साती सनीचर का कोप', अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम', 'जंगल में मंगल', 'जान में जाना आना' आदि। इन कहावतों और मुहावरों के प्रयोग से भाषा की अर्थवत्ता बढ़ी है और भावों की अभिव्यक्ति सहज हुई है।

14.9.2 शैली:

यह एक यात्रावृत्त है, यात्रावृत्त मुख्यतः वर्णनात्मक एवं विवरणात्मक शैली में ही लिखे जाते हैं। इस यात्रावृत्त में अधिकांश स्थलों में वर्णनात्मक एवं विवरणात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। लेखक ने वर्णनात्मक शैली में नैनीताल का वर्णन करते हुआ लिखा है। ''बस का अड्डा तल्ली (निचले) ताल में है। यहाँ भी बाजार है और बड़ा डाकखाना भी यहीं है। कुलियों

पर सामान उठवाकर ताल को बाईं छोड़ते हम सड़क के आगे बढ़े। थोड़ी ही दूर आगे पहाड़ की ओर दूकानें और होटल शुरू हो गए। यहीं सिनेमा भी है। ताल के परले छोर को मल्ली(उपरला) ताल कहते हैं।''

लेखक यात्रा स्थल के प्राकृतिक सौन्दर्य पर मोहित होकर उसका मनमोहक चित्र अंकित करने के लिए चित्रात्मक शैली का प्रयोग करता है। राहुल जी ने नैनीताल में हिमपात का सुंदर चित्रण करते हुए लिखा है-'' सर्द स्थानों में टेम्परेचर गिरने के साथ बरसता पानी बजरी के रूप में परिणत होता है, और कुछ सर्दी ओर बढ़ने पर वह हिम बन जाता है। अधिक सर्दी होने पर कणों के रूप में नहीं, बल्कि रूई के बड़े-बड़े फाहों के रूप में हिम हवा में तैरते हुए गिरने लगता है।''

आधुनिक यात्रावृत्तों में व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग यात्रा-वृत्त के बीच-बीच में किया जाता है। इस यात्रा-वृत्त में लेखक ने व्यंग्यात्मक शैली द्वारा कांग्रेसी नेताओं के दिखावटी आदर्शवाद पर व्यंग्य करते हुए लिखा है-'' लेकिन, वह अभी आरम्भिक दिन थे, कांग्रेसी नेता आदर्शवाद के लिए शर्म करते भी झुकते थे। इसके अतिरिक्त इतिवृत्तात्मक व भावात्मक शैली का भी प्रयोग इसमें हुआ है। अतः इस यात्रावृत्त में लेखक द्वारा सभी शैलियों का समन्वित प्रयोग हुआ है।

14.10 प्रतिपाद्य

प्रस्तुत यात्रावृत्त में लेखक ने पर्वतीय नगरी नैनीताल की भौगोलिक स्थिति और ऐतिहासिक महत्त्व का विवरण दिया है, वहीं दूसरी ओर यहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य, जन-जीवन, रहन-सहन आदि के मनमोहक चित्र दिए हैं। वह अपनी यात्रा के मध्य समय-समय पर मिलने व्यक्तियों का उल्लेख करना भी नहीं भूला है। इस यात्रावृत्त में वह अदृश्य भाव से सर्वत्र उपस्थित रहकर उसने यहाँ का आत्मीय वर्णन किया है। इस यात्रावृत्त में इतिवृत्तात्मकता की अधिकता है। इस यात्रावृत्त का महत्त्व इसमें है कि वह पाठकों का मनोरंजन करने के साथ-साथ नैनीताल के भौगोलिक और ऐतिहासिक तथ्यों से पाठकों को अवगत कराता है। अतः यात्रावृत्त मनोरंजन व ज्ञानवर्द्धन करने के साथ-साथ नवयुवकों को यात्रा के लिए प्रेरित कर उनमें उत्साह, साहस आदि भावों को भी जाग्रत करते हैं।

14.11 सारांश

इस यात्रावृत्त लेखक नैनीताल की भौगोलिक स्थिति, प्रमुख स्थलों की जानकारी देते हुए पाठकों को यहाँ के ऐतिहासिक तथ्यों से भी अवगत कराता चलता है। इसमें नैनीतालके प्राकृतिक सौन्दर्य, जन-जीवन तथा रहन-सहन आदि का चित्रण हुआ है। यात्रावृत्त की समीक्षा स्थानीयता, तथ्यात्मकता, आत्मीयता, वैयक्तिकता, कल्पनाशीलता व रोचकता आदि तत्वों के आधार पर की जाती है। आप इस इकाई का अध्ययन कर इन तत्वों के आधार पर 'नैनीताल में' यात्रावृत्त की समीक्षा कर सकते हैं।यात्रावृत्त की भाषा सरल, सुबोध तथा व्यावहारिक है। इसमें तत्सम, तद्भव, अरबी-फारसी तथा अंग्रेजी के बोलचाल के शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ है। भाषा की चुस्ती और रोचकता के लिए कहावतों और मुहावरों का भी प्रयोग किया गया है।प्रस्तुत यात्रावृत्त की शैली मुख्यतः वर्णनात्मक और विवरणात्मक है, इसके साथ-साथ चित्रात्मक, व्यंग्यात्मक, इतिवृत्तात्मक तथा भावात्मक आदि शैलियों का समन्वित व सफल प्रयोग हुआ है। यात्रावृत्त का मुख्य प्रतिपाद्य मनोरंजन के साथ ज्ञानार्जन होता है। इसका विवेचन आप इस इकाई को पढ़कर स्वयं कर सकते हैं।

14.12 पारिभाषिक शब्दावली

ज्येष्ठ-	बड़ा, पद, मर्यादा, वय आदि में किसी से बढ़ा या बढ़कर।
अवस्थित-	उपस्थित, मौजूद।
अफसोस-	शोक, दुख, पश्चाताप, खेद।
वृत्ति-	जीविका, रोजी, पेशा, व्यापार कार्य, स्वभाव।

दुर्गति- बुरी गति, दुर्दशा।

परिणत- एक रूप से दूसरे में आया हुआ, रूपान्तरित।

निरगंध- बिना किसी गंध का।

अतिरक्त- अत्यधिक लाल।

निर्जन- जहाँ कोई न हो, सुनसान, एकांत।

दुर्भाग्य- बुरा भाग्य, खोटी किस्मत।

पगडण्डी- जंगलों या खेतों में का वह पतला रास्ता जो लोगों के आने-जाने से बनता है।

सुषमा- बहुत अधिक शोभा, सुन्दरता।

आकर्षक- जिसमें आकर्षण हो, खींचनेवाला, सुन्दर।

यायावर- वह जो एक जगह टिककर न रहता हो, खानाबदोश

आत्मीय- निज का, अपना।

14.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1-(क) असत्य

(ख) सत्य

(ग) सत्य

2-विद्यार्थी इस प्रश्न का उत्तर 'यात्रावृत्त का पाठ' शीर्षक से पढ़कर लिखेंगे।

3- (ग)

4- विद्यार्थी इस प्रश्न का उत्तर 'यात्रावृत्त का पाठ' शीर्षक से पढ़कर लिखेंगे।

5- (ख)

6-विद्यार्थी उद्धरण 1 एवं 2 की व्याख्या के लिए शीर्षक 'संदर्भ सहित व्याख्या' को ध्यान से पढ़ेगे।

7-विद्यार्थी इस प्रश्न का उत्तर 'स्थानीयता व तथ्यात्मकता' शीर्षक से पढ़कर लिखेंगे।

8-विद्यार्थी इस प्रश्न का उत्तर 'स्थानीयता व तथ्यात्मकता' शीर्षक से पढ़कर लिखेंगे।

9-(क) असत्य

(ख) सत्य

10-विद्यार्थी इस प्रश्न का उत्तर 'आत्मीयता व वैयक्तिकता' शीर्षक से पढ़कर लिखेंगे।

11-विद्यार्थी इस प्रश्न का उत्तर 'कल्पनाशीलता व रोचकता ' शीर्षक से पढ़कर लिखेंगे।

12. (क) असत्य

(ख) सत्य

(ग) सत्य

14.14 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. राहुल सांकृत्यायन- 'नैनीताल में' 'पहाड़ पत्रिका' परिक्रमा, तल्ला डांडा, नैनीताल,अंक 7
2. रेखा ढैला, निर्मला ढैला -'स्मारक साहित्य एवं उसकी विधाएँ', ग्रन्थायन प्रकाशन अलीगढ़,संस्करण 1999।
3. ब्रजेश कुमार श्रीवास्तव -'राहुल सांकृत्यायनः एक इतिहासपरक अनुशीलन, किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2010।
4. डॉ0 कृष्ण देव झारी -'साहित्य सिद्धान्त और साहित्य विधाएं', शारदा प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2008।

14.15 उपयोगी पुस्तकें

1. राहुल सांकृत्यायन - 'नैनीताल में' 'पहाड पत्रिका', परिक्रमा, तल्ला डांडा, नैनीताल, अंक 7
2. रेखा ढैला, निर्मला ढैला -'स्मारक साहित्य एवं उसकी विधाएँ', ग्रन्थायन प्रकाशन अलीगढ़संस्करण 1999।
3. केशवदत्त रूवाली, जगतसिंह बिष्ट-'हिन्दी स्मारक साहित्य', ग्रन्थायन प्रकाशन अलीगढ़।
4. उर्मिलेश - 'राहुल सांकृत्यायनः सृजन और संघर्ष, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली।
5. डॉ0 नगेन्द्र - 'हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पैपरबैक्स, नोएड़ा,संस्करण 2009।

14.16 निबंधात्मक प्रश्न

1. यात्रावृत्त के तत्वों के आधार पर 'नैनीताल में' यात्रावृत्त की समीक्षा कीजिए?
2. 'नैनीताल में' यात्रावृत्त की भाषा और शैली संबंधी विशेषताओं पर प्रकाश डालिए?

इकाई 15 पानी और पत्थर : समीक्षा और पाठ

इकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 यात्रा वृत्तांत विधागत एक परिचय

15.4 पानी और पत्थर एक पाठ

15.5 सारांश

15.6 शब्दावली

15.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

15.8 सन्दर्भ सूची

15.9 उपयोगी पुस्तकें

15.10 निबंधात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

'टाइम्स ऑफ़ इंडिया', 'दिनमान' और 'दूरदर्शन' में महत्वपूर्ण पदों पर सेवायें देने वाले नेत्र सिंह रावत की यात्रा किताब 'पत्थर और पानी' हिन्दी यात्रा साहित्य की अनुपम कृति मानी जाती है. संभावना प्रकाशन, हापुड़ से सन् 1982 में प्रकाशित यह किताब उत्तराखंड कुमाऊ के 'मुन्स्यारी से मिलम ग्लेशियर' तक की शब्द यात्रा है. ऐसी शब्द यात्रा जो किताब के आखिर पन्ने पर भी विराम नहीं लेती है. घनघोर और वीरान जंगल में चलायमान 'हलकारा' (डाकिया) के भाले में बंधे घुंघरू की खड़म-खड़म-खड़म... खिन-खिन-खिन...आवाज के साथ आज भी अनवरत जारी है. इस नाते यह किताब यात्रा संस्मरण से आगे निकलकर किसी क्षेत्र विशेष की पारिस्थिकीय और मानवीय समाज का चिरकालीन जीवन स्पंदन है.[1]

15.2 उद्देश्य

इस पाठ का उद्देश्य है विद्यार्थियों को यात्रा लेखन विधा के साथ साथ स्थानीय जनजीवन और लेखक की यात्रा से परिचत कराते हुए उन्हें अपने परिवेश से जोड़ना और पर्यावरण व सामजिक सांस्कृतिक संजालों से परिचत कराना. भारत-चीन युद्ध-1962' के बाद मध्य हिमालय के सीमांतवर्ती जोहारी और तिब्बती समाज के सदियों पूर्व परम्परागत व्यापारिक रिश्ते अचानक खत्म हो गए थे. इस घटना ने जोहारी जन-जनजीवन को बुरी तरह प्रभावित किया. 'पानी और पत्थर' किताब जोहारी समाज की इसी वेदना का प्रकटीकरण है. इस सजग जोहारी समाज के सांस्कृतिक सन्दर्भों से विद्यार्थियों को परिचत कराना इस इकाई का मुख्य उद्देश्य है।

15.3 यात्रा वृत्तांत विधागत एक परिचय

यात्रा वृत्तांत, किसी यात्री के यात्रा के अनुभवों का सच्चा विवरण होता है। इसमें यात्री की आंतरिक दुनिया का वर्णन भी होता है। यात्रा वृत्तांत, पाठकों को मनोरंजन के साथ-साथ, किसी जगह पर जाने के लिए जानकारी भी देते हैं। यात्रा वृत्तांत लेखन एक आकर्षक साहित्यिक विधा है। इसमें कहानी कहने, वर्णनात्मक भाषा, और स्थान की भावना को बुनना शामिल होता है। यात्रा वृत्तांत में आत्मीयता, वैयक्तिकता, कल्पनाशीलता, और रोचकता का विशेष महत्व होता है।

यात्रा वृत्तांत लिखने के लिए, किसी ऐसे गंतव्य का चयन करें जिसने आप पर महत्वपूर्ण प्रभाव छोड़ा हो। यात्रा के दौरान अपने अनुभवों, भावनाओं, और अवलोकनों पर विचार करें. अपने विचारों को व्यवस्थित करें और अपनी कथा को संरचित करने के लिए एक रूपरेखा बनाएँ.

कुछ प्रसिद्ध यात्रा वृत्तांतकार और उनकी रचनाएं:

- भारतेंदु हरिश्चंद्र - सरयू पार की यात्रा, लखनऊ की यात्रा, हरिद्वार की यात्रा
- सत्यदेव परिव्राजक - मेरी कैलाश यात्रा (1915), मेरी जर्मन यात्रा (1926)
- राहुल सांकृत्यायान - मेरी तिब्बत यात्रा, मेरी लद्दाख यात्रा, किन्नर देश में, रूस में 25 मास, तिब्बत में

यह यात्रा वृतांत 'पत्थर और पानी' इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि इसमें लेखक के मिलम ग्लेशियर की यह यात्रा जाने से ज्यादा एक यात्री का अपनी जड़ों की ओर लौटना है. बचपन को छू कर उससे मुलाकात करना है. सारे रास्ते भर उसका रोमांच और रोमांस अपनी बचपन की यादों के साथ चलता रहता है. वह थकता है, तो उसे बचपन में इन्हीं रास्तों पर मां की पीठ में चढ़ने वाली जिद्द याद आ जाती है. कल्चूनिया पक्षी को देखता है तो 'काली छूं, कल्चूनी छूं, बड़े बाप की बेटी छूं...' बचपन में सुना गीत गुनगुनाने का मन होने लगता है. असल में साथ चल रहे दो साथियों (मीना और गोपाल) के अलावा उसकी बचपन की यादें भी उसके साथ-साथ चल रही हैं. यादों का क्या कभी भी मुहं उठा कर सामने खड़ी हो जाती हैं. अब आगे बढ़ने से पहले उनसे निपटो. राह चलते खतरनाक स्थिति, रात और अकेलापन हो तो जाने क्यों बचपन में सुनी डर वाली बातें ही ज्यादा याद रहती हैं ? अब यही देख लो राड़गाडि में लेखक पहुंचा ही था कि बचपन में सुना उस जगह का राक्षस याद आ गया. आपसे भी मुलाकात कराता हूं उस राक्षस की- 'यदि कोई अकेला राही राड़गाड़ि में ठहर जाए तो आधी रात में दूर पहाड़ों से 'लागो' (पिचाश) की आवाज आती है – 'एकौल छई, द्वकौल'(अकेला है या दूसरा भी है साथ में?)... पिचाश को उल्लू बनाने के लिए उसे बुलंद आवाज में जवाब देना पड़ता है – द्वकौल छुंई-द्वकौल (दो हैं जी, दो हैं (द्वकौल में दो से ज्यादे का अर्थ भी निहित है)... यह जवाब मिल गया तो पिचाश चुप हो जाता है, न मिला या कहने वाला कह गया कि वह अकेला है तो वह पिचाश पहाड़ों से उतर आता है 'थौड़' (अड्डे) तक और राही को खा जाता है.' [2] अपने कथ्य और शिल्प में यह अनूठा यात्रा वृतांत है

15.4 पानी और पत्थर एक परिचय

इस किताब की भूमिका सुप्रसिद्ध कथाकार और संपादक पंकज बिष्ट ने लिखी है.वे इस यात्रा वृतांत के लगभग सभी पक्षों की तरफ पाठक का ध्यान आकृष्ट करते हैं. 'पत्थर और

पानी' यात्रा किताब आज से 44 साल पूर्व 'मुन्स्यारी से मिलम ग्लेशियर' तक 56 किमी. की एक पैदल यात्रा की साक्षी है. आज से लगभग 44 साल पहले (सन् 1980) की यह यात्रा उससे भी 40 साल पूर्व (सन् 1940) के जोहार संस्कृति के कई आकर्षक बिम्बों को सामने लाती है. वास्तव में यह यात्रा वृतांत अतीत के साये में वर्तमान का आंकलन करते हुए भविष्य की ओर चलायमान है. जोहार में प्रकृति की धमक आज भी वैसी ही है, बस इंसान की चमक फीकी हुई है. गदराई गोरी नदी का प्रवाह उसी लय-ताल में है, परन्तु उसके तट पर बसी जोहारी सभ्यता वहां सिमटने को है. स्थानीयता बनाम आधुनिकता का संघर्ष इस यात्रा में कदम-कदम पर है. यह जोहार के अतीत का गुणगान करती है पर खुद अतीतजीवी नहीं है. जोहार की गोरी नदी के तेज प्रवाह की तरह जोहारी संस्कृति के तेजी से बदलते रंग-ढंग की जीवंतता और ताजगी इस किताब में है.

श्री नेत्रसिंह रावत का जन्म 23 जून 1938 को उत्तरांचल के जोहार क्षेत्र के गनघर नामक छोटे से गाँव में हुआ था। उनकी शिक्षा बी.ए. तक नैनीताल में और उसके बाद मुंबई में हुई । 'टाइम्स ऑफ इंडिया' संस्थान में 17 वर्ष तक पत्रकारिता की । दस साल 'दिनमान' के संपादकीय विभाग में रहे । गंभीर और सुचिंतित लेखन भी किया । मार्च 1978 में दूरदर्शन में सहायक केन्द्र निदेशक के पद पर नियुक्त हुए । दूरदर्शन के लिए अनेक वृत्तचित्रों का निर्माण । 'माघ मेला' वृत्तचित्र पर्याप्त चर्चित - 'माघ मेला' की विषय-वस्तु हिमालय की चिंता ही थी । दूरदर्शन में केन्द्र निदेशक के पद पर रहते हुए 4 फरवरी 1990 को दिल्ली में आकस्मिक निधन हुआ । इस किताब में अपने बचपन से सीधे अधेड़ावस्था में मिलम ग्लेशियर के पास पुश्तैनी गांव गनघर की ओर आए नेत्र सिंह रावत के साथ उनकी पत्नी मीना और पोर्टर-गाइड गोप सिंह (जिसे यात्रा में गोपाल नाम दिया गया है) भी हैं. 'ग्लेशियर में रंगीन कपड़े पहने से आंछरियां (देवबालाएं) हर (मोहजाल में फंसा कर गायब करना) लेती हैं, इसलिए रंगीन कपड़े नहीं ले जाना है'. परिवार के लोगों की यह सलाह किताब की शुरुवाती लाइन है. प्रकृत्ति के प्रति स्थानीय मान्यताओं को मानने और न मानने का द्वन्द्व लेखक के मन-मस्तिष्क में यहीं से शुरू हो जाता है. मुन्स्यारी से लीलम, बोग्ड्यार, रुप्सी बगड़, पंचपाल उड्यार (पंचपालों की गुफा), राड़गाड़ि, मांपाङ, रिल्कोट, टोला, मिलम और गनघर से गुजरते हुए ऐसी ही अनेक मान्यताओं, किस्सों, घटनाओं और अनुभवों का जिक्र करते यह यात्रा अपने मुकाम पर पहुंचती है. लेखक के लिए मिलम ग्लेशियर की यह यात्रा जाने से ज्यादा एक यात्री का अपनी जड़ों की ओर लौटना है. बचपन को छू कर उससे मुलाकात करना है. सारे रास्ते भर उसका रोमांच और रोमांस अपनी बचपन की यादों के साथ चलता रहता है. वह थकता है, तो उसे बचपन में इन्हीं रास्तों पर

मां की पीठ में चढ़ने वाली जिद् याद आ जाती है. कल्चूनिया पक्षी को देखता है तो 'काली छूं, कल्चूनी छूं, बड़े बाप की बेटी छूं...' बचपन में सुना गीत गुनगुनाने का मन होने लगता है. असल में साथ चल रहे दो साथियों (मीना और गोपाल) के अलावा उसकी बचपन की यादें भी उसके साथ-साथ चल रही हैं. यादों का क्या कभी भी मुहं उठा कर सामने खड़ी हो जाती हैं. अब आगे बढ़ने से पहले उनसे निपटो. राह चलते खतरनाक स्थिति, रात और अकेलापन हो तो जाने क्यों बचपन में सुनी डर वाली बातें ही ज्यादा याद रहती हैं ? अब यही देख लो राड़गाडि में लेखक पहुंचा ही था कि बचपन में सुना उस जगह का राक्षस याद आ गया. आपसे भी मुलाकात कराता हूं उस राक्षस की- 'यदि कोई अकेला राही राड़गाड़ि में ठहर जाए तो आधी रात में दूर पहाड़ों से 'लागो' (पिचाश) की आवाज आती है – 'एकौल छई, द्वकौल'(अकेला है या दूसरा भी है साथ में?)... पिचाश को उल्लू बनाने के लिए उसे बुलंद आवाज में जवाब देना पड़ता है – द्वकौल छुंई-द्वकौल (दो हैं जी, दो हैं (द्वकौल में दो से ज्यादे का अर्थ भी निहित है)... यह जवाब मिल गया तो पिचाश चुप हो जाता है, न मिला या कहने वाला कह गया कि वह अकेला है तो वह पिचाश पहाड़ों से उतर आता है 'थौड़' (अड्डे) तक और राही को खा जाता है.' [3]

ये यात्रा किताब बताती है कि बचपन के अहसास को छूने की कितनी उत्सुकता और जल्दी होती है. 'हाथ में बर्तन लेकर मैं गोरी की तरफ लपका. पानी लाने की उतनी जल्दी नहीं थी, जितनी उसे छूने और चखने की जल्दी थी. गोरी के पानी को छूते ही मैंने महसूस किया कि वह वैसा ही है, जैसा तीस-बत्तीस साल पहले था... हल्का दूधिया, जिसे पीते वक्त ठंड से दांत सुन्न हो जाते हैं. पानी आंतों से नीचे उतरता है तो नानी याद आ जाती है. उसे पीते वक्त लगभग किलकारते हुए औरतें कहती ही हैं- 'हे आमा ऽ ऽ ऽ, दांत कुनी गे' (ओ मां, दांत सुन्न हो गये)[4]

यात्रायें पर्यटक के लिए रहस्य और रोमांच होती हैं, पर स्थानीय व्यक्ति के लिए निपट आय उपार्जन का ही साधन है. क्योंकि प्रकृत्ति के रहस्य और रोमांच का वह भोगी नहीं वरन भुक्तभोगी होता है. लेखक की अपने पोर्टर से बातचीत इस तथ्य को बखूबी समझा देता है. 'बोझ उठाकर वह साथ चलने लगा तो मैंने उसे समझाने की कोशिश की-बिस्तर तुम्हारे पास नहीं है, पैर में जूते नहीं हैं और जा रहे हो जोहार-मिलम ग्लेशियर.... गोप सिंह अपना बिस्तर न रखने की बात तो गोल कर गया, लेकिन जूते के विरुद्ध उसकी टिप्पणी थी –कपड़े के जूते पर कौन पैसे बरबाद करेगा ? पिछले महीने चैदह रुपए में कपड़े के जूते लिये थे, लेकिन सात दिन भी नहीं चले...'[5]

मिलम ग्लेशियर पार करते हुए गोपाल (पोर्टर-गाइड) को देखते हुए नेत्र सिंह रावत की नज़र आपके नज़र हाजिर है- 'वह आगे बढ़ा तो मैं उसके नंगे पैरों के रूखे-सूखे और चिरे (फटे) हुए

तले देखता रहा, कुछ देर तक. बर्फ से आंशिक बचाव का यही एक उपाय था कि वह तेज चले. बर्फ पर नंगे पैर चलने की मजबूरी मैंने भी अपनी किशोरावस्था में झेली है. बर्फ पर पैर पहले ठिठुरते हैं और ठिठुरते-ठिठुरते इस हद तक बेजान हो जाते हैं कि ठंड की अनुभूति से परे चले जायें. फिर एक खास तरह की जलन शुरू हो जाती है और सुन्न पैरों को झनझनी छेदने लगती है. उपचार न किया तो बर्फ से जले हुए अंग जख्मी हो जाते हैं, उनमें दाग रह जाता है.' [6]

यह यात्रा किताब व्यक्ति के मन में उपजी कई ऊहापोहों का जिक्र करते हुए बेफ्रिकी में आगे बढ़ती रहती है. 'गांव लौटते हुए मैंने मीना से कहा कि तेज चलें. पानसिंह जी और गोपाल को पीछे छोड़ देते हैं. ये लोग बकरी लायेंगे मारने के लिए तो उसे देखकर मन खराब होगा. मीना को मेरी बात जंच गयी क्योंकि मेरे भीतर जो नेकी फड़फड़ा रही थी, वह उसके भीतर भी थी. बकरी को मारते हुए नहीं देखने के बाद मांस खाना 'अप्रत्यक्ष हिंसा, हिंसा न भवति' जैसी कई और भी नेकियां मेरे भीतर फंसी हुई हैं, जिन्हें बाहर निकालना शायद इस जन्म में मुमकिन नहीं.' [7]

यात्रा के तीनों यात्री खतरों के खिलाड़ी जरूर हैं पर खतरों की भयानकता से अंजान नहीं हैं- 'ग्लेशियर के मुहाने के पास एक पत्थर पर बैठकर मैंने पत्नी से एक-एक शब्द पर वजन देते हुए कहा-देखो मीना, मन डर गया हो तो यहीं से लौट जाते हैं... मुमकिन है कि कहीं पैर फिसल जाए और हममें से कोई दरार के भीतर समा जाये... ग्लेशियर पर जो लोग चढ़ते हैं उनके पास तरह-तरह के उपकरण होते हैं... हमारे पास क्या है? फक़त खाली हाथ... आग, पानी, बर्फ... के साथ अभिमानपूर्वक छेड़खानी नहीं करनी चाहिए. किसी को कुछ हो गया तो कौन आयेगा यहां हमें बचाने?[8]

'मिलम लौटने का मतलब था रात को ग्लेशियर के हवाले हो जाओ. तो क्या इस रेवाड़ पर रात भर पड़े-पड़े ठंड से मर जायें? ग्लेशियर पार करने का सुझाव देकर आज मरवा दिया उत्तम सिंह सयाना ने. मिलम की तरफ आवाज देने का सवाल ही नहीं उठता था क्योंकि गोरी की आवाज उसे निगल जाती.' [9]

बिना संसाधन और बिना तैयारी के अपनी सामर्थ्य और जज़्बे को साथ लिए यह मिलम ग्लेशियर यात्रा नेत्रसिंह रावत और गोपाल के ज्यादा मीना रावत जी के हौंसलों को सलाम करती है – '...समुद्र की तह से कितना ऊंचा होगा? आंकड़ेबाज जाने. ऐसे आंकड़े उन सैलानियों के पास ज्यादा होते हैं जो तंबू के भीतर जाकर, तंबू के बाहर आकर या शेर की बेचारी खाल पर चढ़कर फोटो खिंचवाते हैं. अपनी फोटो छपवाने के लिए यात्रा करने वालों का नाश हो! करीब एक घंटे में हम दूसरे छोर पर पहुंच गये थे और गोरी बायीं तरफ चली गई थी. मुहाना कोण

(ऐंगल) बदल जाने के बावजूद वैसा ही भयावह दिख रहा था, लेकिन आत्मा फूल की तरह हल्की हो गई थी... मीना की तारीफ में मुझे जो सूझा वही मुंह से फूटता रहा- ग्रेट, विजेता तुम हो, हम कुछ नहीं हैं...'[10]

अभ्यास प्रश्न

1- हिमालय के सीमांतवर्ती जोहारी समाज का वर्णन है
   अ – पत्थर और पानी में
   ब- कौवा और कालापानी में
   स – अंतिम अरण्य में
   द – ठेले पर हिमालय में
2- सरयू पार की यात्रा, लखनऊ की यात्रा, हरिद्वार की यात्रा के लेखक है
   अ – भारतेन्दु
   ब- प्रताप नारायण मिश्र
   स – सत्यदेव
   द – इसमें से कोई नहीं
3- पिचाश को उल्लू बनाने के लिए उसे बुलंद आवाज में जवाब देना पड़ता है
   अ – दो ही हैं जी दो है
   ब- हाँ जी हाँ
   स – नहीं जी
   द – अकेले है जी
4- तो 'काली छूं, कल्चूनी छूं, बड़े बाप की बेटी छूं...' यह कौन कहता है
   अ – लेखक
   ब- कवि
   स – चिड़ियाँ
   द – चील

1- निम्न लिखित लघु उत्तरीय प्रश्नों का उत्तर दें
   क – पत्थर और पानी के लेखक का संक्षिप्त जीवन परिचय दीजिए .
   ख- यात्रा वृतांत किसे कहते है संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

15.5 पानी और पत्थर : पाठ

"मेरा अनुमान था कि आगे जाने के लिए पाथेय, तंबू और घोड़े की व्यवस्था करने में दो-तीन दिन से अधिक समय नहीं बीतेगा, लेकिन मुन्स्यारी में कार्यकम उलझ गया, लोगों से जानकारी मिली कि बदले हुए हालात को मैं नहीं समझ रहा हूँ। लीलम और बोग्ड्यार-इन दो पडावों में बतौर विकास के लक्षण डाक बंगले हैं इसलिये तंबू की जरूरत नहीं पड़ेगी। वह जमाना बीत चुका है जब जोहार की तरफ जाने वालों को हर मौसम में रात बिताने के लिए केवल तंबू का ही सहारा मिल सकता था। यह जानकारी मैं पहले भी हासिल कर सकता था, लेकिन अपने देश में कहीं जाने से पहले मैं मोटा अनुमान लेकर चलता हूँ जिससे कि जानने की गुँजाइश ज्यादा रहे और भटकना नामुमकिन न हो जाये।

आगे जाने की जल्दी के विरुद्ध एक रुकावट आड़े आ गयी : गढ़वाल के चंडीप्रसाद भट्ट ने वादा किया था कि वह जोशीमठ में 'पेड़ लगाओ अभियान' से निपटकर सीधे मुन्स्यारी आयेंगे और मिलम यात्रा में मेरे साथ रहेंगे। चार-पाँच दिन प्रतीक्षा करने के बाद उनका तार मिला कि अस्वस्थ हैं, नही आयेंगे। एक साथी कम हो गया इसलिए साथ ले जाने लायक बोझ भी कम हो गया। मैंने मुनासिब नहीं समझा कि घोड़ा किराये पर लेकर अपनी जेब पर अतिरिक्त भार डालूँ। मैंने तय किया कि बिस्तर और पाथेय ले जाने के लिए एक मजदूर को साथ ले लूँ, जोहार के दुर्गम रास्ते में एक मजदूर 30 किलो तक वजन ढो सकता है। भरपूर बिस्तर ले जाना जरूरी है, गर्म कपड़े और पाथेय भी। तीस किलो की सीमा का तकाजा पूरा करने के लिए ज्यादा-से-ज्यादा तकिये कम कर सकता था। थोड़ा सामान मैंने खुद ढोने का निश्चय किया क्योंकि 30 किलो में साथ चल रहे मजदूर के बिस्तर के लिए भी गुंजाइश निकालनी थी। मौसम के आसार देखकर मैंने रात को सामान बाँध लिया था, लेकिन सुबह देखा कि बारिश बहुत तेज है। जिस घर से मैं आगे जा रहा था, उसके सदस्यों की नजर भी कह रही थी कि रोकना हम नहीं चाहते, लेकिन ऐसे में आगे जाने में जोखिम तो है ही । दुख और जोखिम भोगे हुए लोगों की नजर जो कहती है, उसकी उपेक्षा मेरे लिए बहुत मुश्किल है। सपत्नीक चकमा दे रहे मौसम के हवाले हो जाने के बजाय मैंने यात्रा स्थगित करना बेहतर समझा। मन पर तीव्र कुंठा हावी हो गयी थी। बरसात शुरू हो गयी है या नहीं, यह तय करना मुश्किल था । सोचा, शुरू हो गयी है तो मुमकिन है कि हफ्ते-पन्द्रह दिन तक वह रास्ता रोक ले। वापसी का विकल्प जोर दिखाने लगा था, लेकिन मन माना नहीं। नीचे बहुत गहरी घाटी की दिखान ने कहीं-कहीं थोड़ा-सा झाँकती हुई गोरी गंगा मौन और आड़थतो साधे रहने के बावजूद कह रही थी-बस यहीं तक? मुन्स्यारी के सिरहाने बसे दुम्मर के उस पार दो पर्वतों के बीच का मुन्तराल- आसमान छूते दो शिखरों की बगल से घाटी की सतह

तक झुका हुआ अंतराल-भी जोहार की दिशा दिखाते हुए वैसा ही मौन और तटस्थता साधे हुए कह रहा था यहीं से लौट जाओगे क्या ? मैंने खुद को बहुत अदना महसूस करते हुए कई बार उस अंतराल की ओर देखा, नीचे गोरी की ओर देखा।

खूब बरसकर तीसरे दिन बादल, नदारद हो गये तो मैंने मौसम के बारे में अपनी समझ पर भरोसा न करके स्थानीय जनों से पूछताछ की। यह एक बात सबने दुहरायी कि मुन्स्यारी और उससे नीचे का मौसम ऊपर जोहार के मौसम पर लागू नहीं होता। बोग्ड्यार से ऊपर यानी सिर्फ 19-20 मील का रास्ता तय करने पर दूसरा ही मौसम होगा। वहाँ बारिश होगी भी तो बहुत हल्की, तेज हवा के झोंकों से बिखरती छितराती हुई। जोहार से लौटे दो मजदूरों ने भी यही कहा कि जोहार में अभी बारिश शुरू नहीं हुई है। तब भी 20-22 मील तक के संकट को तोलना जरूरी था और चकमा देने वाला भी क्योंकि लोग मेरे इरादे का तेवर पहचान कर सलाह दे रहे थे : इरादा कुछ कमजोर दिखाई दे तो कोई कहता - बारिश तो शुरू हो ही गयी है। रास्ता टूटता रहता है, कहीं-कहीं बहुत कच्चा है और ऐसा कि ऊपर से पत्थर आता दिखाई दे तो बचने के लिए फुर्ती से आगे-पीछे भाग भी नहीं सकते। कहीं-कहीं सिर्फ 'बेत' (एक बालिश्त) भर रास्ता है और वहीं गोरी भी ठीक नीचे बहती है। पैर फिसले तो सीधे गोरी में ही गिरो ... मेरा इरादा पुख्ता दिखाई दे तो प्रोत्साहन देने वाले कहते - इतने वर्ष बाद इस तरफ आये हैं तो जाइए मिलम तक ! बार-बार इतनी दूर कौन आ सकता है ? जाने वाले जा ही रहे हैं। नीचे का रास्ता ज्यादा खतरनाक हो तो ऊपर के रास्ते जायें। ऊपर के रास्ते से फेर बढ़ जाता है और चढ़ाई भी बहुत है, लेकिन जोखिम कम है.... मैंने दिन तय किया इस इरादे से कि बारिश होगी तो भी रुकूँगा नहीं।

जिस दिन जाना था, उस दिन बारिश नहीं हुई। जिनके घर से जाना था, उन्होंने पहले पड़ाव तक का मील का हिसाब बताने की बजाय कहा- ज्यादा दूर नहीं है लीलम। पहले मैं यहाँ से 'घाम' (धूप) आने पर जाती थी और वहाँ घास काटकर दिन छिपने से पहले लौट आती थी... मेरी पत्नी मीना (पार्वती रावत) की पैदल चलने की सामर्थ्य का अंदाजा न होने के बावजूद मुझे यकीन था कि आहिस्ते-आहिस्ते चलते हुए भी हम दिन छिपने तक लीलम पहुँच जायेंगे। रवाना होने तक मुझे खोजते हुए पास के गाँव तल्ला घोड़पट्टा से गुमानसिंह पंचपाल आ गये, जिनकी रंगीन तबीयत के छिटपुट किस्से मैं सुन चुका था। उन्होंने मुझे बताया कि जोहार में कहाँ-कहाँ जायें तो एक संक्षिप्त भ्रमण का उद्देश्य कायदे से पूरा हो जायेगा। गुमानसिंहजी से ही दस्तूर के मुताबिक माथे पर ' पिठाक' (रोली, जो कुमाऊँ में सब जगह सफर के लिए जाते वक्त या तीज-त्यौहार में लगाते हैं) लगवाकर बाहर आने पर देखा कि पाथरों (चौड़े-चौकोर पत्थर) की ठिगनी दीवार पर पालथी मारकर बैठा एक अधेड़ व्यक्ति सारंगी बजाने की तैयारी कर रहा है और उसके

सामने खड़ी उसकी पत्नी गाने के लिये सारंगी की संगत की प्रतीक्षा कर रही है। मैं चौंका-ये आज भी यहाँ हैं ? यह मैं तुरंत समझ गया कि गेहूँ की फसल समेटी जा रही है अतः वे आये हैं माँगने के लिए ही, लेकिन यह तय नहीं कर पाया कि वे 'हुड़की' (गा-बजाकर माँगने वालों का एक खास वर्ग) हैं या ऐसे ही किसी और वर्ग के हैं। मैंने बचपन में अपने पैतृक गाँव थाला में हुड़कियों को कई बार देखा था।

"बली ई-ई-ई-ई.....

ओ भिना SSS आ-आ-आ..... (भिना = जीजा)

एक उम्रदार औरत को गाते हुए देखकर मैं झेंप गया। मन में यह विचार भी कौंध गया कि उसके गाने के अंदाज में दासता की झलक है- सदियों पुरानी दासता। उसे कुछ देकर मैं रवाना हो रहा था, लेकिन गुमानसिंह आगे आ गये - रुकिये भाई साहब ! सुनिए तो सही कि क्या गा रही है। यह तो बड़ा अच्छा सगुन है-जाते वक्त यह अच्छा सगुन हो रहा है... गुमानसिंहजी ने फिर उस औरत से कहा- सुनाओ ! हमारे जोहार जाते वक्त जो गीत गाते हैं, वह सुनाओ !

वह फिर गाने लगी..." बली-ई-ई-ई-ई..."

मैं बहुत लंबी खिंच रही इस तान के बाद की पक्तियाँ स्पष्टतः नहीं सुन सका, लेकिन गुमानसिंह जो सिर हिलाते हुए संकेत दे रहे थे कि सब सुन रहे हैं, सब समझ रहे हैं। यह भी जानते हैं कि अगला बोल क्या है। मुझसे उन्होंने पूछा यह बली- ई-ई-ई-ई... क्या है, समझ रहे हैं ? ये लोग कत्यूर के हैं। यह बली-ई-ई-ई-ई कत्यूर की तरफ का एक अत्यंत आत्मीय संबोधन है, जैसे बली-ई-ई-ई-ई तूल घास काटि हालो ? (... तूने घास काट लिया है ?) दूसरी कहती है- ना हो, बली-ई-ई-ई-ई तू जागि रये हाँ, कमला बैणी-ई-ई-ई-ई (... नहीं, कहाँ से काट लिया ...तू मेरी प्रतिक्षा करना कमला बहन।) यह है बली-ई-ई-ई-ई

बटुवा खोलकर गुमानसिंह ने उस औरत के हाथ में पाँच रुपये का एक ताजा नोट थमाते हुए कहा- अब तुम वह गीत सुनाओ जो हम लोगों (सौकों) के जोहार से हुनदेश (तिब्बत) जाते समय तुम लोग गाते थे। नोट सहित एक हाथ से सलामी देकर वह औरत नाचने के लिए दूसरे हाथ से साड़ी का पल्ला फैलाने लगी तो मैं उसे नाचते न देखने के लिए घबराकर चल दिया। गुमानसिंहजी शायद समझ गये थे कि मेरे लिए अति का बिंदु आ गया है। कुछ दूर तक साथ चलते समय उन्होंने कहा-हमारे बुजुर्गों की रईसी के चिह्न हैं ये लोग। शौकीन थे इसलिए कहीं से हुड़किये ले आये, कहीं से इन्हें ले आये। ये लोग भाँड हैं, कत्यूर से लाए गये हैं।

मैं सोच रहा था कि कौन जाने ये लाए गये या खुद ही आ गये। इनके साथ जातीय गौरव की बू भी बची रहेगी। सामंतीय परंपरा की लाश ढोते हुए गा-बजाकर माँगने वाले ऐसे वर्ग आज तक बदलते-बदलते भी नहीं बदले हैं। हम ही कितना बदले हैं।

मुन्स्यारी की हद से निकलता हुआ रास्ता पैदल चलने वालों के लिए काफी सुविधाजनक है, लेकिन उस पर चलते हुए मैं समझ रहा था कि आगे वह वैसा ही नहीं रह जायेगा। दिक्कतें और टूट-फूट ऐसे ही आड़ में रखी जाती हैं। करीब मील भर आगे निकल कर खयाल आया कि गोपसिंह पीछे रह गया है, जो बोझ लादे पीछे-पीछे आ रहा था। एक खुली हुई मोड़ से पीछे मुड़कर देखने पर जहाँ तक नजर आती थी, वहाँ तक वह कहीं नहीं दिखाई दिया। मीना फूले हुए पाखड़ों की घनी छाँह में बैठ गयीं और उन्होंने कहा कि लौटकर देखूँ, माजरा क्या है। वजन का अंदाजा वह कर चुका था अतः यह मान लेने की गुंजाइश नहीं थी कि उसकी चाल ही बहुत मरियल हो गयी है। मुझे आशंका हुई कि शायद बिस्तरबंद का फीता टूट गया है इसीलिए वह कहीं अटक गया है। उसकी लापरवाह तबीयत की हल्की आहट मिल चुकी थी क्योंकि बोझ ढोते रहने के बावजूद उसके पास रस्सी नहीं थी और ऐन वक्त पर उसे रस्सी माँगने के लिए भटकना पड़ा था। लगभग पौना मील लौटकर मैंने देखा कि बोझ सड़क के किनारे रखकर वह नीचे खेत में किसी से जोर-जोर से बातें कर रहा है। एक आवाज कानों से टकरायी "देख, तेर सैपत लौटि औगे ..." (तेरा साहब तो लौट आया) गोपसिंह ने अचकचाकर मेरी ओर देखा और सफाई देने लगा- आप क्यों लौट आये सैप ?... हम कोई ऐसा-वैसा आदमी नहीं है सैप... - यहाँ क्या कर रहे हो ?– मैंने पूछा।

मैं ?- उसने कहा- मुझे एक जोगी मिल गया था। कहने लगा-तेरा भला होगा, तेरा भला होगा। मुझसे छह-सात रुपये ठग चुका है आज भी एक रुपया मैंने दिया

न देते तो ? मेरी आवाज काफी तीखी हो गयी थी-तुम जैसे मिलते रहते हैं इन लंपटों को... लौट के आ जायें तो बताना कि कौन है...

गोपसिंह की आवाज डूब गयी थी- नहीं रुकोगे तो भला नहीं होगा कहा रहा था... डर लगता है ऐसे जोगियों से...

बोझ उठाकर वह साथ चलने लगा तो मैंने उसे समझाने की कोशिश की-बिस्तर तुम्हारे पास नहीं है, पैर में जूते नहीं हैं और जा रहे हो जोहार। इससे बुरा और क्या होगा तुम्हारा ? रात में हम तुम्हें दो पश्मीने और एक दरी के अलावा और कुछ नहीं दे सकेंगे। नींद आ जाये तो ठीक है,

नहीं तो मरना ठंड से। छः- सात रुपये और मिलाकर कपड़े के जूते ही खरीद लेते... गोपसिंह अपना बिस्तर न रखने की बात तो गोल कर गया, लेकिन जूते के विरुद्ध उसकी टिप्पणी थी - कपड़े के जूते पर कौन पैसे बर्बाद करेगा ? पिछले ही महीने चौदह रुपए में कपड़े के जूते लिए थे, लेकिन सात दिन भी नहीं चले . मुफलिसी के बावजूद गोपसिंह शौकीन आदमी है। मैं भाँप गया कि कपड़े के जूतों की हकीकत खोलने के अलावा वह अपनी मजबूरी पर मिट्टी भी डाल रहा है। कुमाऊँ के देहातों में अधिसंख्य औरतें नंगे पैर चलती हैं, लेकिन पुरुष अब जूते-चप्पल पहनते ही हैं। उस तरफ जोहार की सभी औरतें भी जूते पहनती हैं, चप्पल इसलिए भी नहीं पहनतीं, कि वे वहाँ नहीं टिकतीं."

अभ्यास प्रश्न

1 – गोप सिंह के बारे में संक्षिप्त में लिखकर बताएं .

2 – यात्रा की प्रमुख चुनौतियों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए .

15.6 सारांश

'भारत-चीन युद्ध-1962' के बाद मध्य हिमालय के सीमांतवर्ती जोहारी और तिब्बती समाज के सदियों पूर्व परम्परागत व्यापारिक रिश्ते अचानक खत्म हो गए थे. इस घटना ने जोहारी जन-जनजीवन को बुरी तरह प्रभावित किया. 'पानी और पत्थर' किताब जोहारी समाज की इसी वेदना का प्रकटीकरण है. इस किताब में अपने बचपन से सीधे अधेड़ावस्था में मिलम ग्लेशियर के पास पुश्तैनी गांव गनघर की ओर आए नेत्र सिंह रावत के साथ उनकी पत्नी मीना और पोर्टर-गाइड गोप सिंह है . उनके बीच वन- प्रांतर उच्च हिमालय और वहाँ बसे हाड मांस के रचने बसने की कथागोई भी साथ साथ चलती है .

15.7 शब्दावली

1. अतीतजीवी- अतीत को याद करके जीने वाला
2. कल्चूनिया पक्षी- पक्षी का स्थानीय नाम
3. 'घाम' – धूप
4. ठिगनी दीवार – आंगन के चारों ओर बनी बैठकी दिवार
5. हुनदेश- तिब्बत देश का स्थानीय नाम

15.8 बहुविकल्पीय अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

शीर्षक 4 तक के अभ्यास प्रश्न

क्रमानुसार – 1 - अ , 2- अ, 3- अ, 4 - स

लघु उत्तरी प्रश्नों के उत्तर शीर्षक 4 व शीर्षक 3 के भीतर मौजूद है.

शीर्षक 5 में पूछे गये अभ्यास प्रश्नों के उत्तर शीर्षक 5 में ही मौजूद है

15.9 सन्दर्भ सूची

1- https://kafaltree.com/pathar-aur-pani-book-review/
2- पत्थर और पानी पृष्ठ संख्या 29
3- पत्थर और पानी पृष्ठ संख्या 29
4- पत्थर और पानी पृष्ठ संख्या 28
5- पत्थर और पानी पृष्ठ संख्या 16
6- पत्थर और पानी पृष्ठ संख्या 34
7- पत्थर और पानी पृष्ठ संख्या 56
8- पत्थर और पानी पृष्ठ संख्या 76
9- पत्थर और पानी पृष्ठ संख्या 80
10- पत्थर और पानी पृष्ठ संख्या 80

15.10 सहायक / उपयोगी पाठ्य समग्री

1- आलेख अरुण कुकसाल - kafaltree.com
2- पत्थर और पानी , संभावना प्रकाशन हापुड़ ,

15.11 निबंधात्मक प्रश्न

1- यात्रा वृत्तांत के बारे बताते हुए पत्थर और पानी यात्रा वृतांत की समीक्षा कीजिए.
2- पत्थर और पानी यात्रा वृतांत पर निबन्ध लिखिए